निर्देशन एवं परामर्श

Guidance and Counselling

MAED-201

इकाई सं०	इकाई का नाम	पृष्ठ सं०
1	निर्देशन:- अर्थ , सिद्धांत , अवधारणा , सम्स्याऐं एवं विषय क्षेत्र Guidance: Concept, Principles, assumptions, issues and problems, need, scope and significance of guidance	1-20
2	निर्देशन के प्रकार शैक्षिक :, व्यवसायिक एवं व्यक्तिगत, समूह निर्देशन Types of Guidance- Educational, Vocational and Personal, Group Guidance	21- 42
3	निर्देशन में शिक्षक की भूमिका एवं निर्देशन तथा पाठ्यक्रम Role of Teacher in Guidance & Guidance and Curriculum	43- 61
4	निर्देशन के अभिकरण- राष्ट्रीय स्तर, राज्य स्तर Agencies of guidance- National level, State level	62- 74
5	विशिष्ट बालकों की समस्याएँ एवं आवश्यकताएं, विशेष आवश्यकताओं वाले बालकों की सहायता में शिक्षक की भूमिका, प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालकों का निर्देशन Problems and Needs, Role of Teacher in helping Children with Special needs, Guidance of the Gifted and Creative	75- 88
6	समूह निर्देशन- अर्थ, प्रत्यय, परिभाषा, सिद्धान्त, समूह निर्देशन प्रक्रिया एंव तकनीकी Group Guidance: Concept, Principles, Procedure and Techniques of Group Guidance	89-109
7	परामर्श की प्रक्रियाअवधारणा :, परामर्श के सिद्धान्त, परामर्श उपागमनिर्देशीय :, अनिर्देशीय एवं समन्वित Counselling Process: Concept, Principles of Counselling, Counselling approaches- Directive, Non-directive and Eclectic	110-132
08	समूह परामर्श बनाम व्यक्तिगत परामर्श , एक अच्छे परामर्श की विशेषताएँ, समायोजन हेतु परामर्श Group Counselling Vs Individual Counselling, Counselling for Adjustment, Characteristics of Good Counselling	133-161
09	शिक्षा के विभिन्न स्तर पर सूचना, यथास्थिति परिचायक, स्थानन एवं अनुवर्तन सेवाएँ तथा निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन Information Orientation services, placement service and follow up service at different levels of education, evaluation of guidance Programme	162-179

10	अच्छे परामर्शदाता के गुण, भूमिका तथा जिम्मेदारियाँ Qualities of a good counselor, role and responsibilities.	180-194
11	निर्देशन के उपकरण एवं प्रविधियाँ तथा निर्देशन एवं परामर्श में परीक्षणों का उपयोग Tools And Techniques of Guidance, Use of Tests In Guidance and Counselling	195- 223
12	बुद्धि , अभिक्षमता, सृजनात्मकता , रुचि और व्यक्तित्व के परीक्षण - परीक्षणों का प्रशासन , अ ंकन एवं प्राप्तांकों का विवेचन Tests of Intelligence, aptitude, creativity, interest and personality-administering, scoring and interpretation of tests scores.	224-237
13	निर्देशन कार्यक्रम का संगठन-शिक्षा के विभिन्न स्तर पर निर्देशन सेवाओं का आयोजन Organization of a Guidance Programme - Organizing Guidance services at different levels of education	238- 253
14	समायोजन के मनोवैज्ञानिक आधार, समायोजन में अभिप्रेरणा और प्रत्यक्षीकरण की भूमिका Psychological Foundation of Adjustment, Role of Motivation and Perception in Adjustment	254-270
15	मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की अवधारणा एवं अर्थ, मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के सिद्धान्त तथा प्रभावशाली समायोजन, मानसिक स्वास्थ्य व समन्वित व्यक्तित्व विकास हेतु उसके अनुप्रयोग Concept and meaning of mental health and mental hygiene. Principles of Mental Hygiene and their implication for effective adjustment, mental health and development of integrated personality	271-283
16	समायोजन प्रक्रिया एवं उसकी विशेषताऐं कुण्ठा, अन्तर्द्वन्द और उनके समाधान Adjustment Mechanism and Its Characteristics, Frustration, Conflicts and their Resolution	284-300
17	कुसमायोजन के कारण एवं लक्षण Problem of Maladjustment Cause and Symptoms Of Maladjustment	301-316

इकाई 1 निर्देशन:- अर्थ , सिद्धांत , अवधारणा , समस्याऐं एवं विषय क्षेत्र

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 निर्देशन का अर्थ
1.4 निर्देशन की परिभाषा
1.5 निर्देशन के सिद्धान्त
1.6 निर्देशन की अवधारणा
1.7 निर्देशन के विचारणीय विषय एवं समस्याऐं
1.8 निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व
1.9 निर्देशन का विषय क्षेत्र
1.10 निर्देशन की उपयोगिता
1.11 सारांश
1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.13 संदर्भ ग्रंथ
1.14 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

मनुष्य के भीतर एक ऐसी क्षमता विद्यमान है जिससे वह दूसरों से परामर्श एवं निर्देशन ले सकता है और दूसरों को परामर्श एवं निर्देशन प्रदान कर सकता है। वह अपने सामान्य एवं संकट के क्षणों में एक-दूसरे की मदद करने के लिए अपेक्षित निर्देशन देता है जिससे उसकी वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवनधारा निर्वाध रूप से चलती रहती है। निर्देशन अर्थात् दिशा दिखाने की प्रवृत्ति हर सामाजिक व्यवस्था में किसी न किसी रूप में कार्यशील रही है। इसका वर्तमान स्वरूप 20वीं शताब्दी की देन है।

वैसे तो निर्देशन का अर्थ बताने के लिए भिन्न-भिन्न मत देखने को मिलते हैं फिर भी निर्देशन को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है कि निर्देशन एक ऐसी क्रिया है जिसमे कुछ विशेष प्रकार के निर्देशन कर्मियो के माध्यम से व्यक्ति को उसकी समस्या तथा विकल्प बिन्दुओं से निपटने मे

अपेक्षित राय एवं सहायता प्रदान की जाती है। निर्देशन एक ऐसी अवस्था है जिसमें व्यक्ति को अपने आप को समझ पाने अपनी योग्यताओं तथा सीमाओं के अन्तर्निहित समार्थ्य को समझने एवं उसी स्तर के कार्य-कलापों को करने मे सक्षम बनाता है। निर्देशन प्रत्येक अवस्था की समस्याओ के समाधान में सहायक सिद्ध होने के अतिरिक्त आगामी समस्याओं की पूर्व तैयारी में भी विशेष सहायक होता है। निर्देशन किसी व्यक्ति की आयु या अवस्था से बँधा हुआ नहीं होता है। यह जीवन पर्यन्त विद्यमान रहने वाली आवश्यकता है। निर्देशन बच्चों, किशोर, प्रौढों एवं वृद्धों सभी के लिए महत्वपूर्ण होता है। निर्देशन की प्रक्रिया के अन्तर्गत निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति में निहित विशेषता को तथा शैक्षिक, व्यावसायिक एवं वैयक्तिक क्षेत्र से सम्बन्धित जानकारी का समन्वित अध्ययन आवश्यक है। कुछ विद्वान् निर्देशन और शिक्षा दोनों को ही एक दूसरे के पूरक मानते हैं।

निर्देशन का महत्व मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में होता है। शिक्षा, व्यक्तिगत समस्याएँ, व्यावसायिक, स्वास्थ्य, विकास की प्रक्रिया एवं चिकित्सा के ये विभिन्न क्षेत्र हैं, इन सभी क्षेत्रों में निर्देशन की विशेष आवश्यकता होती है।

निर्देशन का व्यक्ति के जीवन में महत्व अत्यधिक बढ़ता जा रहा है। जैसा ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि जीवन के अनेक क्षेत्रों में आज इसकी उपयोगिता बढ़ गयी है। चाहे व्यवसाय का क्षेत्र हो या सामाजिक क्षेत्र, व्यक्तिगत समास्याओं के समाधान में भी निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप-

1. निर्देशन का अर्थ जान सकेंगे।
2. निर्देशन को परिभाषित कर सकेंगे।
3. निर्देशन के विभिन्न सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे।
4. निर्देशन की अवधारणा से परिचित हो सकेंगे।
5. जान सकेंगे कि भारत वर्ष में निर्देशन सेवाओं के क्षेत्र में कौन-कौन सी समस्याऐं हैं।
6. निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व से परिचित हो सकेंगे।
7. जान सकेंगे कि हमारे जीवन में निर्देशन कार्य की क्या उपयोगिता है

1.3 निर्देशन का अर्थ Meaning of Guidance

मानव इस संसार में ईश्वर की श्रेष्ठतम् कृति है क्योंकि उसके पास भाषा, बुद्धि, विवेक आदि अनेक गुण हैं। लेकिन वह अपना विकास केवल अपनी बुद्धि और विवेक द्वारा ही नहीं कर सकता। इसके लिए उसे दूसरों की सहायता लेनी पड़ती है। जब मानव विकास पथ पर अग्रसर होने के लिए दूसरे के अनुभव, बुद्धि और विवेक का सहारा लेता है तो दूसरे व्यक्ति के द्वारा इस प्रकार की गयी सहायता निर्देशन कहलाती है। निर्देशन अमूर्त संकल्पना है। निर्देशन वस्तुतः पथ प्रदर्शन है। जैसे कोई व्यक्ति

चौराहे पर खड़ा है; वह चलना जानता है तथा यह भी जानता है कि इन चारों रास्तों में से कोई एक रास्ता उसके गन्तव्य तक जाता है। लेकिन; कौन सा, वह यह नहीं जानता; तब किसी अन्य व्यक्ति द्वारा उसे गन्तव्य का रास्ता बताना निर्देशन है। वस्तुत; निर्देशन प्रक्रिया में निर्देशक किसी व्यक्ति के अन्दर ज्ञान का विकास नहीं करता अपितु उस व्यक्ति के अन्दर पहले से उपस्थित ज्ञान को एक सही मार्गदर्शन देकर उसे उसके लक्ष्य तक पहुंचाता है।

बिना निर्देशन के कोई भी समाज चल ही नहीं सकता। मानव जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से किसी न किसी से निर्देशन प्राप्त करता ही रहता है। बाल्यकाल में ही माँ द्वारा बच्चे को उसका हाथ पकड़कर चलना सिखाना, बड़े होने पर उसे नैतिक कहानियाँ सुनाना तथा उसी के द्वारा अपने जीवन की दिशा निर्धारित करने के लिए प्रेरित करना भी तो एक प्रकार का निर्देशन ही है।

1.4 निर्देशन की परिभाषायें Definitions of Guidance

निर्देशन के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए हम विभिन्न विद्वानों के द्वारा दी गयी परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे-

चाइशोम के अनुसार "निर्देशन एक ऐसी प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य व्यक्ति में निहित सजीव तथा क्रियात्मक शक्तियों का विकास करना है; जिसकी सहायता से वह जीवन की समस्याओं को सुगमता तथा सरलतापूर्वक जीवन पर्यन्त हल करने योग्य बनाता है"

एमरी स्ट्रप्स के अनुसार- "निर्देशन सहायता प्रदान करने की एक ऐसी प्रवाहित क्रिया है जो व्यक्तिगत या सामाजिक दृष्टि से हितकारी क्षमताओं का विकास अधिकतम रूप से व्यक्ति में करती है"

डेविड वी0 टिडमैन – "निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्यपूर्ण बनने में न कि केवल उद्देश्यपूर्ण क्रिया में सहायता देना है"

स्ट्रप्स तथा वालक्विस्ट ने सभी परिभाषाओं का सार इस प्रकार प्रस्तुत किया है - "निर्देशन व्यक्ति के अपने लिए तथा समाज के लिए अधिकतम लाभदायक दिशा में उसकी सम्भावित अधिकतम क्षमता तक विकास में सहायता प्रदान करने वाला एवं निरन्तर चलने वाला प्रक्रम है"

गुड के अनुसार - निर्देशन व्यक्ति के दृष्टिकोणों एवं उसके बाद के व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से स्थापित गतिशील आपसी सम्बन्धों का एक प्रक्रम है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर हम निर्देशन की एक सर्वमान्य परिभाषा इस प्रकार दे सकते हैं।

"निर्देशन वह प्रक्रिया है जिसमें एक व्यक्ति अपनी बौद्धिक क्षमताओं का प्रयोग करते हुए दूसरे व्यक्ति को उस उन्नत पथ पर अग्रसर करता है जिसकी क्षमता उसमें पहले से ही विद्यमान है। किन्तु, वह स्वविवेक से अपनी क्षमता को सही दिशा देने में असमर्थ है"

केवल मानव ही नहीं अपितु जीव जगत के समस्त पशु पक्षी और कीट पतंगे अपने अग्रजों के दिशा निर्देशन में काम करते हैं। निर्देशन को परिभाषित करते समय हमारे समक्ष जीव जगत की अनेक गतिविधियाँ चलचित्र की भांति घूम जाती है और हम जीवन के प्रत्येक कदम पर निर्देशन की प्रक्रिया को घटित होते हुए देखते हैं। झुंड के बीच में सुरक्षित घूमता हुआ हाथी का छोटा सा बच्चा जो अनायास ही अपने परिवार के साथ नदी की तेज धारा में उतर जाता है वह अपने पूर्वजों के निर्देशन और सहायता के परिणामस्वरूप ही इस गुरूतर कार्य को सम्पन्न कर पाता है। यदि आपने आस-पास किसी चिड़िया के बच्चे को घोंसले से गिरते हुए देखा हो जिसके पंख अभी-अभी निकले हैं तो यह निर्देशन की ही प्रक्रिया का आरम्भ है। चिड़िया का वह बच्चा अपने घोंसले से अनायास नहीं गिरा है बल्कि उड़ने का प्रशिक्षण देने के लिए चिड़िया मां ने उसे सप्रयास गिराया है। प्रशिक्षण की इस प्रक्रिया में निर्देशन सम्मिलित है।

यह (निर्देशन) किसी भटके हुए राही को रास्ता दिखाने जैसा है। मान लीजिए आप किसी अपरिचित नगर में अपने मित्र के घर जाने के लिए अनजान सड़क पर खड़े हैं। वहां से पूछते-पूछते आप अपेक्षित गली के अन्तिम चौराहे पर पहुंच जाते हैं और यहाँ पर आप अपने मित्र का घर नहीं ढूंढ पा रहे हैं, तभी सामने से आ रहे एक व्यक्ति से आप अपने मित्र राघवेन्द्र का नाम बताकर उसका आवास पूछते है और वह संकेत द्वारा आपको आपके मित्र राघवेन्द्र के आवास की वास्तविक स्थिति से अवगत कराता है। आप अपने गन्तव्य तक जिस सहयोग की प्रक्रिया से गुजरे वह प्रक्रिया निर्देशन है।

1.5 निर्देशन के सिद्धान्त Principles of Guidance

निर्देशन की प्रक्रिया बहुत महत्त्व पूर्ण प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया गलत दिशा में जाने की स्थिति में किसी भी व्यक्ति का जीवन नष्ट कर सकती है। विविधताओं वाले भारत देश में यूँ तो कोई भी व्यक्ति स्वयं को निर्देशन कार्य के योग्य समझता है। आप सामने बैठे व्यक्ति को जैसे ही अपनी समस्या बताते हैं आपको निर्देशन प्राप्त होना प्रारम्भ हो जाता है। किन्तु बिना सोच विचार के दिया गया निर्देशन कितना घातक हो सकता है इसकी कल्पना भी भयावह है। अतः निर्देशन की प्रक्रिया को आरम्भ करने से पूर्व हमें इसके सिद्धान्त समझने होंगे।

निर्देशन की प्रक्रिया हेतु भारत सहित विश्व के अनेक देशों में शोध होते रहते हैं। क्रो एण्ड क्रो, टसेल, जोन्स आदि विद्वानों द्वारा बताए गए निर्देशन के सिद्धान्तों को तो व्यापक मान्यता भी मिली है।

यहाँ हम भारतीय परिवेश में निर्देशन की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए निर्देशन के कतिपय महत्त्व पूर्ण सिद्धान्त निर्धारित करेंगे। इनमें से अनेक सिद्धान्त पश्चिमी विद्वानों द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों से मिलते जुलते भी हो सकते हैं।

अनेक विद्वानों द्वारा प्रतिपादित निर्देशन के सिद्धान्तों का अध्ययन करने के बाद लेखक' इस निष्कर्ष पर पहुँचा है कि भारतीय परिवेश में निर्देशन के अग्रांकित सिद्धान्त हो सकते हैं -

1. **ज्ञान का सिद्धान्त (Principle of Knowledge) -**निर्देशक चाहे कोई भी हो किन्तु उसे निर्देशन कार्य आरम्भ करने से पूर्व निर्देशन प्रक्रिया का सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए ज्ञान के अभाव में निर्देशक गलत निर्देशन दे बैठता है जिसका परिणाम कभी-कभी बहुत भयंकर भी हो सकता है।
2. **सार्वभौमिकता का सिद्धान्त (Principle of Universalization)**-निर्देशन प्रक्रिया आरम्भ करने से पूर्व निर्देशक को यह जान लेना चाहिए कि यह प्रक्रिया सार्वभौमिक है। अर्थात निर्देशन की प्रक्रिया सदैव एवं सर्वत्र चलती रहती है। आजीवन चलने वाली इस प्रक्रिया को कोई भी व्यक्ति (धर्म, जाति, आयु, लिंग, एवं स्वभाव आदि का विभेद किये बिना) प्राप्त कर सकता है। केवल कुसमायोजित या अपसमायोजित व्यक्ति ही नहीं।
3. **निरन्तरता का सिद्धान्त (Principle of Continuity)**-किसी समस्या विशेष के समाधान के लिए एक बार निर्देशन दे देने भर से निर्देशक का कार्य समाप्त नहीं हो जाता। उपबोध्य (निर्देशन प्राप्त करने वाला) को समस्या के समाधान के लिए जिन परिस्थितियों में निर्देशन प्राप्त हुआ था, बहुत संभव है कि भविष्य में उसे नवीन परिस्थितियों का सामना करना पड़े और पुनः निर्देशक की आवश्यकता पड़े। इतना ही नहीं नवीन क्षेत्र में भी उपबोध्य को निर्देशन की बार-बार आवश्यकता अनुभव होती है अतः यहाँ हम यह कह सकते हैं कि निर्देशन की प्रक्रिया निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।
4. **सामाजिकता का सिद्धान्त (Principle of Sociality)**-निर्देशन कार्य महत्त्व पूर्ण और कठिन कार्य है। यह कार्य करते समय निर्देशक को ध्यान रखना चाहिए कि निर्देशन का प्रभाव केवल प्राप्तकर्ता पर नहीं पड़ता; अपितु इस प्रक्रिया के परिणामों को पूरा समाज भोगता है। चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है अतः उस पर समाज की तथा समाज पर उसकी गतिविधियों का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अतः निर्देशक को केवल उन्हीं कार्यों के लिए निर्देशन देना चाहिए जो व्यक्ति की क्षमताओं में विकास करने के साथ-साथ समाज के उत्थान में भी सहायक हों। दूसरे शब्दों में समाज के लिए घातक कार्यां का निर्देशन नहीं किया जाना चाहिए।
5. **नैतिकता का सिद्धान्त (Principle of Morality)-** निर्देशन कार्य करते समय सामाजिकता के साथ निर्देशक को नैतिकता का भी पूरा ध्यान रखना चाहिए। समाज में अनेक कार्य ऐसे होते हैं जिन्हें सामाजिक होते हुए भी नैतिक नहीं कहा जा सकता। अतः निर्देशक को निर्देशन प्रक्रिया में नैतिकता का पुट अवश्य ही बना कर रखना चाहिए।
6. **विश्लेषण का सिद्धान्त (Principle of Analysis)-** निर्देशन कार्य करने से पूर्व निर्देशक को परिस्थितियों और समस्या का सम्पूर्ण विश्लेषण कर लेना चाहिए। अनेक बार ऐसी

परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं जिसमें निर्देशक को उपबोध्य के द्वारा उन परिस्थितियों और व्यवहारों का वास्तविक ज्ञान नहीं कराया जाता जिनके लिए उसे निर्देशन की आवश्यकता है। परिस्थितियों और व्यवहारों के विश्लेषण द्वारा ही निर्देशक वास्तविक स्थितियों का सही आकलन कर सकता है।

7. **वैज्ञानिकता का सिद्धान्त (Principle of Scientific Method)-**निर्देशन कार्य से पूर्व परिस्थितियों और गतिविधियों का विश्लेषण करने के लिए निर्देशक को आंकड़ों का एकत्रीकरण करने से लेकर मूल्यांकन, साक्षात्कार तक वैज्ञानिक प्रक्रिया को ही अपनाना चाहिए; अन्यथा विश्लेषण के परिणामों में भारी अन्तर आ सकता है।
8. **सकारात्मकता का सिद्धान्त (Principle of Positivity)-** निर्देशक परिस्थिति विशेष में उपबोध्य का भगवान होता है। कभी-कभी वह समाज और परिस्थितियों से इतना प्रताड़ित हो चुका होता है कि उसकी सोचने समझने की क्षमता कुंठित हो जाती है। इन स्थितियों में वह अपने निर्देशक की कोई भी बात बिना सोच विचार के मानने को तैयार होता है। अतः निर्देशक का यह दायित्व बनता है कि वह अपने उपबोध्य को सदैव सकारात्मक निर्देशन ही दे और समाज में उसके समायोजन का प्रयास करे न कि अपसमायोजन का।
9. **आत्मनिर्भरता का सिद्धान्त (Principle of Self Dependence)-** निर्देशन कार्य करते समय निर्देशक को यह प्रयास करना चाहिए कि उसका उपबोध्य निर्देशक पर कम से कम निर्भर रहे। इसके लिए निर्देशक को अपने उपबोध्य में ज्ञान एवं विवेक दोनों का विकास करना होगा साथ ही साथ उसके आत्मविश्वास को भी बढ़ाना होगा।
10. **स्वतंत्रता का सिद्धान्त (Principle of Freedom)-**निर्देशक कभी-कभी उपबोध्य पर अपने निर्णय थोपने लगता है तथा उसके निर्णय न माने जाने की दशा में वह उपबोध्य के प्रति अन्यमनस्क हो जाता है। किन्तु, अच्छे निर्देशक का कार्य अपने उपबोध्य को केवल सर्वश्रेष्ठ निर्देशन देना है; उस पर अपने निर्णय थोपना नहीं। अतः निर्देशन प्राप्त करने के पश्चात उसको पूरी तरह मानने, आंशिक रूप से मानने, या न मानने की स्वतन्त्रता उपबोध्य के पास होनी चाहिए।
11. **लचीलेपन का सिद्धान्त (Principle of Flexibility)-**निर्देशन कार्य में निर्देशक को सदैव लचीला रूख अपनाना चाहिए। चूंकि निर्देशन एक सामाजिक प्रक्रिया है और समाज की परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं अतः निर्देशक को किसी भी प्रकार से एक ही निष्कर्ष पर न रूककर सदैव लचीलेपन के सिद्धान्त का पालन करना चाहिए।
12. **व्यक्तिगत महत्त्व एवं समानता का सिद्धान्त (Principle of Individual Importance & Equality)** निर्देशक के लिए प्रत्येक व्यक्ति समान रूप से महत्त्व पूर्ण है चाहे वह अपसमायोजित या कुसमायोजित अथवा सामान्य व्यक्ति हो निर्देशन कार्य के

लिए इस आधार पर उपबोध्य में अन्तर करना उचित नहीं है। उसे प्रत्येक व्यक्ति को समान और सम्पूर्ण महत्त्व देना चाहिए।

13. **व्यक्तिगत भिन्नता का सिद्धान्त (Principle of Individual Difference)**- प्रत्येक व्यक्ति किसी भी दूसरे व्यक्ति से भिन्न होता है अतः वह अनिवार्य नहीं है कि एक व्यक्ति को दिया गया निर्देशन दूसरे व्यक्ति के लिए समान रूप से उपयोगी सिद्ध हो। निर्देशक को चाहिए कि वह व्यक्तिगत भिन्नता का सिद्धान्त ध्यान में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए अलग से निर्देशन कार्य की व्यवस्था करे।
14. **सम्पूर्ण विकास का सिद्धान्त (Principle of Wholesome Development)**- निर्देशक का दायित्व उपबोध्य की समस्या विशेष का समाधान करना ही नही है अपितु उसे उपबोध्य के सम्पूर्ण विकास पर ध्यान देना चाहिए। वास्तव में व्यक्ति की समस्याएं परस्पर अन्र्तसम्बन्धित होती है' इसलिए भी निर्देशक को उपबोध्य के समग्र विकास पर ध्यान देना चाहिए।
15. **समन्वय का सिद्धान्त (Principle of Co-ordination)** -सामाजिक जटिलताओं एवं भौतिक आवश्यकताओं के बढ़ते हुए भार ने वर्तमान में प्रत्येक व्यक्ति को त्रस्त कर रखा है, अतः सामाजिक कुसमायोजन निरन्तर बढ़ता जा रहा है जिसके कारण एक ही व्यक्ति को अनेक निर्देशकों से निर्देशन प्राप्त करने की आवश्यकता अनुभव होती है। ऐसी परिस्थितियों में निर्देशकों को परस्पर समन्वय स्थापित कर लेना चाहिए एवं यदि सम्भव हो तो उसमें वरिष्ठ एवं अनुभवी व्यक्ति को महत्त्व देना चाहिए।
16. **निरपेक्षता का सिद्धान्त (Principle of Objectivity)**- निर्देशक किसी भी व्यक्ति के जीवन को नयी राह दिखाने वाला होता है अतः उसे सदैव निरपेक्ष रहकर निर्देशन करना चाहिए। निर्देशक को अपनी अभिरूचियों, क्षमताओं, विश्वासों तथा पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर उपबोध्य का पथ प्रदर्शन करना चाहिए। उसके अन्दर इतनी समझ होनी चाहिए कि वह उपबोध्य की परिस्थितियों, उसकी रूचियों, क्षमताओं तथा सीमाओं को ध्यान में रखकर उसे संभावित सर्वोत्तम पथ प्रदर्शन दे सके। यदि वह निरपेक्ष नहीं रहेगा तो वह अपने निर्णयों को दूसरे पर आरोपित करेगा जिससे वह अपने दायित्व मार्ग से पूर्णतः भटक जायेगा।
17. **गोपनीयता का सिद्धान्त (Principle of Confidentialness)** -निर्देशक को निरपेक्ष होने के साथ-साथ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि वह उपबोध्य की किसी भी गोपनीय सूचना को अन्यत्र अभिव्यक्त न करे उपबोध्य की व्यक्तिगत सूचनाओं में कोई रूचि न होने पर भी उसे उन सब सूचनाओं को स्वयं तक ही सीमित रखना चाहिए। क्योंकि यदि वह ऐसा नहीं करेगा तो अपने साथ-साथ दूसरे निर्देशकों के लिए भी विश्वसनीयता की समस्या खड़ी कर देगा।

18. **समय प्रबन्धन का सिद्धान्त (Principle of Time Management)** -उपबोध्य की समस्याएं अनेक प्रकार की होती है। अनेक समस्याएं ऐसी भी होती है जिनके लिए यदि उचित समय पर निर्देशन न मिले तो वे समस्याएं गम्भीर रूप धारण कर सकती हैं। अतः निर्देशक को समस्या के विश्लेषण आदि में अधिक समय नष्ट नहीं करना चाहिए तथा उसे यथासम्भव शीध्रतापूर्वक निर्देशन प्रदान करना चाहिए।
19. **विशिष्टता का सिद्धान्त (Principle of Specialization)-** विविधताओं से भरे इस समाज में समस्याएं भी विविध प्रकार की है' अतः कोई एक निर्देशक सभी प्रकार की समस्याओं के समाधान हेतु निर्देशन कार्य कर सके यह कदापि सम्भव नहीं है। अतः निर्देशक को भी विशिष्ट होना होगा। कार्य विशेष के लिए जैसे शैक्षिक कार्य, व्यावसायिक कार्य, व्यक्तिगत कार्य, आयु विशेष के लिए जैसे बालक, किशोर, युवा, वृद्ध आदि एवं व्यक्ति विशेष के लिए जैसे सामान्य, विशिष्ट आदि अलग-अलग निर्देशकों की आवश्यकता होती है।
20. **प्रशिक्षण का सिद्धान्त (Principle of Training)-** यदि हमने निर्देशन के उपरोक्त सिद्धान्तों का गम्भीरता पूर्वक मनन किया तो हम पायेंगे कि बिना प्रशिक्षण प्राप्त किये निर्देशन कार्य कठिन ही नहीं अपितु असम्भव है। अतः अपने कार्य में निपुणता (Perfection) के लिए प्रत्येक निर्देशक को भली भांति प्रशिक्षित होना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. ____________निर्देशन व्यक्ति के दृष्टिकोणों एवं उसके बाद के व्यवहार को प्रभावित करने के उद्देश्य से स्थापित गतिशील आपसी सम्बन्धों का एक प्रक्रम है।
2. निर्देशन के किन्हीं पाँच सिद्धांतों के नाम को लिखिए।

1.6 निर्देशन की अवधारणा Assumption of Guidance

संसार की श्रेष्ठतम् कृति मानव है। भाषा, बुद्धि और विवेक जैसे गुणों से सम्पन्न मानव जब विकास पथ पर आगे बढ़ता है तो उसे निर्देशन की आवश्यकता होती है। निर्देशन का लक्ष्य लोगों को उद्देश्य पूर्ण बनाना है। यह किसी भटके हुए राही को रास्ता दिखाने जैसा है। निर्देशन की इस प्रक्रिया को उपयोगी बनाये रखने के लिए हमने पिछले पृष्ठों में इसके सिद्धान्तों का अध्ययन किया है अब हम निर्देशन की अवधारणाओं के विषय में चर्चा करेंगे।

विभिन्न भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों ने अपने-अपने मत के अनुसार निर्देशन की अवधारणायें निर्धारित की हैं यहां लेखक के मतानुसार निर्देशन की महत्त्व पूर्ण अवधारणाएं निम्नवत हैं -

1. मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता होती है।

2. निर्देशन की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।
3. निर्देशन अधिगम (Learning) में सहायक होता हैं।
4. निर्देशन व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
5. निर्देशन का कार्य उपबोध्य (Learner) की क्षमताओं का विकास करना है।
6. निर्देशन उपबोध्य की उपलब्धि और प्रगति को बढ़ाता है।

1.7 निर्देशन के विचारणीय विषय एवं समस्याएं Issues and Problems of Guidance

1. **जागरूकता की कमी (Lack of Awareness)-** भारतीय समाज विश्व का सर्वश्रेष्ठ मस्तिष्क रखने के बाद भी अपने भोलेपन और जागरूकता के अभाव के कारण सैकड़ों वर्ष छोटे-छोटे देशों का गुलाम रहा और जागरूकता का यही अभाव उसे आज भी विश्व के अन्य देशों की अपेक्षा पिछड़ा बनाये हुए है। यह बात निर्देशन के क्षेत्र में अक्षरशः सत्य है। पीछे के पृष्ठों में हम यह बात भली भांति समझ चुके हैं कि उचित निर्देशन के बिना व्यक्ति अपने जीवन में क्षमताओं का अपेक्षित विकास नहीं कर सकता तथा उसकी सफलता का स्तर भी कम हो जाता है। तथापि अधिकांश लोग समस्याओं से जूझते हुए भी निर्देशन प्राप्त करने का प्रयास नहीं करते अथवा निर्देशक की सलाह को अपेक्षित महत्त्व नहीं देते।
2. **उपयुक्त प्रशिक्षण का अभाव (Lack of Proper Training)** - समाज में तो निर्देशन के प्रति जागरूकता की कमी है ही साथ ही निर्देशक वर्ग भी अपने इस महत्त्व पूर्ण कार्य के प्रति उदासीन नजर आता है जिसका एक प्रमुख कारण निर्देशकों को उपयुक्त प्रशिक्षण न मिलना है आज जितनी संख्या में शिक्षक प्रशिक्षित हो रहे हैं यदि उसका 10% भी निर्देशकों को प्रशिक्षण दिया गया होता तो हम प्रशिक्षित निर्देशकों की कमी का सामना न कर रहे होते।
3. **कुशल निर्देशकों का अभाव (Lack of Expert Guides)-**प्रशिक्षण की कमी के कारण विद्यालयों में तथा स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले कुशल निर्देशकों का अभाव उत्पन्न हो गया है आज विद्यालयों में या तो निर्देशकों की नियुक्ति की ही नहीं गयी है और यदि कहीं नियुक्ति की भी गयी है तो उनमें बहुत कम निर्देशक ऐसे हैं जो अपने कार्य को दक्षता पूर्वक सम्पन्न कर पाते हैं। इसके अनेक कारणों में से कुछ कारण इस प्रकार हैं-जैसे प्रशिक्षण का न होना, निर्देशक की निर्देशन कार्य में रूचि न होना, निर्देशक पर कार्य भार की अधिकता, निर्देशक की व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्याऐं आदि।
4. **तीव्रता से बदलती सामाजिक परिस्थितियाँ (Rapidly Changing Social Senerio)-** विश्व के अनेक राष्ट्र आज बहुत तेजी से एक दूसरे के निकट आ रहे हैं जिसके

कारण हम दूसरों की संस्कृति और सभ्यता की ओर तेजी से आकर्षित हो जाते हैं परिणामस्वरूप सामाजिक परिस्थितियों का चक्र तेजी से घूम जाता है। एक प्रकार की सामाजिक परिस्थिति में निर्देशन प्राप्त करके व्यक्ति जब उसको बदली हुई परिस्थिति में प्रयोग करता है तो सफलता की संभावनायें कम हो जाती है और इसका दोष निर्देशन कार्य पर मढ़ दिया जाता है।

5. **निरन्तर बढ़ती प्रतिस्पर्धा (Constantly Increasing Competition)** वैश्वीकरण ने हमारे समक्ष विचित्र परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी हैं। एक ओर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अवसरों की भरमार हुई है तो दूसरी ओर पारस्परिक प्रतिस्पर्धा ने भी अपने पांव तेजी से पसारे हैं। बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के इस युग में व्यक्ति अनुपयुक्त साधनों का भी प्रयोग करने लगता है, ऐसी स्थिति में उचित प्रकार से दिया गया निर्देशन भी काम नहीं आता।
6. **व्यक्ति सापेक्षता (Subjectivity)**- निर्देशन प्रक्रिया के अन्तर्गत निर्देशक को वस्तुनिष्ठता का पूरा ध्यान रखना चाहिए। किन्तु, मानव की स्वाभवगत विशेषताओं के कारण निर्देशक में व्यक्ति सापेक्षता आ जाती है जो निर्देशन कार्य की गुणवत्ता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती है। दूसरे शब्दों में निर्देशन कार्य करते समय व्यक्ति के स्वभाव, प्रतिक्रिया आदि के प्रभाव में आकर निर्देशक दो अलग-अलग प्रकार से निर्देशन देने लगता है जो निर्देशन के सिद्धान्तों के विरूद्ध है।
7. **पूर्वाग्रहों से ग्रसित होना (Prejudicousness)**- निर्देशन कार्य की प्रक्रिया में कभी-कभी निर्देशक उपबोध्य की रूचि, योग्यता, क्षमता आदि के विषय में अपनी कुछ पूर्वधारणाएं बना लेता है तथा उसकी यह धारणाएं निर्देशन प्रक्रिया को प्रभावित करती है। कभी-कभी इन पूर्वागहों के कारण निर्देशन की प्रक्रिया समुचित प्रकार से पूर्ण नहीं हो पाती तथा कभी-कभी इससे घातक परिणाम भी प्राप्त हो सकते हैं।
8. **व्यक्तिगत विचारधारा (Personal Ideology)**- प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन होता है और वह समाज, परिस्थितियों, व्यवस्थाओं एवं घटनाओं को अपने इसी दृष्टिकोण से देखता है। जब कभी निर्देशक और उपबोध्य जो विपरीत जीवन दर्शन को मानने वाले होते हैं तब निर्देशन की प्रक्रिया बहुत कठिनाई से पूर्ण हो पाती है। इसी प्रकार निर्देशक के व्यक्तिगत जीवन दर्शन का प्रभाव उसके निर्देशन कार्य पर पड़ता है जो उपबोध्य के लिए सदैव उपयोगी हो यह जरूरी नहीं।
9. **प्रोत्साहन का अभाव (Lack of Motivation)**- निर्देशन प्रक्रिया को कुशलतापूर्वक सम्पन्न कराने के लिए निर्देशकों का अत्यधिक अभाव होने के बाद भी निर्देशन कार्य को किसी भी प्रकार का प्रोत्साहन नहीं दिया जाता। न तो निर्देशकों के पास उनके उपबोध्य की सफलता का श्रेय होता है और न ही कोई अन्य लाभ। विद्यालयों में निर्देशन कार्य करने वाले शिक्षकों को यह कार्य अतिरिक्त कार्य के रूप में दिया जाता है तथा इसकी प्रतिक्रिया में न तो उनका कार्यभार ही कम होता है और न ही कोई अन्य लाभ होता है।

10. **नैतिक मूल्यों का क्षरण (Inharresment of Moral Values)**-निर्देशन कार्य करते समय निर्देशक समाज के नैतिक मूल्यों का ध्यान रखता है; किन्तु, उपबोध्य जिस समाज में इस निर्देशन का प्रयोग करता है वहाँ यदि उपबोध्य का सामना अनैतिकता का आश्रय लेने वाले प्रतियोगी से होता है तो इस दशा में निर्देशन कार्य के अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं होते। अतः गिरता हुआ नैतिक स्तर भी इसमें बहुत बड़ी बाधा है।
11. **शिक्षा का गिरता स्तर (Decreasing Leval of Education)**-वर्तमान परिवेश में शिक्षा का स्तर निरन्तर गिरता जा रहा है विद्यार्थी में ज्ञान प्राप्ति की ललक निरन्तर कम होती जा रही है वह अनुपयुक्त (अनुचित) रास्तों को अपनाकर श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त करने का सफल प्रयास करता है। ऐसी परिस्थितियों में कुशल से कुशल निर्देशक भी अपने निर्देशन कार्य की सफलता की गारन्टी नहीं ले सकता। क्योंकि ज्ञान के ठोस आधार के बिना यथार्थ सफलता की दीवार खड़ी नहीं हो सकती।

1.8 निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व Need and Importance of Guidance

जैसा कि हम पहले ही जान चुके हैं कि निर्देशन जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। यह एक बहु आयामी प्रक्रिया है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में चाहे वह शैक्षिक हो या राजनीतिक, व्यावसायिक हो या कलात्मक निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

वर्तमान युग अपेक्षाकृत अधिक जटिल है। तकनीकी के निरन्तर विकास ने इस जटिलता को और बढ़ा दिया है। जहाँ एक ओर तकनीकी विकास ने हमारी सामर्थ्य को बढ़ाकर कार्यप्रणाली को सरल किया है वहीं इसी तकनीक के कारण नये-नये कौशलों का जन्म भी हुआ है जिससे निर्देशन की आवश्यकता और अधिक बढ़ जाती है। यद्यपि बालक को उसके जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त निर्देशन की आवश्यकता प्रत्येक युग में रही है तथापि जटिलताओं के वर्तमान युग में निर्देशन की आवश्यकता ने अपने पांव और अधिक पसार लिए हैं। अतः जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निर्देशन जल और वायु की तरह अनिवार्य हो गया है। यहां पर हम कतिपय महत्त्व पूर्ण क्षेत्रों में निर्देशन की आवश्यकता पर चर्चा करेंगे।

व्यक्तिगत जीवन में निर्देशन की आवश्यकता Need of Guidance in Personal Life

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है समाज के बिना उसका मनुष्य अस्तित्व संभव नहीं है। वह समाज में रहते हुए जीवन के प्रत्येक पग पर दूसरों से सीखता है। अपने दैनिक जीवन में कोई भी कार्य ऐसा नहीं है जिसे वह दूसरों की सहायता से न सीखता हो। धीरे-धीरे वह इन कार्यों का अभ्यस्त हो जाता है तथा स्वयं ही इन कार्यों को करने में सक्षम हो जाता है। चूंकि जीवन की परिस्थितियाँ निरन्तर बदलती रहती हैं अतः उसे समायोजन हेतु नये-नये कार्यों को सीखना पड़ता है। अतः जीवन पर्यन्त

व्यक्तिगत कार्यों को करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। व्यक्तिगत जीवन में निर्देशन की आवश्यकता मुख्यतः निम्न कारणों से पड़ती है -

i. **व्यक्तिगत क्षमताओं के विकास हेतु (For Development of Individual Skills) -** कोई भी व्यक्ति स्वयं में पूर्ण नहीं है किन्तु पूर्ण होने के प्रयास में वह अपनी व्यक्तिगत क्षमताओं को निरन्तर विकसित करता रहता है। संभवतः प्रकृति ने निरन्तर श्रेष्ठता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक जीव में इस तरह की अपेक्षा को जन्म दिया होगा। किसी भी व्यक्ति की व्यक्तिगत क्षमताओं का विकास निर्देशन के बिना संभव नहीं है। यदि हमें बालपन में माता की उंगली का सहारा न मिला होता तो शायद हम अभी तक सीधे खड़े होना भी न सीख पाये होते। निर्देशन का यह पहला चरण हमारी प्रकृति और क्षमताओं को समझते हुए जिस प्रकार हमारा विकास करता है निर्देशन की वह प्रक्रिया हमारे सम्पूर्ण जीवन में हमारी व्यक्तिगत क्षमताओं को विकसित करती रहती है। इस विषय में हम भीतर के पृष्ठों में और अधिक चर्चा करेंगे।

ii. **पारिवारिक जीवन में आवश्यक (Necessary in Family Life)**- प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी परिवार का अंग अवश्य होता है। परिवार में माता पिता भाई बहन तथा अन्य सम्बन्धियों के साथ अपने सम्बन्ध बनाये रखना एवं परिवार के लिए उपयोगी होना प्रत्येक व्यक्ति के लिए आवश्यक है। माता-पिता के कुशल निर्देशन में बालक परिवार की व्यवस्थाओं को ठीक से समझ जाता है। पारिवारिक जीवन में स्वंय को स्थापित करने के लिए निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता है।

iii. **किशोरावस्था का सामना करने के लिए (To Face Adolescen-ce Period)**- स्टेनले हाल जैसे मनोवैज्ञानिकों ने किशोरावस्था को संवेग और तूफान की अवस्था कहा है। इस अवस्था में बालक युवावस्था की ओर कदम बढ़ा रहा होता है। उसके भीतर बहुत तेजी से शारीरिक मानसिक और संवेगात्मक परिवर्तन आ रहे होते हैं। बदलती हुई सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों में बालक इन परिवर्तनों में डूब जाना चाहता है। उपयुक्त निर्देशन के अभाव में इस अवस्था का बालक अप्रत्याशित निर्णय ले सकता है जो उसके जीवन तथा समाज दोनों के लिए घातक सिद्ध हो सकता है। अतः किशोरावस्था में निर्देशन अति आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न

3. निर्देशन की महत्त्व पूर्ण अवधारणाएं लिखिए।

शिक्षा के क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता Need of Guidance in Educational Field

शिक्षा मनुष्य को पशुओं से अलग करती है। संस्कृत में कहा गया है ''साहित्य, संगीत, कला विहीनः साक्षात् पशु पुच्छविषाणहीनः'' किन्तु न तो प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक प्रकार की विद्या प्राप्त कर सकता है और न ही ऐसा हो सकता है कि कोई भी विद्यार्थी किसी भी विषय का चयन कर ले और सफल हो जाय। आज देश में हम बेरोजगारों की जो भारी भीड़ देख रहे हैं उसका एक महत्त्व पूर्ण कारण अपनी रूचि, योग्यता और क्षमता को जाने बिना किसी भी विषय का अध्ययन कर लेना भी है। अतः शिक्षा के क्षेत्र में विषय चयन से लेकर परीक्षा उत्तीर्ण करने तक प्रत्येक चरण में व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है।

i. **उपयुक्त विषयों के चयन हेतु (For Selecting Appropriate Subject)** - शिक्षा के क्षेत्र में आज सबसे बड़ी समस्या यह है कि विद्यार्थी को यह समझ में नहीं आता कि वह किन विषयों का चयन करे जिसके द्वारा वह भविष्य में सफल हो सके। आज यद्यपि शिक्षा के क्षेत्र में विषयों की भरमार है लेकिन सबसे बड़ी समस्या उसके उपयुक्त चयन की है अतः आज विद्यार्थियों को उपयुक्त विषयों के चयन हेतु निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

ii. **कक्षा कक्ष व्यवहार के लिए (For Classroom Behaviour)**- बालक जब से विद्यालय में प्रवेश लेता है तथा जब तक विद्यालय में रहता है वह विभिन्न स्तरों से गुजरता है। प्रत्येक स्तर पर उससे एक विशेष प्रकार के व्यवहार की आशा की जाती है। इस व्यवहार को बालक को सिखाना पड़ता है, तथा इसके लिए निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है। बालक को कक्षा में किस प्रकार का आचरण करना है उसे अपने गुरूजनों, साथियों से किस प्रकार का व्यवहार करना है, तथा उसे अपनी कक्षा की भौतिक सम्पत्ति को किस प्रकार सहेज कर रखना है, यह सब वह निर्देशन से ही सीखता है।

iii. शैक्षिक उपलब्धि बढ़ाने हेतु (For the Increasment of Educa-tional Achievenent) - विद्यालय में अलग-अलग मानसिक स्तर के विद्यार्थी अध्ययन करते हैं कभी-कभी विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि उसके मानसिक स्तर से मेल नहीं खाती। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। किन्तु, इसका प्रमुख कारण उचित निर्देशन का अभाव है। प्रायः निर्देशन के अभाव में विद्यार्थी प्राप्त ज्ञान को अभिव्यक्त करने में असफल रहता है, जिससे उसकी शैक्षिक उपलब्धि पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उचित प्रकार से दिया गया निर्देशन बालक की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने में सहायक है।

iv. **विद्यालय की अन्य गतिविधियों हेतु (For Other Activities of School)**- विद्यालय केवल विद्या का मन्दिर ही नहीं है अपितु वहाँ अध्ययन-अध्यापन के अतिरिक्त अन्य प्रकार की गतिविधियाँ सम्पन्न होती हैं, किन्तु अभिभावकों तथा विद्यार्थियों की नजर में इन गतिविधियों का महत्त्व न होने के कारण विद्यालय के बहुत कम विद्यार्थी इस प्रकार की गतिविधियों में भाग लेते हैं। यदि अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को इस प्रकार का निर्देशन प्रदान किया जाये तो न केवल विद्यार्थियों की सहभागिता बढ़ेगी अपितु उनका तीव्रतर विकास भी होगा।

व्यावसायिक क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance in Vocational Field) बालक का व्यक्तिगत एवं शैक्षिक जीवन उसके व्यावसायिक जीवन की आधारशिला है। घर और विद्यालय मिलकर बालक को भली-भाँति जीवन यापन के लिए तैयार करते हैं। तभी वह समाज के लिए उपयोगी नागरिक सिद्ध हो सकता है अतः व्यक्तिगत एवं शैक्षिक जीवन में निर्देशन की जितनी आवश्यकता अनुभव होती है। व्यावसायिक जीवन के लिए निर्देशन की आवश्यकता उससे कहीं अधिक है। निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत हम अपनी बात को और अधिक स्पष्ट कर सकेंगे।

i. **उपयुक्त व्यवसाय के चयन हेतु (for Selection of Appropriate Occupation)** वर्तमान युग औद्योगिकीकरण का युग है। औद्योगिकीकरण के साथ-साथ जनसंख्या वृद्धि भी हुई है, जिसके कारण बेरोजगारी की समस्या बढ़ी है। परन्तु, आज बेरोजगारी का एक कारण लोगो द्वारा उपयुक्त व्यवसाय का चयन न करना भी है। खासतौर पर आज का युवा दिग्भ्रमित है। जिस तरफ सब जा रहे हैं वह भी उसी अंधी दौड़ में शामिल है। उसे अपनी रूचि, क्षमताओं तथा योग्यताओं का तो पता ही नहीं है। भारत जैसा देश जहाँ आबादी का सबसे बड़ा हिस्सा युवाओं का है तथा जहाँ युवा बेरोजगारी की समस्या से जूझ रहे हैं वहाँ निर्देशन की आवश्यकता और भी बढ़ जाती है। आज भारत को अच्छे निर्देशकों की आवश्यकता है जो यहां के युवाओं की ऊर्जा को सकारात्मक दिशा में मोंड़ कर (लगाकर) भारत को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बना सके।

ii. **व्यावसायिक क्षमताओं के विकास हेतु (For the Development of Vocational Skill)-** केवल उपयुक्त व्यवसाय का चयन करने में सहायता करने पर ही निर्देशन की भूमिका समाप्त नहीं हो जाती अपितु व्यवसाय चयन के बाद निर्देशन की भूमिका और अधिक महत्त्व पूर्ण हो जाती है। तकनीकी विकास के इस युग में प्रत्येक व्यवसाय विशिष्ट से विशिष्टतर होता जा रहा है। व्यवसाय आरम्भ करते ही कोई भी व्यक्ति अपने व्यवसाय का विशेषज्ञ नहीं हो सकता। कभी-कभी व्यवसाय में असफलता का भय भी बना रहता है। व्यवसाय चयन के बाद व्यवसाय विशेष की बारीकियों को समझने तथा अपने प्रिय व्यवसाय में अपनी क्षमताओं को बढ़ाते रहने के लिए सतत् निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है।

iii. **तकनीकी जटिलताओं का सामना करने के लिए (To Face Technical Complication)-** आज का युग तकनीकी का युग है। आज हर कार्यक्षेत्र में नयी-नयी तकनीकों का विकास हो रहा है। आज इस क्षेत्र में इतने नवाचार हो रहे हैं कि किसी भी व्यक्ति का इन सबसे स्वयं अवगत रहना तथा इन सारी कुशलताओं का स्वंय में विकास करना लगभग असम्भव सा कार्य है। अतः आज इन सभी क्षेत्रों में हो रहे नवाचारों को समझने के लिए उसे निर्देशक की आवश्यकता पड़ती है।

सामाजिक जीवन में निर्देशन की आवश्यकता (Need of Guidance in Social Life)

परिवार को समाज की प्रथम इकाई माना जाता है तथा परिवार से प्रशिक्षित होकर ही बालक समाज में जाता है। ऐसा समझा जाता है कि जो बालक परिवार में भली-भाँति समायोजित हो जाते है वो समाज में भी भली प्रकार से समायोजन करने में समर्थ होते हैं। लेकिन कभी-कभी परिस्थितियाँ इसके विपरीत भी होती हैं। कोई-कोई परिवार बालक को अत्यन्त लाड़ प्यार देकर पालते हैं तथा बालक को आत्मनिर्भर होने का अवसर ही प्रदान नहीं करते। ऐसा बालक जब समाज में जाता है तो वह संरक्षण के अभाव में स्वयं को असुरक्षित अनुभव करने लगता है। परिणामतः वह कुसमायोजन का शिकार हो जाता है अतः समाज में सामंजस्य हेतु निर्देशन की महती आवश्यकता है। वस्तुतः बालक को समाज में केवल अपनी विचारधाराओं, धारणाओं तथा विश्वासों के आधार पर ही नहीं अपितु सामाजिक विश्वासों, धारणाओं तथा विचारधाराओं के साथ सामंजस्य स्थापित करते हुए जीवन यापन करना होता है तथा इन सबके लिए उसे निर्देशन की आवश्यकता होती है।

i. **समाज के परिवर्तनशील मानदंडों में समायोजन के लिए (For the Compatibility of Changing Social Norms).** सामाजिक परिवर्तन समाज की अनिवार्य आवश्यकता है। कोई भी समाज समय-समय पर अपने मानदंडों को बदले बिना नहीं रह सकता। तकनीकी के विकास तथा वैश्वीकरण की प्रक्रिया ने समाज के मानदंडों में तीव्रगामी परिवर्तन ला दिये हैं। इन बदलते सामाजिक मानदंडों में समायोजन के लिए व्यक्ति को निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता है।

ii. **मजबूत लोकतन्त्र के निर्माण हेतु (For the Building of Strong Democracy)-** मजबूत लोकतन्त्र के निर्माण हेतु भी निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। आज भारत के समक्ष क्षेत्रवाद, जातिवाद, तथा साम्प्रदायिकता जैसी अनेक समस्याऐं हैं जो भीतर ही भीतर राष्ट्र की मजबूत नींव को खोखला कर रही हैं। आज वैश्वीकरण का युग है जिसमें प्रत्येक राष्ट्र को अत्यन्त मजबूत होकर विश्व पटल पर स्वयं को प्रस्तुत करना है। अतः ऐसे में एक निर्देशक का दायित्व और भी बढ़ जाता है कि वह राष्ट्र के लोगों को इन संकीर्ण मानसिकताओं से ऊपर उठाकर उन्हें एक मजबूत राष्ट्र के निर्माण के लिए प्रेरित करे।

1.9 निर्देशन का विषय क्षेत्र Scope of Guidance

हम पिछले पृष्ठों में यह बात जान चुके हैं कि निर्देशन जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है अतः जन्म से लेकर मृत्यु तक व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन निर्देशन का कार्य क्षेत्र कहा जा सकता है। यद्यपि निर्देशन के कार्यक्षेत्र को बताना सप्रयास निर्देशन प्रक्रिया का सीमांकन करना है; तथापि अध्ययन को सरल बनाने की दृष्टि से हम निर्देशन के कार्य क्षेत्र को कुछ बिन्दुओं के अन्तर्गत अभिव्यक्त करने का प्रयास करेंगे।

i. **व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन (Personal Life of Individual)**- प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जैसे शारीरिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक आदि। ये समस्याऐं व्यक्ति को तोड़कर रख देती हैं, किन्तु, एक कुशल निर्देशक व्यक्ति को इन समस्याओं से न केवल उबार लाता है बल्कि उसे जीवन में सफलता भी प्राप्त कराता है, अतः व्यक्ति का सम्पूर्ण वैयक्तिक जीवन निर्देशन का कार्य क्षेत्र कहा जा सकता है।

ii. **व्यक्ति का सामाजिक जीवन** (**Social Life of Individual**)- व्यक्ति परिवार के सम्पर्क में आते ही अपना सामाजिक जीवन जिसे हम पारिवारिक जीवन कहते हैं जीना आरम्भ कर देता है। धीरे-धीरे वह समाज के सीधे सम्पर्क में आता है और अनेक सामाजिक समस्याओं का सामना करने लगता है। इन समस्याओं के समाधान के लिए उसे निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है। हम कह सकते हैं कि व्यक्ति के समस्त सामाजिक सम्बन्ध निर्देशन के कार्य क्षेत्र में आते हैं।

iii. **व्यक्ति के शैक्षिक क्रियाकलाप (Educational Activity of Individual)** विद्यालय में प्रवेश के बाद विषय चयन से लेकर विषय को समझने, उसकी कठिनाईयाँ दूर करने, विद्यार्थियों के पारस्परिक सम्बन्ध, विद्यार्थी और अयापकों के कार्य सम्बन्ध, विद्यार्थी और कार्यालय, विद्यार्थी और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी तथा विद्यार्थी की अध्ययन से सम्बन्धित अन्य समस्याऐं सभी निर्देशन के कार्यक्षेत्र के अन्तर्गत आती है, क्योंकि बिना निर्देशन के इन समस्याओं का समाधान सम्भव नहीं है।

iv. **व्यक्ति के व्यावसायिक क्रियाकलाप (Vocational Activity of Individual)** प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन यापन के लिए कोई न कोई कार्य अवश्य करता है। जीवन यापन के लिए किया जाने वाला कार्य व्यवसाय की श्रेणी में आता है। बिना उपयुक्त निर्देशन के उचित व्यवसाय का चयन नहीं किया जा सकता। व्यवसाय चयन के बाद भी उसके व्यावसायिक जीवन में अनेक समस्याऐं आती रहती हैं; इन समस्त समस्याओं का निदान करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। अतः व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यावसायिक जीवन निर्देशन के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आता है।

1.10 निर्देशन की उपयोगिता Significance of Guidance

एक ओर कुछ दार्शनिक इस संसार को ‘असार‘ कहते हैं तो दूसरी ओर कुछ दार्शनिकों की मान्यताये हैं कि इस संसार में कुछ भी अनुपयोगी नहीं है इस दृष्टि से किसी भी दूसरे तत्व की ही भाँति निर्देशन की भी अपनी उपयोगिता है।

प्रत्येक सम्प्रदाय के धर्म ग्रन्थ निर्देशन की उपयोगिता से भरे पड़े हैं इसीलिए जीवन जीने की कला सिखाने वाली महान विभूतियों को इन ग्रन्थों में भगवान, देवता, ईश्वर का पुत्र, गुरू और पैगम्बर आदि सम्माननीय नामों से सम्बोधित किया गया है।

यहाँ हम वर्तमान परिस्थियों में निर्देशन की उपयोगिता पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

i. **आधारभूत कौशलों को सीखने में सहायक (Helpful to Learn Fundamental Skills)-** इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज तक कोई भी व्यक्ति बिना उपयुक्त निर्देशन के आधारभूत कौशलों को नहीं सीख पाया है जैसे - खड़े होना, चलना, बोलना, पढ़ना, लिखना, खाना-पीना इत्यादि। अतः शैक्षिक, व्यक्तिगत, व्यवसायिक एवं सामाजिक जीवन में आधारभूत कौशलों को सीखने के लिए निर्देशन की भूमिका महत्त्व पूर्ण है।

ii. **बालक का परिवार से विद्यालय में समायोजन (Adjustment of Child from Family to Home)-** अपने बाल्यकाल में बालक जब परिवार से विद्यालय का रूख करता है तब उसके सामने समायोजन की भीषण समस्या होती है निर्देशन के द्वारा ऐसी स्थिति में बालक का विद्यालय में समायोजन सरलतापूर्वक किया जा सकता है।

iii. **अध्ययन छोड़ने वाले बालकों को पुनः अध्ययन के लिए प्रेरित करने में सहायक (Helpful to Re-enrollment of Droppers)-** अपने अध्ययन कार्य को बालक अनेक कारणों से बीच में ही छोड़ देते हैं। उचित निर्देशन के द्वारा इन बच्चों को पुनः अध्ययन के लिए प्रेरित करने में पर्याप्त सहायता मिलती है।

iv. **शैक्षिक उपलब्धि एवं प्रगति में सहायक (Helpful in Academic Achievment and Development)-**विषयवस्तु का ज्ञान होना एक बात है तथा उसकी श्रेष्ठ अभिव्यक्ति दूसरी बात। अनेकशः विषय वस्तु का पर्याप्त ज्ञान होने पर भी अनेक बालकों की शैक्षिक उपलब्धि बहुत कम रह जाती हैं ऐसे बालकों की शैक्षिक उपलब्धि एवं प्रगति को उचित निर्देशन के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है।

v. **बालक के समग्र विकास में सहायक (Helpful in Wholesome Development of Child)-** निर्देशन कार्य बालक को न केवल जीवन का अर्थ समझने में सहायता देता है अपितु उसके वैयक्तिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, व्यावसायिक एवं तकनीकी विकास में पूरी तरह से सहायता करता है।

vi. **भविष्य की योजना बनाने में सहायक (Helpful to Future Planning)-** निर्देशन की प्रक्रिया के दौरान निर्देशक बालक की दैनंदिन सामान्य समस्याओं से अवगत होता रहता है अतः वह भविष्य की शिक्षा योजना बनाते समय इन समस्याओं का विशेष ध्यान रखता है। हम कह सकते हैं कि निर्देशन का कार्य भविष्य की योजना बनाने में सहायक है।

1.11 सारांश

ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव के पास स्वयं की भाषा, बुद्धि एवं विवेक आदि होते हुए भी उपयुक्त विकास के लिए उसे किसी अन्य की सहायता लेनी पड़ती है। व्यक्ति की उत्तम क्षमताओं का विकास करने से सहायता करने का कार्य निर्देशन कहलाता है। निर्देशन की प्रक्रिया प्रारम्भ करने से पूर्व हमें निर्देशन के सिद्धान्तों से अवश्य परिचित होना चाहिए। हमें यह ज्ञात होना चाहिए कि निर्देशन एक सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक प्रक्रिया है। निरन्तर चलने वाली इस प्रक्रिया में निर्देशक को सामाजिकता एवं नैतिकता का ध्यान रखना चाहिए। निर्देशन कार्य करने से पूर्व उसे वैज्ञानिक आधारों पर परिस्थितियों का विश्लेषण कर लेना चाहिए। निर्देशक को चाहिए कि वह अपने उपबोध्य को सकारात्मक निर्देशन दे तथा उसे आत्मनिर्भर बनाने का प्रयास करे। उपबोध्य निर्देशक का निर्देशन मानने अथवा न मानने के लिए स्वतन्त्र हो निर्देशन की प्रक्रिया लचीली होनी चाहिए। व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को समान महत्त्व दिया जाना चाहिए तथा उपबोध्य के सम्पूर्ण विकास का प्रयास करना चाहिए।

एक से अधिक निर्देशक होने की स्थिति में निर्देशकों को परस्पर समन्वय स्थापित करना चाहिए। निर्देशक को चाहिए कि वह निरपेक्ष रहकर निर्देशन का कार्य करे तथा विशिष्ट क्षेत्रों में निर्देशन के लिए निर्देशक को प्रशिक्षण प्राप्त कर लेना चाहिए।

निर्देशन की अत्यधिक आवश्यकता होते हुए भी भारत में इसके प्रति जागरूकता का अभाव है। निर्देशकों को उपयुक्त प्रशिक्षण नहीं मिलता फलतः समाज में कुशल निर्देशकों की कमी है। तेजी से बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियाँ तथा बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के कारण भी निर्देशन के सुपरिणाम नहीं मिल रहे। निर्देशक भी यदा कदा पूर्वाग्रहों से ग्रसित हो जाते हैं; व्यक्तिगत विचारधारा को महत्त्व देने लगते हैं तथा व्यक्ति सापेक्ष हो जाते हैं। शिक्षा का गिरता हुआ स्तर भी निर्देशन कार्य में बाधा बनता है।

हमारे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता है। मुख्य रूप से व्यक्तिगत जीवन में क्षमताओं के विकास के लिए, पारिवारिक जीवन में समायोजन के लिए, तथा किशोरावस्था का सामना करने के लिए निर्देशन अति आवश्यक है। इसी प्रकार शैक्षिक क्षेत्र में उपयुक्त विषयों के चयन के लिए, कक्षा कक्ष व्यवहार के लिए तथा अपनी शैक्षिक उपलब्धियाँ बढ़ाने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। व्यावसायिक क्षेत्र में उपयुक्त व्यवसाय चयन करने के लिए, व्यवसायिक क्षमताओं का विकास करने के लिए तथा तकनीकी जटिलताओं का सामना करने के लिए निर्देशन की आवश्यकता होती है। सामाजिक जीवन में बदलते हुए मानदंड तथा मजबूत लोकतन्त्र के लिए निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है। व्यक्ति का व्यक्तिगत जीवन सामाजिक जीवन, शैक्षिक क्रियाकलाप, सामाजिक क्रियाकलाप आदि निर्देशन के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं।

1.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. गुड के अनुसार
2. निर्देशन के किन्हीं पाँच सिद्धांतों के नाम हैं-
    i. ज्ञान का सिद्धान्त
    ii. सार्वभौमिकता का सिद्धान्त
    iii. निरन्तरता का सिद्धान्त
    iv. सामाजिकता का सिद्धान्त
    v. नैतिकता का सिद्धान्त
3. निर्देशन की महत्त्व पूर्ण अवधारणाएं निम्नवत हैं
    i. मानव समाज में प्रत्येक व्यक्ति को निर्देशन की आवश्यकता होती है।
    ii. निर्देशन की दृष्टि से प्रत्येक व्यक्ति अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है।
    iii. निर्देशन अधिगम (Learning) में सहायक होता हैं।
    iv. निर्देशन व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।
    v. निर्देशन का कार्य उपबोध्य (Learner) की क्षमताओं का विकास करना है।
    vi. निर्देशन उपबोध्य की उपलब्धि और प्रगति को बढ़ाता है।

1.13 संदर्भ ग्रंथ

1. Agrawal Rashmi, (Education Vocational Guidance and counseling) Shipra Publications, Delhi- 11092 (2006)
2. Suri S.P., T.S. Sodhi, (Guidance and counseling), Bawa Publication Patiala (1997)
3. Sharma R.A., (Career information in career guidance) Surya Publication Meerut (2004)
4. Sharma R.A (Guidance and counseling) Vinay Rakheia c/o R. Lall book Depot Meerut (2010)
5. सिंह रामपाल राधावल्लभ उपाध्याय, (शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. जायसवाल सीताराम (शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श), अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा (2009)

1.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. निर्देशन के प्रमुख सिद्धान्त कौन-कौन से हैं?
2. निर्देशन की प्रमुख अवधारणायें स्पष्ट कीजिए?
3. भारतवर्ष में निर्देशन के क्षेत्र में कौन-कौन सी समस्याऐं हैं?
4. निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व को स्पष्ट कीजिए?

इकाई 2 निर्देशन के प्रकार: शैक्षिक , व्यवसायिक एवं व्यक्तिगत , समूह निर्देशन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण
2.4 शैक्षिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा
2.4.1 शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व
2.4.2 शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्य
2.5 व्यावसायिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा
2.5.1 व्यावसायिक निर्देशन का महत्त्व
2.5.2 व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य
2.6 व्यक्तिगत निर्देशन: अर्थ
2.6.1 व्यक्तिगत निर्देशन के प्रकार
2.6.2 व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व
2.6.3 व्यक्तिगत निर्देशन के उद्देश्य
2.7 सामूहिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा
2.7.1 सामूहिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व
2.7.2 सामूहिक निर्देशन के उद्देश्य
2.8 सारांश
2.9 संदर्भ ग्रंथ
2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

जटिलताओं के आधुनिक युग में, जैसे-जैसे मानव समाज विकसित होता जा रहा है उसके जीवन में जटिलतायें और बढ़ती जा रही हैं। किसी समय में कंटीली घास को ले आने वाला व्यक्ति कुशल कहलाता था किन्तु वर्तमान परिप्रेक्ष्य में कुशल कहलाने के लिए मनुष्य को अपने भीतर अनेक योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास करना होगा। निरन्तर जटिल होते इस समाज में कोई भी व्यक्ति केवल अपने अनुभवों के द्वारा पूर्ण सफल नहीं हो सकता । समस्याओं का समाधान करने के लिए,

अध्ययन में मन लगाने के लिए, उपलब्धि का स्तर ऊँचा उठाने के लिए, आदत में सुधार के लिए अथवा इसी तरह के किसी अन्य कारण से जब हम अपने अनुभव अथवा ज्ञान को व्यक्ति विशेष के लिए प्रदान करते हैं तब अनुभव एवं ज्ञान के आदान-प्रदान की यह प्रक्रिया निर्देशन का रूप ले लेती हैं।

वास्तव में निर्देशन एक बहुमुखी प्रक्रिया है। उदाहरण के लिए जब व्यक्ति शैक्षिक निर्देशन ले रहा होता है तब वह अपना व्यक्तिगत तथा सामाजिक परिष्कार भी कर रहा होता है। इसी प्रकार अनेक बार शैक्षिक निर्देशन बालक की व्यावसायिक समस्याओं का भी समाधान कर देता है। अतः निर्देशन को यदि विभिन्न प्रकारों में बाँटा जाये, तो भी ये परस्पर इतने अन्तर्सम्बद्ध होंगे कि उनमें भेद करना मुश्किल हो जायेगा। प्रस्तुत इकाई में आप निर्देशन के प्रकारों का अध्ययन करेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. निर्देशन के अनेक प्रकारों के विषय में जान सकेंगे।
2. शैक्षिक निर्देशन के अर्थ एवं परिभाषा के बारे में जान सकेंगे।
3. शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता महत्त्व एवं उद्देश्य के बारे में जान सकेंगे।
4. व्यावसायिक निर्देशन के अर्थ एवं परिभाषा से अवगत हो सकेंगे।
5. व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य एवं महत्त्व को समझ सकेंगे।
6. व्यक्तिगत एवं सामूहिक निर्देशन के अर्थ एवं परिभाषा से अवगत हो सकेंगे।
7. व्यक्तिगत निर्देशन के विभिन्न प्रकारों से अवगत हो सकेंगे।
8. व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता, महत्त्व एवं उद्देश्यों को जान सकेंगे।
9. सामूहिक निर्देशन की आवश्यकता, महत्त्व एवं उद्देश्यों को भली भाँति समझ सकेंगे।

2.3 निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण Classifiction of Types of Guidance

जैसा कि हम ऊपर कह चुके हैं कि केवल अध्ययन की दृष्टि से निर्देशन के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण किया जा सकता है। अध्ययन की दृष्टि से विभिन्न विद्वानों ने निर्देशन के अनेक प्रकार बताये है जिनमें कुछ निम्नवत है:-

पैट्रसन के अनुसार निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण Classification of Guidance According to Petrson

पैट्रसन ने निर्देशन को पाँच भागो में बाँटा है। पैट्रसन के अनुसार निर्देशन का वर्गीकरण इस प्रकार है:-

1. शैक्षिक निर्देशन Educational Guidance
2. व्यावसायिक निर्देशन Vocational Guidance
3. व्यक्तिगत निर्देशन Personal Guidance
4. स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देशन Health & Hygenic Guidance
5. आर्थिक निर्देशन Financial Guidance

विलियम मार्टिन के अनुसार निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण Classificat-ion of Guidance According to William Martin

विलियम मार्टिन प्रॉक्टर के द्वारा उनकी पुस्तक “Educational and Vocational Guidance” में निर्देशन के निम्नांकित 6 प्रकार बताये गये है:-

1. शैक्षिक निर्देशन Educational Guidance
2. व्यावसायिक निर्देशन Vocational Guidance
3. सामाजिक एवं नागरिक कार्यां में निर्देशन Social and Civic Guidance
4. स्वास्थ्य एवं शारीरिक समस्याओं से सम्बन्धित निर्देशन Guidance for Health & Physical Problem
5. अवकाश के उत्तम उपयोग के लिये निर्देशन Guidance for Leisure
6. चरित्र निर्माण के कार्यों में निर्देशन Guidance for Development of Charactor

पश्चिमी विद्वानों के द्वारा किया गया निर्देशन का उपरोक्त वर्गीकरण, अस्पष्ट एवं अधूरा है। अतः निर्देशन को भली भांति समझने के लिए इसका वर्गीकरण निम्नंकित प्रकार से किया जा सकता है:-

1. क. वैयक्तिक निर्देशन
   ख. सामूहिक निर्देशन
2. क. प्रत्यक्ष निर्देशन
   ख. अप्रत्यक्ष निर्देशन
3. क. औपचारिक निर्देशन
   ख. अनौपचारिक निर्देशन
4. क. निर्देशात्मक निर्देशन
   ख. सुझावात्मक निर्देशन
5. क. सैद्धान्तिक निर्देशन
   ख. प्रयोगात्मक निर्देशन
6. क. मौखिक निर्देशन
   ख. लिखित निर्देशन

निर्देशन के इन सभी प्रकारों को पुनः निम्नांकित भागों में बाँटा जा सकता हैः-

1. शैक्षिक निर्देशन
2. व्यावसायिक निर्देशन
3. सामाजिक निर्देशन
4. चिकित्सकीय निर्देशन
5. धार्मिक निर्देशन
6. तकनीकी निर्देशन
7. पारिवारिक निर्देशन
8. अवकाश सदुपयोग से सम्बन्धित निर्देशन
9. नैतिक निर्देशन

हम यह कह सकते हैं कि पूर्वोक्त सभी प्रकार के निर्देशन (शैक्षिक, व्यावसायिक, स्वास्थ्य सम्बन्धी आदि) व्यक्तिगत अथवा सामूहिक दोनों प्रकार से दिये जा सकते हैं। प्रत्येक वैयक्तिक अथवा सामूहिक निर्देशन, प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार का हो सकता है। प्रत्येक प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष निर्देशन औपचारिक अथवा अनौपचारिक निर्देशन, निर्देशात्मक अथवा सुझावात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है और प्रत्येक निर्देशात्मक अथवा सुझावात्मक निर्देशन सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक दोनों प्रकार का हो सकता है। इस प्रकार निर्देशन कुल मिलाकर 576 प्रकार का हो सकता है ($9 \times 2^{12} = 576$)
यहाँ पर हम मुख्य: रूप से शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन का अध्ययन करेंगे

2.4 शैक्षिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा

निर्देशन के विभिन्न प्रकारों के विषय में जानने के बाद हम शैक्षिक निर्देशन शब्द को जानने का प्रयास करेंगे। अब हम जानते हैं कि निर्देशन एक व्यापक शब्द है तथा हमें अपने जीवन के जिस किसी भी क्षेत्र में निर्देशन की आवश्यकता होती है, निर्देशन का वही प्रकार हमारे लिये उपयोगी हो जाता है। जैसे सामाजिक समायोजन के लिए सामाजिक निर्देशन, शैक्षिक समायोजन के लिये शैक्षिक निर्देशन तथा व्यावसायिक समायोजन के लिये व्यावसायिक निर्देशन।
आदि काल से ही अपने जीवन में अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना कर रहा मानव समाज आधुनिक समय में जटिल समाज की संज्ञा से विभूषित है। तकनीकी के विकास ने इस जटिलता को और भी बढ़ा दिया है। आज मनुष्य की रोटी, कपड़ा और मकान की आवश्यकताओं को गौण करके तकनीकी तथा अन्य समस्याओं ने स्वयं महत्त्व पूर्ण स्थान ले लिया है। दूसरे शब्दों में आज का

मानव यन्त्रों की भीड़ में स्वयं भी यन्त्रवत् बनता जा रहा है। भारत सहित अनेक देशों की सरकारों ने मानव को संसाधन मानकर इस आग में घी डालने का ही काम किया है।

आधुनिक तकनीकी युग में मनुष्य का अधिकांश समय किसी न किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त करने में ही व्यतीत होता है। इसके अतिरिक्त मनुष्य के जीवन का महत्त्व पूर्ण भाग, जिसे हम किशोरावस्था एवं युवावस्था के नाम से सम्बोधित करते हैं, विद्यालयों में बीतता है; इसलिये उसके सामने शैक्षिक समायोजन से सम्बन्धित समस्याऐं सर्वाधिक होती हैं। अतः प्रायः प्रत्येक मनुष्य को शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।

शैक्षिक निर्देशन का अर्थ

निर्देशन का यह भाग शैक्षिक सेवा एवं विद्यालयों से सम्बन्धित है। इस सेवा के माध्यम से विद्यार्थी अपनी प्रतिभा का अधिकतम उपयोग करने मे सक्षम होते हैं। इसके अतिरिक्त निर्देशन के द्वारा उनका वैयक्तिक विकास भी होता है। निर्देशन, चाहे वह किसी भी प्रकार का क्यों न हो, एक प्रकार की शैक्षिक प्रक्रिया है। अपने व्यापक अर्थों में हम किसी भी प्रकार के निर्देशन को शिक्षा प्रक्रिया का अंग मान सकते हैं, किन्तु जब हम "शैक्षिक निर्देशन" शब्द का प्रयोग कर रहे होते हैं तब हमारा तात्पर्य विद्यार्थी के शैक्षिक समायोजन में आने वाली समस्याओं का समाधान करने से होता है। यद्यपि शिक्षा भी एक प्रकार का निर्देशन ही है, तथापि शैक्षिक निर्देशन शिक्षण कार्य का स्थान नही ले सकता। शैक्षिक निर्देशन को परिभाषित करते हुए हम यह कह सकते हैं कि "विद्यार्थी जीवन में आने वाली ज्ञान प्राप्ति से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने में जब हम सहायता करते हैं तब यह प्रक्रिया शैक्षिक निर्देशन कहलाती है"

शैक्षिक निर्देशन की परिभाषा

विभिन्न भारतीय एवं पश्चिमी विद्वानों ने शैक्षिक निर्देशन को अपनी अपनी रीति से परिभाषित करने का प्रयास किया है। इनमें से कुछ परिभाषाएं इस प्रकार हैं-

किट्सन - "शिक्षा का वैयक्तिकरण करने का प्रयास ही निर्देशन है"

लिफिवर, टसेल एवं विट्जिल "निर्देशन एक शैक्षिक सेवा है जो विद्यालय में प्राप्त दीक्षा का अपेक्षाकृत अधिक प्रभावशाली उपयोग करने में विद्यार्थियों की सहायता प्रदान करने के लिये आयोजित की जाती है"

कैरोल एच. मिलर "निर्देशन सेवाओं का सम्बन्ध विद्यालय के सम्पूर्ण कार्यक्रमों के अन्तर्गत आने वाले उन संगठित क्रियाकलापों से है जो विद्यार्थी के वैयक्तिक विकास की आवश्यकताओं में सहयोग देने के उद्देश्य से आयोजित किये जाते हैं"

आर्थर जे. जोन्स "शैक्षिक निर्देशन का सम्बन्ध छात्रों को प्रदान की जाने वाली उस सहायता से है जो उन्हें विद्यालयों, पाठ्यक्रमों एवं शिक्षालय के जीवन से सम्बद्ध चुनावों एवं समायोजन के लिए अपेक्षित है"

2.4.1 शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व

मनुष्य की ही भांति इस धरती पर चींटी से लेकर हाथी तक का अपना समाज होता है तथा उनके समाज के अनुभवी एवं सक्रिय सदस्य अपने समाज के नए सदस्यों को विभिन्न कार्यों से निर्देशन प्रदान करते हैं। अनेक वैज्ञानिक अनुसंधानों ने भी इस बात को सिद्ध किया है। मनुष्य स्वंय को समस्त प्राणी जगत में सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता है। अतः हम यह कह सकते हैं कि मनुष्य को जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त शैक्षिक निर्देशन की सर्वाधिक आवश्यकता है। वस्तुतः ''शैक्षिक निर्देशन शैक्षिक परिवेश में समायोजन से सम्बन्धित प्रत्येक समस्या से जुड़ा हुआ है।'' तथापि शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता को हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत सम्मिलित कर सकते हैं-

1. **अध्ययन के विषय चयन के लिए** -अपने शैक्षिक जीवन में जब विद्यार्थी को अध्ययन के विषयों का चयन करना होता है, उस समय तक उसकी मानसिक सामर्थ्य एवं अनुभव इतना कम होता है कि वह सही निर्णय नहीं ले पाता। इस समय तक न तो वह अपनी क्षमताओं को पहचान पाया होता है और न ही अपनी रूचि को समझ पाता है। निर्देशन के अभाव में अपने साथियों की देखा-देखी एवं मित्रों का अनुसरण करते हुए विषयों का चयन कर लेता है। इन परिस्थितियों में यदि उसे समुचित शैक्षिक निर्देशन प्राप्त हो जाये तो वह इस समस्या से बच सकता है। समुचित शैक्षिक निर्देशन के माध्यम से वह कृषि, विज्ञान, कला अथवा वाणिज्य विषय का चयन अपनी रूचि, योग्यता एवं क्षमता के अनुसार कर सकता है।
2. **विद्यालय एवं जीवन में अनुशासन स्थापना के लिए** - अनुशासनहीनता की समस्या आज शिक्षा की सार्वभौमिक समस्या बन गयी है। अध्यापकगण एवं समाज अनुशासनहीनता की समस्या के लिए विद्यार्थियों को दोषी ठहराते हैं। अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने भी किशोरवय बालकों को स्वभाव से विद्रोही सिद्ध किया है। दुनिया भर के शिक्षा शास्त्री अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान खोजने में लगे हैं तथा आज भी इस समस्या के समाधान के लिए नित नये प्रयोग किये जा रहे हैं। कोई किशोरावस्था में होने वाले शारीरिक तथा मानसिक परिवर्तन को अनुशासनहीनता का मूल मानता है तो कोई विद्यार्थी के विद्रोही स्वभाव को। कुछ विद्वान तथाकथित आधुनिकता, बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा, सामाजिक व सांस्कृतिक प्रदूषण आदि को भी अनुशासनहीनता का कारण मानते हैं। वास्तव में अनुशासनहीनता के मूल में केवल एक कारण है और वह है उपयुक्त शैक्षिक निर्देशन का अभाव। यदि विद्यार्थी को उपयुक्त शैक्षिक निर्देशन प्राप्त होता रहे तब ऊपर बताये गए अनुशासनहीनता के सभी कारण गौण हो जायेंगे तथा विद्यालयों के साथ-साथ विद्यार्थी के जीवन में भी अनुशासन स्थापित हो जायेगा।

3. **सीखने की प्रक्रिया को तेज करने के लिये** - जैसा कि हम पहले ही जान चुके हैं कि निरन्तर बढ़ते हुए तकनीक के विकास ने न केवल अभिभावकों की अपेक्षाओं को पहले से भी अधिक बढ़ा दिया है, अपितु विद्यार्थियों में भी प्रतिस्पर्धा की भावना तेज हो गयी है। कक्षा में प्रथम स्थान पर बने रहने का प्रयास बालक के मन पर एक प्रकार का दबाव बना देता है जिससे उसके सीखने की प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उपयुक्त शैक्षिक निर्देशन इन विषम परिस्थितियों में विद्यार्थी की सीखने की गति को बढ़ा सकता है तथा वह सीखने की प्रतिस्पर्धात्मक परिस्थितियों का सरलता से सामना कर सकते हैं।
4. **अध्ययन सामग्री का चुनाव करने के लिये** -आज बाजार में अनेक प्रकार की उच्चस्तरीय तथा निम्नस्तरीय अध्ययन सामग्री उपलब्ध है। जो विद्यार्थी को भ्रमित करने के लिए पर्याप्त है। समुचित शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थी की इस कठिनाई को हल कर सकता है।
5. **उपयुक्त अध्ययन विधि का चयन करने के लिए**-अध्ययन सामग्री का चयन करने के पश्चात विद्यार्थी के सामने सबसे बड़ी समस्या उपयुक्त अध्ययन विधि का चुनाव करने की आती है। प्रायः प्रत्येक विद्यार्थी के लिये अलग-अलग प्रकार की अध्ययन विधियाँ उपयोगी होती हैं। इसके लिये भी उसे उचित शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है।
6. **परीक्षा की समुचित तैयारी के लिए**- प्रायः यह देखा गया है कि विद्यार्थी अत्यधिक अध्ययन तथा ज्ञानार्जन के बाद भी परीक्षा में अपेक्षित अच्छे अंक प्राप्त करने में असफल रहता है। इसका मुख्य कारण प्राप्त ज्ञान को विधिवत अभिव्यक्त करने में कठिनाई का अनुभव करना है। इस समस्या के निदान के लिए भी समुचित शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता है।

शैक्षिक निर्देशन का महत्त्व

1. **प्रतिभा का समुचित उपयोग** -शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी को उपयुक्त विषय सामग्री का चयन कराकर हम प्रतिभाओं का समुचित उपयोग करने में सक्षम होते हैं।
2. **श्रेष्ठतम पुस्तकों के चयन में सहायक** -प्रायः विद्यार्थी अपने अध्ययन के लिये उपयुक्त पुस्तकों का चयन नहीं कर पाता है। शैक्षिक निर्देशन श्रेष्ठतम पुस्तक के चयन में महत्त्व पूर्ण भूमिका निर्वाह करता है।
3. **आत्मज्ञान** - शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी को अपनी रुचि, आवश्यकताओं एवं क्षमताओं का ज्ञान हो जाता है तथा वह अपनी क्षमताओं का अधिकतम प्रयोग करने में समर्थ हो जाता है।
4. **अपव्यय तथा अवरोधन को रोकने में सहायक** - शिक्षा के क्षेत्र में अपव्यय तथा अवरोधन एक बड़ी समस्या है शैक्षिक निर्देशन की प्रक्रिया इस समस्या का समाधान करने में सक्षम है। इस प्रक्रिया के द्वारा हम विद्यालय के भौतिक संसाधनों का समुचित प्रयोग कर

पाते हैं। जिन विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन नहीं दिया जाता वहाँ लगभग 50 प्रतिशत विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हो जाते है अथवा पढ़ाई छोड़ देते हैं। अतः शैक्षिक निर्देशन अपव्यय तथा अवरोधन को रोकने में सहायता करता है।

5. **नैतिक मूल्यों का संरक्षण**- प्रत्येक समाज के नैतिक मूल्य दूसरे समाज के नैतिक मूल्यों से भिन्न होते हैं। भारतीय समाज विश्व के प्राचीनतम समाजों में से एक है तथा इसके नैतिक मूल्य विश्व में अपनी विशिष्ट पहचान रखते हैं। वर्तमान समय में भारत में पश्चिमी सभ्यता और उसके मूल्यों का प्रसार बड़ी तेजी से होता जा रहा है। इसका मुख्य कारण मीडिया द्वारा पश्चिमी मूल्यों का प्रचार-प्रसार है। वर्तमान समय में छात्र अपने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों तथा पश्चिमी सभ्यता के मूल्यों में से कौन से मूल्य उनके लिये सही हैं, इस बात को लेकर द्वन्द्व की स्थिति में है। उसके मस्तिष्क में निरन्तर इस बात को लेकर संघर्ष चलता रहता है जिसका प्रभाव उनके व्यक्तित्व पर पड़ता है और वे नकरात्मकता की ओर अग्रसर हो जाता है। शैक्षिक निर्देशन के द्वारा भारतीय समाज के विशिष्ट नैतिक मूल्यों का संरक्षण किया जाता है तथा पश्चिम की चकाचौंध से ग्रसित बालक को उपयुक्त निर्देशन से सही दिशा प्रदान की जाती है।
6. **वैज्ञानिक सामाजिक संरचना के निर्माण में सहायक** - शैक्षिक निर्देशन वैज्ञानिक सामाजिक संरचना के निर्माण में सहायता प्रदान करता है। यह छात्रों के अन्धविश्वासों को दूर करता है, साथ ही साथ उन्हें पश्चिम के अन्धानुकरण से भी बचाता है जिससे उनके मस्तिष्क में एक ऐसे समाज की छवि बन सके जो सभी प्रकार के पूर्वाग्रहों, रूढ़िवादों एवं सभी प्रकार के अन्धविश्वासों से मुक्त हो और वे इसके अनुरूप समाज की संरचना कर सके।
7. **प्रतिभा संरक्षण-** मानव समाज में प्रतिभाओं का अभाव कभी भी नहीं रहा। सच तो यह है कि सभ्यता का अद्यतन विकास प्रतिभाओं के बल पर ही सम्भव हो सका; किन्तु किसी भी समाज में प्रतिभाशाली बालकों को उसी प्रकार संरक्षण की आवश्यकता होती है जैसे किसी महत्त्व पूर्ण प्रजाति के पौधे को। शैक्षिक निर्देशन के द्वारा प्रतिभाओं का संरक्षण भी किया जाता है। भिन्न-भिन्न छात्र भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिभाओं के धनी होते हैं लेकिन इन प्रतिभाओं का समुचित विकास तभी हो पाता है जब इन्हें उचित मार्गदर्शन प्रदान किया जाये और यह शैक्षिक निर्देशन के द्वारा ही सम्भव है।
8. **पारिवारिक समस्याओं के समाधान में सहायक**-जीवन और समस्या दोनों साथ-साथ चलते हैं। जहां जीवन है वहां समस्या भी है। जीवन में आने वाली विभिन्न समस्याओं से बचने हेतु मानव समाज ने परिवार नामक संस्था का गठन किया। किन्तु परिवार में भी विभिन्न प्रकार की समस्याओं ने जन्म लेना प्रारम्भ कर दिया। विद्यालय में आने वाले विभिन्न छात्र कई बार अलग-अलग प्रकार की पारिवारिक समस्याओं से ग्रस्त होते है, जैसे परिवार में कलह का वातावरण, परिवार की आर्थिक स्थिति का अच्छा न होना, माता या पिता में से किसी का देहान्त, अपंगता इत्यादि। इन समस्याओं से जूझते हुए छात्रों को

शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता सबसे अधिक होती है जिससे वे इन समस्याओं से उभर कर अपना सम्पूर्ण ध्यान अध्ययन पर केन्द्रित कर सके।

2.4.2 शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्य

हम जानते हैं कि निरूद्देश्य किया गया कोई भी कार्य निरर्थक होता है अतः हमें शैक्षिक निर्देशन के भी उद्देश्यों का ज्ञान होना चाहिए। अनेक शिक्षाविदों के कार्यों का अध्ययन करने के पश्चात हम निम्नांकित प्रकार से शैक्षिक निर्देशन के उद्देश्यों का निर्धारण कर सकते हैं-

1. **विद्यालयों के चयन में सहायता करना** - भारतीय सन्दर्भ में एक छात्र प्राथमिक स्तर की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात विद्यालयों के चयन की समस्या से जूझने लगता है। वह इस समस्या से निम्न-माध्यमिक, उच्च-माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय स्तर पर भी दो-चार होता है। उसके पश्चात उसके समक्ष सबसे बड़ी समस्या होती है कि वह किस विद्यालय का चयन करे? हालाँकि यह समस्या बहुत छोटी प्रतीत होती है, परन्तु यह अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है, क्योंकि एक विद्यार्थी का भविष्य उपयुक्त विद्यालय के चयन पर निर्भर करता है। शैक्षिक निर्देशन इस संदर्भ में विद्यार्थियों को उचित परामर्श उपलब्ध कराकर उनकी समस्या का समाधान कर सकता है।
2. **पाठ्यक्रम की विविधता के अनुरूप विद्यालयों के चयन में सहायता करना** - वर्तमान समय में पाठ्यक्रम की विविधता के अनुरूप विभिन्न प्रकार के विद्यालयों की स्थापना की गयी है- जैसे बहुउद्देशीय विद्यालय, कृषि विद्यालय, चिकित्सा विद्यालय, व्यावसायिक विद्यालय इत्यादि। शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थियों की रुचि और उनकी बौद्धिक मानसिक योग्यता के अनुरूप उन्हें विद्यालयों के चयन में सहायता दी जाती है। विद्यार्थी शैक्षिक निर्देशन के द्वारा अपनी रुचि के अनुरूप विद्यालय का चयन कर सकता है तथा अपनी प्रतिभा को निखार सकता है।
3. **विद्यालय के प्रवेश नियमों को समझने में सहायता करना** -विभिन्न विद्यालयों में प्रवेश के लिए अनेक प्रकार की प्रवेश परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। इन प्रवेश परीक्षाओं के अनेक प्रकार होते हैं तथा प्रत्येक प्रवेश परीक्षा की अपनी कुछ तकनीकी औपचारिकताएं होती हैं, जिनमें विद्यार्थी प्रायः गलती कर जाते हैं तथा योग्यता होते हुए भी उस परीक्षा को उत्तीर्ण नहीं कर पाते। शैक्षिक निर्देशन के माध्यम से हम विद्यार्थी को औपचारिकताएं, नियम तथा परीक्षा हेतु तकनीकी रूप से समृद्ध कर देते हैं जिससे वे प्रवेश के नियमों को भली भाँति समझकर सफल हो जाते हैं।
4. **व्यवहारगत समस्याओं के समाधान के लिए** -विद्यार्थी को कक्षा में तथा कक्षा के बाहर अपने अनेक साथियों, अध्यापकों तथा कर्मचारियों से व्यवहार करना पड़ता है। कभी-कभी परिस्थिति विशेष के कारण अथवा विपरीत मनोदशा के कारण उसके स्वभाव में नकारात्मकता आ जाती है। यह नकारात्मकता कभी-कभी गम्भीर समस्या का रूप धारण

कर लेती है। उपयुक्त शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी की इन व्यवहारगत समस्याओं का समाधान किया जा सकता है।

5. **अभिव्यक्ति क्षमता का विकास करने के लिए** - शैक्षिक निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी स्वयं को मौखिक तथा लिखित दोनों ही प्रकार से अभिव्यक्त करना सीख जाता है तथा समाज के निर्माण में अपनी महत्त्व पूर्ण भूमिका का निर्वाह करने लगता है।
6. **अनुशासन स्थापना में सहायक** - अनुशासनहीनता आज के विद्यालयों का अभिन्न अंग बन गयी है। इसका एक प्रमुख कारण समुचित शैक्षिक निर्देशन का अभाव है। जिन विद्यालयों में शैक्षिक निर्देशन के माध्यम से विद्यार्थी को अनुशासित किया जाता है, वहाँ अनुशासनहीनता की समस्या प्रायः बहुत कम होती है।

2.5 व्यावसायिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा

जैसा कि हम पहले भी कह चुके हैं कि मानव स्वयं को जीव जगत का सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानता है। अतः उसे अन्य किसी भी प्राणी की अपेक्षा विशेष प्रशिक्षण की अत्यधिक आवश्यकता होती है। अपने से अधिक योग्य एवं सक्षम व्यक्ति के द्वारा कठिन परिस्थितियों में उचित मार्गदर्शन निर्देशन के अन्तर्गत आता है किन्तु यही निर्देशन जब व्यक्ति के भीतर छिपी हुयी किसी मेधा एवं सामर्थ्य को खोजकर उसके उचित एवं श्रेष्ठतम उपयोग करने के लिये प्रदान किया जाता है तथा व्यक्ति उससे जीवन निर्वाह के साथ-साथ आत्मसन्तोष भी प्राप्त करता है तब यह व्यावसायिक निर्देशन कहलाता है।

व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ

व्यावसायिक निर्देशन किसी भी छात्र के भावी जीवन से सम्बन्धित है। वस्तुतः आधुनिक परिप्रेक्ष्य में किसी भी छात्र के शिक्षा ग्रहण करने का उद्देश्य अन्ततः जीविकोपार्जन की तैयारी करना होता है। वर्तमान में तो शिक्षा की इतनी शाखायें, व्यवसाय के इतने क्षेत्र तथा अनेक प्रकार के विज्ञापन शैक्षिक क्षेत्र में हैं कि छात्र दिग्भ्रमित हो जाता है। वह निश्चय ही नहीं कर पाता कि किसका चयन करे और किसका नहीं।

जब से मानव को संसाधन मानने का प्रत्यय आरम्भ हुआ है, तब से प्रायः व्यावसायिक निर्देशन का अर्थ यह लगाया जाता है कि इसके माध्यम से व्यक्ति उपयुक्त व्यवसाय का चयन कर सकता है; जबकि व्यावसायिक निर्देशन स्वयं में इससे अधिक व्यापक अर्थ को संजोये हुए है।

वस्तुतः व्यावसायिक निर्देशन प्रारम्भ में निर्देशन से ही सम्बन्धित था। 1932 ई0 में संयुक्त राज्य अमेरिका में व्हाइट हाउस में बाल स्वास्थ्य एवं सुरक्षा विषय पर आयोजित विचार गोष्ठी में व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित किया गया था – "व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को व्यवसाय के चुनाव, उसके लिये तैयार होने, उसमें लगने एवं उन्नत करने में सहायता करने वाली प्रक्रिया है"

व्यावसायिक निर्देशन की परिभाषा Definition of Vocational Guidance

व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित करने के लिए हमें कतिपय विद्वानों को उद्धृत करना होगा। किन्तु उससे भी पहले यहां पर हम National Vocational Guidance Association U.S.A. द्वारा 1987 में दी गयी परिभाषा को उद्धृत करेंगे।

"Vocational guidance is the process of assisting the individual to choose an occupation, prepare for it, enter upon and progress in it."

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि "व्यावसायिक निर्देशन किसी व्यक्ति विशेष को दी जाने वाली वह सहायता है जिसके माध्यम से वह व्यववसाय के चयन एवं विकास से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करता है एवं अपनी व्यक्तिगत विशेषताओं को बनाये रखते हुए व्यवसाय से सम्बन्धित अवसरों को प्राप्त करने का प्रयास करता है"

"व्यावसायिक निर्देशन व्यक्तियों के गुणों एवं व्यवसाय के अवसरों के साथ उनके सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए व्यक्ति को व्यवसाय के वरण एवं उसकी प्रगति में आने वाली समस्याओं के सुलझाने में प्रदान की जाने वाली सहायता को कहते हैं"

डोनाल्ड सुपर "किसी व्यक्ति को अपने एवं व्यवसाय जगत के बीच अपनी भूमिका का संपर्याप्त चित्र बनाने एवं उसे स्वीकारने, वास्तविक स्थिति के बीच इस अवधारणा की जांच करने एवं उसे स्वयं के संतोष एवं समाज के लाभ हेतु वास्तविकता में बदलने की सहायता प्रदान करने को व्यावसायिक निर्देशन कहते हैं"

मेसर्स "शैक्षिक निर्देशन किसी व्यक्ति को व्यवसाय में समायोजन करने, मानव शक्ति का प्रभावी उपयोग करने में सहायता करने वाली तथा समाज के आर्थिक विकास को सुगम बनाने वाली एक प्रक्रिया है"

क्रो एण्ड क्रो "व्यावसायिक निर्देशन की व्याख्या सामान्यतः शिक्षार्थी को व्यवसाय का चयन, तैयारी, एवं विकास करने वाली प्रक्रिया के रूप में की जाती है"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित करते हुए हम कह सकते हैं कि "व्यावसायिक निर्देशन व्यक्ति को अपनी रुचि, योग्यता, आवश्यकता एवं सामर्थ्य के अनुसार व्यवसाय का चयन करने में सहायता करने से आरम्भ होता है तथा व्यवसाय से सम्बन्धित समस्त समस्याओं के समाधान, व्यवसाय, व्यवसायगत परिवर्तन एवं व्यवसाय से सम्बन्धित प्रत्येक कार्य में सहायता पर्यन्त चलता रहता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि निर्देशन का वह प्रकार जो किसी भी रूप में व्यवसाय से सम्बन्धित है, व्यावसायिक निर्देशन कहलाता है"

2.5.1 व्यावसायिक निर्देशन का महत्त्व

व्यावसायिक निर्देशन, जैसा कि परिभाषा से स्पष्ट है, व्यवसाय के चयन से आरम्भ होता हुआ व्यवसाय के प्रत्येक चरण एवं घटनाक्रम में आवश्यक है। आज के भौतिकतावादी एवं तकनीकी युग में व्यवसाय ने ऐसे-ऐसे क्षेत्रों में अपने पाँव पसार लिये हैं जिनके बारे में कुछ समय पूर्व तक कल्पना करना भी असम्भव था। आज व्यवसाय का क्षेत्र इतना व्यापक हो गया है कि उसने धर्म, आध्यात्म और व्यक्तियों के नितान्त व्यक्तिगत जीवन को भी नहीं छोड़ा। पश्चिमी देशों सहित भारत ने भी मानव को संसाधन बनाकर आग में घी डालने का कार्य किया है। ज्यो-ज्यों व्यावसायिकता अपने पांव पसार रही है त्यो-त्यों व्यवसायों से सम्बन्धित जटिलतायें भी बढ़ती जा रही हैं। एक ओर व्यवसायों की संख्या बढ़ने के कारण अवसरों में प्रचुरता आयी है, दूसरी ओर तकनीकी के अत्यधिक विकास ने प्रत्येक व्यवसाय में जोखिम की मात्रा भी अत्यधिक बढ़ा दी है। ऐसी विषम परिस्थितियों में निर्देशन के अभाव में व्यक्ति गलत व्यवसाय का चयन कर सकता है तथा उसमें असफल होने के कारण अवसाद का शिकार हो सकता है। ऐसी परिस्थितियाँ तथाकथित मानव रूपी संसाधनों के विकास में बाधक ही बनेंगी। अतः आज व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व पहले की अपेक्षा अत्यधिक बढ़ गया है। व्यावसायिक निर्देशन के महत्त्व की सीमित समय में विषद् चर्चा करना असम्भव है। अतः यहां हम व्यावसायिक निर्देशन के महत्त्व से सम्बन्धित कुछ महत्त्व पूर्ण बिन्दुओं पर संक्षेप में चर्चा करेंगे-

1. **व्यक्तिगत भिन्नताओं के अनुसार व्यवसाय के चयन में सहायक** -भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न भिन्न प्रकार के व्यक्तिगत गुण पाये जाते हैं, जैसे व्यक्तियों में सहनशीलता, धैर्य, वाक्कुशलता, बाहरी आकर्षक व्यक्तित्व आदि। यदि व्यक्तिं को उसके व्यक्तिगत गुणों के अनुरूप व्यवसाय चयन में उपयुक्त निर्देशन दिया जाये तो वह अन्य व्यवसायों की अपेक्षाकृत अच्छा प्रदर्शन करेगा। उदाहरण के लिये यदि किसी व्यक्ति में समय प्रबन्धन की क्षमता अच्छी है तो वह किसी भी कम्पनी के लिये अच्छा प्रबन्धक साबित हो सकता है। प्रबन्धक के अन्य गुणों का विकास वह व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा कर लेगा।
2. **व्यवसायों की अनेकरूपता के कारण आवश्यक** -तकनीक के विकास के कारण आज व्यवसायों की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही है। आज विशेषीकरण का युग है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्यवसायगत बारीकियों के कारण विशेषज्ञता अनिवार्य हो गयी है। अतः बिना उपयुक्त व्यावसायिक निर्देशन के अपनी अपेक्षाओं और सामर्थ्य के अनुकूल व्यवसाय का चयन करना असम्भव कार्य है। साथ ही व्यवसाय के चयन के उपरान्त किसी भी व्यवसाय में सफलता के लिये भी व्यावसायिक निर्देशन अत्यावश्यक है।
3. **व्यवसाय एवं व्यक्ति की प्रकृति में समानता की खोज** -प्रत्येक व्यवसाय प्रत्येक व्यक्ति के लिये नहीं बना। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि कोई व्यक्ति किसी व्यवसाय विशेष में ही सफल हो सकता है क्योंकि जब तक व्यवसाय एवं व्यक्ति की प्रकृति समान

नहीं होगी, तब तक व्यक्ति को सम्बन्धित व्यवसाय में सफलता नहीं मिलेगी। उदाहरण के लिये शिक्षण का व्यवसाय करने वाले व्यक्ति में वक्तृत्व कला (बोलने की कला) एवं अध्ययनशीलता का गुण होना अनिवार्य है। इसी प्रकार तकनीकी रुचि रखने वाले विद्यार्थी को इंजीनियरिंग का व्यवसाय अपनाना चाहिये। समान प्रकृति के व्यक्ति एवं व्यवसाय को खोजने का काम व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा ही सम्भव है।

4. **व्यक्ति की रुचि एवं क्षमता के अनुरूप व्यवसाय का चयन** -जैसा कि हम ऊपर भी कह चुके हैं, प्रत्येक व्यक्ति किसी भी व्यवसाय में सफल हो जाये यह आवश्यक नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रुचि एवं क्षमता के अनुरूप व्यवसाय का चयन करना अनिवार्य होता है। उदाहरण के लिये शिक्षण कार्य (व्यवसाय के लिये) करने वाले व्यक्ति की प्रकृति बहिर्मुखी होनी चाहिये। किन्तु केवल बहिर्मुखी प्रकृति का स्वामी शिक्षण व्यवसाय में सफलता प्राप्त कर ले यह अनिवार्य नहीं है। अपितु उस व्यक्ति में शिक्षक बनने की क्षमता भी होनी चाहिये। इतना ही नहीं शिक्षण व्यवसाय के प्रति रुचि का अभाव भी व्यक्ति को शिक्षण व्यवसाय मे सफल होने से वंचित कर देगा। अतः व्यावसायिक निर्देशन के माध्यम से हमें व्यक्ति को उसकी क्षमता एवं रुचि के अनुरूप व्यवसाय चयन करने का अवसर मिलता है।
5. **आत्म संतुष्टि -** युवा वर्ग प्रायः आकर्षक वेतन को आधार बनाकर ही व्यवसाय का चयन कर लेते हैं। निश्चित रूप से वे भरपूर वेतन भी प्राप्त करते हैं। किन्तु अपने व्यवसाय से असंतुष्ट होने के कारण वे कभी भी स्वयं को सुखी अनुभव नहीं करते और अन्ततः अवसाद के शिकार हो जाते हैं। किसी भी व्यवसाय में आर्थिक सम्पन्नता, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं संसाधनों की प्रचुरता के साथ-साथ आत्मसंतुष्टि का होना भी अनिवार्य है। यही आत्मसंतुष्टि का भाव अवसाद से हमारी रक्षा करता है। हमे किस व्यवसाय में आत्मसंतुष्टि मिलेगी यह केवल व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा ही सम्भव है।
6. **संसाधनों का अधिकतम उपयोग** -किसी भी व्यवसाय में सफलता का महत्त्व पूर्ण सूत्र है सीमित संसाधनों का अधिकतम उपयोग करना। किसी भी व्यवसाय में संसाधनों पर किया गया व्यय बाद में आय का स्रोत बनता है। अतः व्यवसाय विशेष के लिये एकत्र किये गये संसाधन जितने अधिक प्रयुक्त होंगे, उतना ही अधिक लाभ अमुक व्यवसाय से होगा। सीमित संसाधनों के अधिकतम उपयोग की तकनीक व्यावसायिक निर्देशन के माध्यम से प्राप्त की जा सकती है। समुचित व्यावसायिक निर्देशन प्राप्त व्यक्ति व्यवसाय विशेष के प्रमुख संसाधनों जैसे समय, श्रम, पूंजी, भूमि आदि का अधिकतम उपयोग करना सीख जाता है। इस प्रकार वह अपने व्यवसाय में सफलता प्राप्त करता है।
7. **तकनीकी उपयोग-** वर्तमान युग जटिलता एवं प्रतिस्पर्धा का युग है। इस प्रतिस्पर्धात्मक युग में जटिलताओं का एक महत्त्व पूर्ण कारण तकनीकी विकास भी है। अधिकांश व्यवसाय किसी न किसी तकनीकी से सम्बन्धित होते हैं तथा तकनीकी ज्ञान के अभाव में

पिछड़ने का भय सदैव बना रहता है। व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा हम प्रशिक्षणार्थी को तकनीकी ज्ञान उपलब्ध कराते हैं जिससे वह अपने व्यवसाय से सम्बन्धित तकनीकी का अधिकतम एवं समुचित उपयोग कर सके। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन के माध्यम से तकनीकी का उपयोग एवं तकनीकी ज्ञान के माध्यम से व्यवसाय विशेष में सफलता का मार्ग खुलता है।

8. **यन्त्रीकरण के कारण आवश्यक** -अनेक विद्वानों की मान्यता है कि वर्तमान युग को कलयुग कहने का कारण 'कल' (मशीन अथवा यन्त्र) का अधिकतम उपयोग है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह युग मशीनों का युग है। मानव समाज निरन्तर यन्त्रों पर अधिक से अधिक आश्रित होता जा रहा है। हमारी लगभग प्रत्येक क्रिया यन्त्रों के बिना अपेक्षाकृत कठिन प्रतीत होती है। किसी भी दूसरे क्षेत्र की ही भांति व्यावसायिक क्षेत्र में अत्यधिक यन्त्रीकरण हुआ है। विविध यन्त्रों का समुचित उपयोग जाने बिना कोई भी व्यक्ति अपने व्यवसाय में कैसे सफल हो सकता है? व्यावसायिक निर्देशन हमें यन्त्रों का सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कराता है। व्यावसायिक निर्देशन के माध्यम से हम यन्त्रों का प्रयोग करके सफलता की दिशा में तेजी से आगे बढ़ जाते हैं।
9. **परिस्थिति परिवर्तन में सहायक** -एक कहावत है कि मनुष्य परिस्थितियों का दास है। किन्तु व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा इस कहावत को उल्टा किया जा सकता है। व्यावसायिक निर्देशन हमारे अन्दर उस क्षमता का विकास कर देता है कि विपरीत परिस्थितियों कों भी हम अपने अनुकूल बना सकते हैं। एक उदाहरण के द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है –

   एक बार कागज बनाने वाली एक बड़ी कम्पनी में श्रमिकों की गलती के कारण कागज बनाने की सारी प्रक्रिया का पालन न हो सका। भूलवश श्रमिक बने हुए कागज को बिना चिकना किये ही पैक कर गये। विपणन (बिक्री) के लिए पहुंचने पर इस भूल का पता लगा ओर कम्पनी के सामने करोड़ों रुपये के घाटे की समस्या खड़ी हो गयी। किन्तु कम्पनी के प्रबन्धक ने विशेषज्ञों से विचार किया और इस समय ब्लॉटिंग पेपर (स्याही सोख्ता) अस्तित्व में आया। इस प्रकार व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा हम हानि को लाभ में बदल सकते हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल परिस्थितियों में बदला जा सकता है।

2.5.2 व्यावसायिक निर्देशन के उद्देश्य

लेखक के मतानुसार व्यावसायिक निर्देशन के निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किये जा सकते हैं-

1. **विद्यार्थी को विभिन्न व्यवसायों से परिचित कराना**- व्यावसायिक निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य विद्यार्थी को विभिन्न व्यवसायों से परिचित कराना है। व्यावसायिक निर्देशन विद्यार्थियों को अनेक प्रकार के व्यवसायों से परिचित कराता है जिससे वे अपनी व्यक्तिगत भिन्नता को ध्यान में रखकर व्यवसायों का चुनाव कर सके।

2. **विद्यार्थी को विभिन्न व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों की जानकारी देना** -निर्देशन के द्वारा विद्यार्थी विभिन्न प्रकार के संस्थानों व प्रशिक्षण केन्द्रों से परिचित होता है जिससे उसे अच्छे प्रशिक्षण केन्द्रों के बारे में जानकारी मिलती है तथा वह उनके गुण-दोषों से परिचित हो पाता है और उपयुक्त प्रशिक्षण संस्थान का चुनाव कर पाता है। किसी भी विद्यार्थी का भविष्य उसके व्यावसायिक प्रशिक्षण पर निर्भर है। यदि वह किसी अच्छे संस्थान से जुड़ता है तो उसकी उपलब्धि एवं प्रदर्शन पर इसका प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ता है और वह उज्ज्वल भविष्य की ओर अग्रसर होता है। अतः व्यावसायिक निर्देशन छात्रों के उज्ज्वल भविष्य के लिए अत्यावश्यक है।
3. **विद्यार्थी में व्यवसाय के अनुकूल वैयक्तिक गुणों का विकास करना** -प्रत्येक प्रकार के व्यवसाय के लिए व्यक्ति में कुछ निश्चित वैयक्तिक गुणों का होना आवश्यक है। जैसे एक कुशल अध्यापक को एक कुशल वक्ता होना जरूरी है। इसी प्रकार एक प्रबन्धक में समय समायोजन की क्षमता होनी चाहिये। व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा व्यक्ति में इन्हीं वैयक्तिक गुणों का विकास किया जाता है।
4. **व्यवसाय चयन के बाद विद्यार्थी में व्यवसाय के साथ अनुकूलन का विकास करना** -व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा व्यवसाय का चयन करने के उपरान्त किसी भी व्यक्ति की सबसे बड़ी अपेक्षा यह होती है कि उसमें वे सभी गुण हों जो व्यवसाय के लिये आवश्यक हैं। यद्यपि किसी भी विद्यार्थी को व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा उसी व्यवसाय का चयन करने की सलाह दी जाती है जिससे सम्बन्धित योग्यतायें या गुण उसमें पहले से ही मौजूद होते हैं। लेकिन यह भी आवश्यक नहीं है कि व्यवसाय से सम्बन्धित प्रत्येक गुण उसमें हो। कुछ गुण उसमें पहले से हो सकते हैं जबकि कुछ का विकास व्यवसायिक निर्देशन के द्वारा करके उसमें व्यवसाय के प्रति अनुकूलता विकसित की जाती है। जैसे - यदि कोई अध्यापक कुशल वक्ता तो है लेकिन वह समय का पाबन्द नहीं है और वह प्रक्रम (Period) में समय से नहीं पहुंच पाता तब उसके इस योग्यता और ज्ञान का लाभ तो विद्यार्थियों को नहीं मिल पाता जिसके आधार पर उसका चयन किया गया। तब व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा उसमें व्यवसाय के अनुरूप गुणों का विकास किया जाता है।
5. **व्यवसाय के प्रति ईमानदारी, समर्पण एवं रुचि का विकास करना** -व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा व्यक्ति में न केवल व्यावसायिक गुणों को विकसित किया जाता है बल्कि व्यक्ति में व्यवसाय के प्रति ईमानदारी, समर्पण एवं रुचि का भाव भी विकसित किया जाता है क्योंकि इन तीनों के बिना कोई भी व्यक्ति उपने व्यावसायिक क्षेत्र में उच्चतम सीमा पर नहीं पहुंच सकता। जैसे यदि किसी प्रबन्धक को प्रबन्धन के सभी अंगों - नियोजन, संगठन, प्रबन्धन एवं नियन्त्रण का तो पूर्णरूपेण ज्ञान है लेकिन जिस कम्पनी में वह कार्य कर रहा है उसकी उन्नति में उसे कोई रुचि नहीं है, उसके प्रति उसमें समर्पण का भाव नहीं है, तो वह अपने इन गुणों का उपयोग उसकी उन्नति में नहीं करेगा और कम्पनी उसके इस कौशल से

वंचित रह जायेगी। अतः व्यावसायिक निर्देशन विद्यार्थी में इन सभी भावनाओं का विकास करता है जिससे प्रत्येक व्यवसाय में प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं का प्रयोग करके उसे उच्च से उच्चतर क्रम पर ले जाये।

6. **आत्मसंतोष प्राप्त करना** -व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा व्यक्ति में सभी प्रकार के गुणों का विकास होता है। उसमें अनेक प्रकार के व्यावसायिक गुणों का विकास हो जाता है। उसमें सभी प्रकार की व्यावसायिक रुचियों का विकास हो जाता है जिससे वह अपनी सम्पूर्ण क्षमता का प्रयोग करता है और जब वह ऐसा करता है तो उसके अनुकूल परिणाम उसे प्राप्त होते हैं जिससे उसे आत्मसंतोष की प्राप्ति होती है।

पिछले पृष्ठों में हमने निर्देशन के मुख्य रूप से 9 प्रकारों के बारे में जाना जिनमें से हमने अपनी आवश्यकताओं के कारण शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन पर विस्तृत चर्चा की। (यद्यपि पैट्रसन ने निर्देशन के 5 प्रकार बताते हुए वैयक्तिक निर्देशन को भी एक प्रकार माना है) लेखक के मतानुसार निर्देशन के पूर्वोक्त सभी प्रकारों को व्यक्तिगत एवं सामूहिक रूप से दिया जा सकता है। आगे की पंक्तियों में हम शैक्षिक निर्देशन के व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रकारों का अध्ययन करेंगे।

2.6 व्यक्तिगत निर्देशन : अर्थ

यद्यपि पैट्रसन ने निर्देशन के प्रकारों का वर्गीकरण करते हुए व्यक्तिगत निर्देशन को निर्देशन के मुख्य 5 प्रकारों में सम्मिलित किया है (पृ0सं0 4) पैट्रसन ने व्यक्तिगत निर्देशन को अत्यधिक महत्त्व देते हुए सामाजिक निर्देशन, मनोवेगों से सम्बन्धित निर्देशन तथा अवकाश के समय का सदुपयोग से सम्बन्धित निर्देशन को व्यक्तिगत निर्देशन में सम्मिलित किया है किन्तु लेखक की मान्यता है कि उपरोक्त तीनों कार्यों के अतिरिक्त मनुष्य की अन्य गतिविधियों के लिए अथवा पूर्वोक्त सभी 9 प्रकार के निर्देशन व्यक्तिगत रूप से दिये जा सकते हैं इस प्रकार हम यह कह सकते हैं कि व्यक्तिगत निर्देशन निर्देशन का मुख्य प्रकार न होकर निर्देशन का गौण प्रकार है तथा शैक्षिक, व्यावसायिक आदि निर्देशन के सभी प्रकारों में यह सम्मिलित है। यहाँ पर हम व्यक्तिगत रूप से दिये जाने वाले शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन तथा पैट्रसन के अनुसार व्यक्तिगत निर्देशन के अन्तर्गत आने वाले सामाजिक, मनोवेगात्मक एवं अवकाश सम्बन्धी निर्देशन पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

व्यक्तिगत निर्देशन का अर्थ

व्यक्तिगत निर्देशन अथवा वैयक्तिक निर्देशन को हम दो प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं प्रथमतः किसी भी प्रकार का निर्देशन जब किसी व्यक्ति विशेष को अकेले में प्रदान किया जाता है तब उस निर्देशन को हम व्यक्तिगत निर्देशन कहते हैं।

पैट्रसन के विचारानुसार व्यक्ति की व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए जो निर्देशन प्रदान करते है उसे व्यक्तिगत या वैयक्तिक निर्देशन कहते हैं चाहे वह सामूहिक रूप से क्यों नहीं दिया जा रहा है।

2.6.1 व्यक्तिगत निर्देशन के प्रकार

उपरोक्त परिभाषाओं को आधार बनाकर हम व्यक्तिगत निर्देशन के दो प्रकार निर्धारित कर सकते हैं:-

1. व्यक्तिगत रूप से प्रदान किया जाने वाला निर्देशन।
2. व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए प्रदान किया जाने वाला निर्देशन।

यहाँ हम पुनः स्पष्ट कर दें कि व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिये दिया जाने वाला निर्देशन सामूहिक रूप से भी प्रदान किया जा सकता है।

2.6.2 व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व

हमें निम्नांकित कारणों से व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है-

1. **व्यक्ति विशेष की आवश्यकता को समझने के लिए** -व्यक्तिगत निर्देशन व्यक्ति विशेष की आवश्यकता को समझने के लिए अति महत्त्व पूर्ण है। व्यक्ति विशेष को किस प्रकार की परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा है, तथा उसे इन परिस्थितिओं में किस प्रकार के निर्देशन की आवश्यकता है यह दोनों बातें व्यक्तिगत निर्देशन के माध्यम से ही समझी जा सकती हैं।
2. **व्यक्तिग विशेष की समस्याओं के निजी रूप से समाधान के लिए** - व्यक्ति की अनेक समस्याऐं इस प्रकार की होती हैं जिनका समाधान समूह के साथ नहीं हो सकता ऐसी स्थिति में भी व्यक्ति को वैयक्तिक निर्देशन की आवश्यकता होती है जिससे वह समस्याओं का निजी समाधान प्राप्त कर सके।
3. **व्यक्तिगत गोपनीयता के लिए** - हम जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति का निजी जीवन होता है तथा उसकी अनेक समस्याऐं भी गोपनीय होती हैं अतः उसकी समस्याओं एवं उनके समाधान को गोपनीय बनाये रखने के लिए व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता होती है।

व्यक्तिगत निर्देशन का महत्त्व

व्यक्तिगत निर्देशन के महत्त्व को हम निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट करेंगे-

1. **समस्या का तुरन्त समाधान** -समस्या का तुरन्त समाधान करने के लिए व्यक्तिगत निर्देशन अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है इसमें व्यक्ति अपने निर्देशक से सीधे सम्पर्क करके अपनी समस्या का त्वरित समाधान प्राप्त कर सकता है।
2. **समस्या का पूर्ण समाधान** - व्यक्ति की समस्या का पूर्ण समाधान व्यक्तिगत निर्देशन के द्वारा ही सम्भव है। इसमें व्यक्ति एवं निर्देशक के बीच में कोई बाधा नहीं होती

और वह अपनी निजी बातें भी निर्देशक के समक्ष निःसंकोच रख देता है तथा अपनी समस्या का समाधान हो जाने तक निरन्तर निर्देशन प्राप्त कर सकता है।

3. **गोपनीयता** - व्यक्तिगत निर्देशन ही गोपनीयता बनाये रखने की एकमात्र गारन्टी दे सकता है इसमें निर्देशक और उपबोध्य के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति न होने के कारण उपबोध्य अपनी अत्यन्त निजी बातों को भी निर्देशक के समक्ष निःसंकोच रख देता है और वह अपनी समस्या का सही समाधान पाने के साथ-साथ उसे गोपनीय बनाये रखने में सफल होता है।

2.6.3 व्यक्तिगत निर्देशन के उद्देश्य

निम्नांकित उद्श्यों को ध्यान में रखकर व्यक्तिगत निर्देशन दिया जाना चाहिए-

i. **व्यक्ति के पारिवारिक समायोजन के लिए** - समाज व्यक्तियों के समूह से मिलकर बना है एक व्यक्ति समाज की ही तरह परिवार की भी एक इकाई होती है परिवार में समायोजन किये बिना वह समाज में समायोजन नहीं कर सकता अतः व्यक्तिगत निर्देशन का पहला महत्त्व पूर्ण उद्देश्य पारिवारिक समायोजन है।

ii. **व्यक्ति के सामाजिक समायोजन के लिए** - समाज में कुसमायोजित व्यक्ति सामाजिक विध्वंस के लिए उत्तरदायी होता है अतः व्यक्तिगत निर्देशन का दूसरा महत्त्व पूर्ण उद्देश्य व्यक्ति का सामाजिक समायोजन करना है।

iii. **व्यक्ति की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति**- प्रत्येक व्यक्ति की शैक्षिक आवश्यकतायें अन्य व्यक्तियों से भिन्न होती है अतः व्यक्तिगत निर्देशन के द्वारा उसकी शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ती की जाती है।

2.7 सामूहिक निर्देशन: अर्थ एवं परिभाषा

यद्यपि इलाहाबाद स्थित Bereau of Psychology ने निर्देशन के प्रकार बताते हुए समूह निर्देशन को इसके मुख्य प्रकारों में गिना है किन्तु लेखक के मतानुसार व्यक्तिगत निर्देशन की तरह ही सामूहिक निर्देशन भी निर्देशन का एक गौण प्रकार है तथा यह निर्देशन के सभी मुख्य प्रकारों में सम्मिलित है।

सामूहिक निर्देशन का अर्थ

निर्देशन की पूर्वोक्त परिभाषा के आधार पर हम कह सकते हैं कि निर्देशन चाहे वह किसी भी प्रकार क्यों न हो यदि समूह में दिया जा रहा है तो वह सामूहिक निर्देशन की श्रेणी में आता है।

सामूहिक निर्देशन की परिभाषा

इस पुस्तक के लेखक के मतानुसार वे सभी समस्याऐं जो सामूहिक रूप से समाधान के योग्य होती है उनके लिए दिया जाने वाला निर्देशन तथा व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए समूह में दिया जाने वाला निर्देशन सामूहिक निर्देशन कहलाता है।

2.7.1 सामूहिक निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व

निर्देशन की आवश्यकता एवं महत्त्व को हम निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट करेंगे -

i. **समय, श्रम एवं धन की बचत** - भारत जैसे देश में जहाँ संसाधनों का नितान्त अभाव होते हुए भी हमारी महत्वाकांक्षायें विश्व के सफल राष्ट्रों से होड़ लेने की है, सामूहिक निर्देशन अत्यन्त, महत्त्व पूर्ण हो जाता है। व्यक्तिगत निर्देशन में जहाँ हम एक-एक व्यक्ति को अलग-अलग निर्देशन प्रदान करते हैं वही सामूहिक निर्देशन में अनेक व्यक्तियों को एक साथ बैठाकर निर्देशन प्रदान करने से समय, श्रम एवं शक्ति की पर्याप्त बचत कर लेते हैं।

ii. **विद्यार्थी के सामान्य व्यवहार को सुधारने में सहायक** -निर्देशन प्राप्त करते समय व्यक्ति प्रायः अकेला होने के कारण असामान्य अनुभव करता है तथा अनेक सूचनाओं को देने में सकुचाता है। सामूहिक निर्देशन में अपने समूह के साथ होने के कारण उसका व्यवहार अपेक्षाकृत सामान्य रहता है तथा किसी भी प्रकार की व्यक्तिगत सूचनायें दिये बिना निर्देशन प्राप्त कर लेता है।

iii. **नये व्यक्ति (उपबोध्य) को निर्देशन प्रदान करने में सरलता** -निर्देशन की प्रक्रिया एक जटिल प्रक्रिया है व्यक्तिगत निर्देशन में व्यक्ति इसे बहुत देर से समझता है। जबकि सामूहिक निर्देशन में नया व्यक्ति भी अपने पुराने साथियों की सहायता से सरलतापूर्वक समझ लेता है।

iv. **सामाजीकरण में सहायक** -सामूहिक रूप से निर्देशन प्राप्त करने की प्रक्रिया में बालक को बार-बार अपने साथियों के साथ अन्तः क्रिया करनी पड़ती है। सहज और सामान्य रूप से चलने वाली यह प्रक्रिया बालक के सामाजीकरण में सहायता करती है।

v. **दूसरे के अनुभवों से लाभ उठाने में सहायक** -सामूहिक निर्देशन की प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक बातें अपने साथ निर्देशन प्राप्त कर रहे लोगों के साथ बाँटता है परस्पर अनुभव बाँटने की इस प्रक्रिया में व्यक्ति जिन अनुभवों को अपने योग्य समझता है उन अनुभवों का प्रयोग करता है तथा निर्देशन प्रक्रिया के द्वारा उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन भी कर लेता है अतः सामूहिक निर्देशन की प्रक्रिया दूसरों के अनुभवों से लाभ लेने में सहायता करती है।

2.7.2 समूह निर्देशन के उद्देश्य

सामूहिक निर्देशन के विभिन्न उद्देश्य निम्नवत् निर्धारित किए जा सकते हैं-

i. **सामान्य समस्याओं का समाधान** - बालक की समस्याऐं दो प्रकार की हो सकती हैं- समान्य एवं विशिष्ट। उसकी सामान्य समस्याओं का समाधान करना सामूहिक निर्देशन का प्रमुख उद्देश्य है।

ii. **सामाजिक तथा राज्य सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना-** व्यक्ति की सामाजिक तथा राज्य सम्बन्धी अनेक समस्याऐं ऐसी होती हैं जो प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक सी होती हैं। इन समस्याओं के समाधान के लिए यदि व्यक्तिगत रूप से निर्देशन दिया जाये तो इस प्रक्रिया में बहुत समय लग जाता हैं। अतः बालक की राज्य तथा समाज सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करना सामूहिक निर्देशन का उद्देश्य है।

iii. **समूह में रहते हुए व्यक्ति की गतिविधियों का निरीक्षण करना** -प्रत्येक व्यक्ति समूह में रहते हुए जो व्यवहार करता है वह बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व तथा उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं का परिचय देता है। उसके व्यवहार का निरीक्षण करके यह भी ज्ञात किया जा सकता है कि उसमें सामाजिकता के लक्षण विद्यमान हैं या नहीं तथा सामाजिकता की भावना विकसित करने के लिए हमें उसे किस प्रकार का निर्देशन देना होगा इन सबके लिए समूह में रहते हुए व्यक्ति की गतिविधियों का निरीक्षण करना सामूहिक निर्देशन का एक प्रमुख उद्देश्य है।

iv. **व्यक्तिगत निर्देशन के लिए सुपात्र ढूंढना**-यद्यपि सामूहिक निर्देशन में व्यक्ति समूह के व्यवहार के अनुरूप व्यवहार करता है तथापि उपबोधक को उपबोध्य की व्यक्तिगत विशेषताओं का अनुमान समूह मे व्यक्ति की गतिविधियों को देखकर ही हो जाता है। तथा वह व्यक्तिगत निर्देशन के लिए सुपात्र चुन लेता है।

v. **व्यक्तिगत निर्देशन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना-** सामूहिक निर्देशन से न केवल एक बड़े समूह को निर्देशन प्राप्त होता है बल्कि यह व्यक्तिगत निर्देशन के लिए पृष्ठभूमि भी तैयार करता है। जब व्यक्ति सामूहिक रूप से निर्देशन प्राप्त करता है तो उसकी न केवल निर्देशन सम्बन्धी भ्रान्तियां दूर होती हैं बल्कि उसे यह भी ज्ञात होता है कि उसकी किन समस्याओं का समाधान व्यक्तिगत निर्देशन के माध्यम से हो सकता है। साथ ही साथ निर्देशक भी इस बात से भली-भांति परिचित हो जाता है कि सामूहिक निर्देशन की किन कठिनाइयों को व्यक्तिगत निर्देशन के माध्यम से सुलझाया जा सकता है।

2.8 सारांश

जटिल एवं तकनीकी युग ने प्राणी जगत में निर्देशन की आवश्यकता को अत्याधिक बढ़ा दिया है। निर्देशन स्वंयं के अनुभवों का प्रयोग दूसरों की सहायता के लिये करना है। आदिकाल से चले आ रहे इस निर्देशन को विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी तरह से परिभाषित भी किया है। अतः हम कह सकते हैं कि जब अभ्यर्थी स्वयं के अनुभवों के द्वारा अपने विद्यार्थी की सहायता उसके शैक्षिक समस्याओं का समाधान करने में करता है तब यह प्रक्रिया शैक्षिक निर्देशन कहलाती है। शैक्षिक निर्देशन की आवश्यकता व्यक्ति को पग-पग पर पड़ती है चाहे वह विषयों का चयन हो, विद्यालय में अनुशासन की स्थापना हो अथवा विद्यार्थी के सीखने की गति को तेज करना हो। इतना ही नहीं

विद्यार्थी अपने लिये अध्ययन सामग्री, पाठ्य पुस्तक एवं अध्ययन विधि का चुनाव भी शैक्षिक निर्देशन के द्वारा करते हैं। शैक्षिक निर्देशन से विद्यार्थी आत्मज्ञान प्राप्त करता है तथा शैक्षिक निर्देशन विद्यार्थी की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान भी करता है। इस प्रकार शैक्षिक निर्देशन के द्वारा प्रतिभाओं का समुचित उपयोग होता है।

शैक्षिक निर्देशन की ही भांति व्यावसायिक निर्देशन भी एक प्रकार का निर्देशन है जो हमें विभिन्न व्यवसायों से परिचित कराता है। व्यवसायों के बारे में जानकारी देना, व्यवसाय का चयन कराना तथा व्यवसाय की प्रगति में आने वाली बाधाओं को दूर करना जिस मार्गदर्शन के द्वारा संभव होता है, मार्गदर्शन का वह प्रकार व्यावसायिक निर्देशन के नाम से जाना जाता है। विभिन्न विद्वानों ने व्यावसायिक निर्देशन की भिन्न-भिन्न परिभाषाएं दी हैं।व्यावसायिक निर्देशन व्यवसाय से सम्बन्धित समस्त प्रकार की समस्याओं का समाधान करने में सहायता करता है। व्यावसायिक निर्देशन हमें अपने स्वभाव के अनुसार व्यवसाय का चयन करने में सहायता करता है। इतना ही नहीं व्यावसायिक निर्देशन हमें अपने व्यवसाय में सन्तुष्ट रहना सिखाता है। व्यावसायिक निर्देशन के द्वारा हम उपलब्ध संसाधनों एवं तकनीकी का उपयोग कर सकते हैं। उदाहरणों ने यह सिद्ध किया है कि व्यावसायिक निर्देशन विपरीत परिस्थितियों को अनुकूल परिस्थितियों में परिवर्तित कर सकता है। व्यावसायिक निर्देशन से हम विभिन्न वयवसायों की जानकारी प्राप्त करते हैं। विद्यार्थी को व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रों के बारे में जानकारी देते हैं। व्यावसायिक निर्देशन से हम विद्यार्थी में व्यवसाय के अनुकूल वैयक्तिक गुणों एवं व्यवसाय के साथ अनुकूलता का विकास करते हैं। व्यावसायिक निर्देशन हमें व्यवसाय के प्रति ईमानदारी एवं समर्पण सिखाता है तथा व्यवसाय विशेष में रुचि लेकर आत्मसंतोष प्राप्त करना सिखाता है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि व्यावसायिक निर्देशन व्यावसायिक सफलता के मार्ग में प्रकाश स्तम्भ का कार्य करता है तथा इसके अभाव में हम अंधेरे में चलने का प्रयास करते हैं। फलतः हमारी व्यावसायिक सफलता संदिग्ध हो जाती है।

शैक्षिक एवं व्यावसायिक दोनों प्रकार का निर्देशन व्यक्तिगत भी हो सकता है और सामूहिक भी। पैट्रसन ने व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के लिए दिये जाने वाले निर्देशन को व्यक्तिगत निर्देशन की संज्ञा दी है चाहे वह सामूहिक रूप से दिया जा रहा हो। व्यक्ति विशेष की आवश्यकताओं को समझने उसकी समस्याओं का समाधान करने और गोपनीयता को बनाये रखने के लिए व्यक्तिगत निर्देशन की आवश्यकता होती है। व्यक्तिगत निर्देशन समस्या का त्वरित एवं पूर्ण समाधान करता है। यह व्यक्ति के पारिवारिक तथा सामाजिक समस्याओं के लिए तथा शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दिया जाता है।

समूह में दिया जाने वाला किसी भी प्रकार का निर्देशन सामूहिक निर्देशन कहलाता है। सामूहिक निर्देशन समय, धन एवं श्रम की बचत करता है। विद्यार्थी के सामान्य व्यवहार को सुधारता है तथा सामाजीकरण में सहायक होता है। सामूहिक निर्देशन व्यक्तिगत निर्देशन के लिए पृष्ठभूमि तैयार करता है। तथा एक दूसरे के अनुभवों से लाभ लेना सिखाता है।

2.9 संदर्भ ग्रंथ

7. Agrawal Rashmi, (Education Vocational Guidance and counseling) Shipra Publications, Delhi- 11092 (2006)
8. Suri S.P., T.S. Sodhi, (Guidance and counseling), Bawa Publication Patiala (1997)
9. Sharma R.A., (Career information in career guidance) Surya Publication Meerut (2004)
10. Sharma R.A (Guidance and counseling) Vinay Rakheia c/o R. Lall book Depot Meerut (2010)
11. सिंह रामपाल राधावल्लभ उपाध्याय, (शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
12. जायसवाल सीताराम (शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श), अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा (2009)

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. विभिन्न विद्वानों ने निर्देशन को कितने प्रकारों से वर्गीकृत किया है। आपकी दृष्टि में निर्देशन का सर्वश्रेष्ठ वर्गीकरण कौन सा है।
2. शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन को परिभाषित करते हुए दोनों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
3. व्यावसायिक निर्देशन भारत के आर्थिक विकास में किस प्रकार सहायता कर सकता है।
4. व्यक्तिगत एवं सामूहिक निर्देशन में अन्तर बताइये।

इकाई – 3 निर्देशन में शिक्षक की भूमिका एवं निर्देशन तथा पाठ्यक्रम

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 निर्देशन में शिक्षक की भूमिका
  3.3.1 शिक्षक की परिभाषा
  3.3.2 निर्देशन कार्य में शिक्षक का महत्व
  3.3.3 शिक्षक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य
  3.3.4 शिक्षक का निर्देशन सम्बन्धी कार्यक्षेत्र
3.4 पाठ्यक्रम (भूमिका)
  3.4.1 पाठ्यक्रम की परिभाषा
  3.4.2 अच्छे पाठ्यक्रम के सिद्धान्त
3.5 पाठ्यक्रम एवं निर्देशन (प्रस्तावना)
  3.5.1 निर्देशन एवं पाठ्यक्रम में समानतायें
  3.5.2 पाठ्यक्रम के माध्यम से निर्देशन
3.6 निर्देशन और कक्षा कक्ष अधिगम
  3.6.1 कक्षा कक्ष शिक्षण के सिद्धान्त
  3.6.2 शिक्षक का निर्देशक के रूप में कक्षा कक्ष अधिगम में महत्व
  3.6.3 कक्षा कक्ष अधिगम में अधिगमकर्ता के रूप् में विद्यार्थी की भूमिका
  3.6.4 कक्षा कक्ष अधिगम से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक कारक
3.7 सारांश
3.8 संदर्भ ग्रंथ
3.9 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

जैसा कि हम जानते हैं, निर्देशन प्रत्येक व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है, अतः निर्देशन का कार्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है, इस महत्वपूर्ण कार्य को सम्पादित करने के लिए निर्देशक का योग्य एवं कुशल होना आवश्यक है।

एक कुशल निर्देशक माता पिता की भांति निर्देशन प्राप्त करने वाले व्यक्ति को हाथ पकड़कर सही दिशा में ले जाता है। प्रत्येक व्यक्ति जीवन पर्यन्त किसी न किसी निर्देशक के सम्पर्क में रहता है; चाहे वह दादा-दादी, माता-पिता, पति-पत्नी अधिकारी अथवा किसी अन्य रूप में क्यों न हो। व्यक्ति का अधिकांश समय विद्यालय में व्यतीत होता है, अतः निर्देशन कार्य में एक अध्यापक का योगदान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. जान सकेंगे कि अच्छे निर्देशन कार्य में शिक्षक की क्या भूमिका होती है।
2. कुशल निर्देशक के रूप में एक अच्छे शिक्षक के गुणों से अवगत करा सकेगी।
3. शिक्षक को परिभाषित कर सकेंगे।
4. यह जान सकेंगे कि एक अध्यापक किन-किन रूपों में निर्देशक की भूमिका का निर्वहन कर सकता है।
5. पाठ्यक्रम को परिभाषित कर सकेंगे।
6. अच्छे पाठ्यक्रम के सिद्धान्तों से अवगत हो सकेंगे।
7. पाठ्यक्रम एवं निर्देशन में समानता एवं अन्तर से अवगत करा सकेगी।

3.3 निर्देशन में शिक्षक की भूमिका Role of Teacher in Guidance

निर्देशन कार्य में शिक्षक की भूमिका को समझने से पहले हमें निर्देशन और शिक्षक इन दो शब्दों को भली-भाँति समझना होगा। अब तक की चर्चा में हम निर्देशन शब्द से भली भाँति परिचित हो चुके हैं। अतः अब हम शिक्षक शब्द से परिचय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे।

3.3.1 शिक्षक की परिभाषा Definition of Teacher

शिक्षा शब्द 'शिक्ष' धातु से बना है, जिसका अर्थ है 'सीखना' अथवा 'सिखाना' अतः जो व्यक्ति सिखाने का कार्य करता है, उसे हम शिक्षक कह सकते हैं। किन्तु एक वास्तविक शिक्षक का कार्य केवल इतना ही नहीं है। अपितु उसे एक कुम्हार की भाँति अपने छात्र को गढ़ना होता है।

जान एडम्स के अनुसार "शिक्षक मनुष्य का निर्माता है"

हुमाँयु कबीर ने शिक्षक को "राष्ट्र का भाग्य निर्माता कहा है"

भारतीय संस्कृति में गुरू को ब्रह्मा, विष्णु, महेश की संज्ञा दी गयी है -

गुरुर्ब्रह्मा गुर्रुविष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः गुरुर्साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरूवेनमः।

अतः हम कह सकते हैं कि गुरू ब्रह्मा बनकर अपने शिष्य के भीतर श्रेष्ठता को जन्म देता है, विष्णु बनकर उस श्रेष्ठता का पालन पोषण करता है, तथा शिव बनकर शिष्य के दोषों का संहार करता है, अतः गुरू साक्षात् परब्रह्मा हैं।

3.3.2 निर्देशन कार्य में शिक्षक का महत्व Importance of Teacher in Guidance

शिक्षक की उपरोक्त परिभाषायें यह सिद्ध करती हैं कि एक व्यक्ति को जीवनपर्यन्त निर्देशक की आवश्यकता होती है, तथा शिक्षक कुशलतापूर्वक निर्देशक की इस भूमिका का निर्वाह करता है। निर्देशन कार्य में शिक्षक की भूमिका को हम निम्नांकित बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट करते हैं-

1. विद्यार्थी शिक्षक को अपना आदर्श मानता है।
2. अनेक विद्यार्थी शिक्षक का अन्धानुसरण करते हैं।
3. शिक्षक और विद्यार्थी का अत्यधिक सम्पर्क रहता है।
4. शिक्षक विद्यार्थी को भली भांति समझता है।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर हम कह सकते हैं, कि एक निर्देशक के रूप में शिक्षक की भूमिका उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी परिवार में माता-पिता, समाज में नेता, जहाज में कप्तान, और बाग में माली की है।

3.3.3 शिक्षक के निर्देशन सम्बन्धी कार्य Guidance Related Works of a Teacher

निर्देशक के रूप में शिक्षक अपने विद्यार्थियों को अनेक प्रकार से निर्देशन प्रदान करता है, शिक्षक के निर्देशन सम्बन्धी कार्यों को समझने के लिए हम उसके कार्यों को निम्नांकित दो भागों में विभाजित कर सकते हैं-

1. वैयक्तिक निर्देशन Personal Guidance
2. शैक्षिक निर्देशन Educational Guidance

वैयक्तिक निर्देशन Personal Guidance- यद्यपि किसी भी प्रकार का निर्देशन व्यक्ति विशेष को ही प्रदान किया जाता है, अतः प्रत्येक निर्देशन वैयक्तिक निर्देशन की श्रेणी में रखा जा सकता है तथापि अध्ययन की सुविधा के लिए हम वैयक्तिक निर्देशन के प्रकारों का विभाजन निम्नांकित रूप में कर सकते हैं-

1. **संवेगात्मक निर्देशन Emotional Guidance** -हमारा अधिकाँश जीवन संवेगों के द्वारा संचालित होता है अतः जीवन को उपयुक्त दिशा देने के लिए हमें संवेगों पर नियन्त्रण रखना आवश्यक है। किशोरावस्था में बालक का संवेगात्मक विकास तीव्रता से हो रहा होता है, एक अध्यापक के सम्पर्क में अधिकाँशतः किशोर अथवा युवा बालक आते हैं अतः निर्देशक के रूप में शिक्षक का सबसे महत्वपूर्ण कार्य बालक के संवेगों को सही दिशा देना है।
2. **स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देशन Health Related Guidance-** किशोरावस्था तूफान की अवस्था कही जाती है, इस अवस्था में बालक का ध्यान अपने स्वास्थ्य पर या तो नहीं रहता या वह स्वास्थ्य के प्रति बहुत सजग हो जाता है। इन दोनों ही स्थितियों में उसे शिक्षक के द्वारा कुशल निर्देशन की आवश्यकता होती है, यदि वह अपने स्वास्थ्य के प्रति सजग नहीं है तो उसे सचेत करने का दायित्व शिक्षक का बनता है। यदि वह अपने शरीर निर्माण के लिए गलत साधनों का प्रयोग कर रहा है तो उसे रोकना भी शिक्षक का दायित्व है।
3. **व्यवहार सम्बन्धी निर्देशन Behavioural Guidance-** छात्र जीवन में व्यक्ति प्रायः व्यवहार कुशल नहीं होता जिस कारण उसके समक्ष सामाजिक समायोजन की समस्या उत्पन्न हो जाती है। एक कुशल निर्देशक के रूप में शिक्षक अपने विद्यार्थियों को इस प्रकार का निर्देशन देता है जिससे वह अपने साथियों और समाज में भली-भाँति समायोजित हो सके।

शैक्षिक निर्देशन Educational Guidance

जैसा कि हम जानते हैं कि व्यक्ति के जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण समय उसका अध्ययन काल है, अतः व्यक्ति के लिए उचित शैक्षिक निर्देशन अनिवार्य है, अध्यापक के शैक्षिक निर्देशन सम्बन्धी कार्य को हम निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विभाजित कर सकते हैं-

1. **उपयुक्त विषय के चुनाव में सहायता करना Helpful in Selecting Appropriate Subject** -पूर्व माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती अध्ययन के विषयों का चयन करना है, प्रायः विषय चयन के सम्बन्ध में विद्यार्थी अपने साथियों का अनुसरण करते हैं और गलत विषयों का चुनाव कर बैठते हैं। अध्यापक का दायित्व बनता है कि वह विद्यार्थी की रूचि और योग्यता का ध्यान रखते हुए उसे विषय चयन में इस प्रकार सहायता प्रदान करे जिससे विद्यार्थी अपना भविष्य सुरक्षित कर सके।
2. **ज्ञान प्राप्ति में सहायता करना Helpful in Aquiring Knowledge-** अनुपयुक्त परीक्षा प्रणाली और निम्नस्तरीय पुस्तकों की भीड़ ने विद्यार्थियों के ज्ञान प्राप्ति के स्तर को कम कर दिया है। अध्यापक का दायित्व यह है कि वह अपने विद्यार्थियों को विषय सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने में सहायता करे तथा ज्ञान वृद्धि के लिए आवश्यक पुस्तकें उपलब्ध कराने में सहायता करे।

3. **श्रेष्ठ अभिव्यक्ति की विद्या सिखाना Teaching, Better Style of Manifestetion-** आपने अपने विद्यार्थी जीवन में प्रायः यह अनुभव किया होगा कि जितना हम किसी विषय विशेष में जानते हैं, मौखिक अथवा लिखित अभिव्यक्ति का अवसर प्राप्त होने पर हम स्वयं को उतना अभिव्यक्त नहीं कर पाते। इस तरह की समस्या अधिकांश विद्यार्थियों के जीवन में आती है। एक कुशल निर्देशक के रूप में अध्यापक का यह कर्त्तव्य बनता है कि वह उन्हें मौखिक एवं लिखित अभिव्यक्ति के उपाय सिखाने हेतु उचित निर्देशन प्रदान करें।
4. **कक्षा कक्ष व्यवहार सम्बन्धी निर्देशन Guidance Related to Class Room Behaviour-** विद्यालय स्तर पर विद्यार्थी प्रायः कक्षा कक्ष में किये जाने वाले व्यवहारों से अनभिज्ञ रहता है। अध्यापक के कक्षा में प्रवेश करते समय, अध्यापन कार्य करते समय अथवा कक्षा से अध्यापक के बाहर जाते समय विद्यार्थी को किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए यह निर्देशन देने का दायित्व अध्यापक का है। इतना ही नहीं अध्यापक के समक्ष अपनी जिज्ञासा अभिव्यक्त करने अथवा अपनी बात कहने का तरीका भी अध्यापक को ही सिखाना चाहिए।
5. **अध्ययन सामग्री का चयन करने के लिए निर्देशन Guidance to Select the Study-** Material विद्यालय में पढ़ाये गये पाठ को आत्मसात करने के लिए विद्यार्थी को श्रेष्ठ अध्ययन सामग्री की आवश्यकता होती है। बाजार में उपलब्ध अनेक प्रकार की अध्ययन सामग्री में से कौन सी सामग्री स्तरीय एवं उपयोगी है इस बात का ज्ञान विद्यार्थी को नहीं होता। अतः उचित अध्ययन सामग्री का चयन करने हेतु विद्यार्थी को निर्देशन प्रदान करना शिक्षक का दायित्व है।
6. **प्रयोगात्मक कार्य के लिए निर्देशन Guidance for Practical Work** - विद्यालय की प्रयोगशालाओं में उपलब्ध उपकरणों तथा रसायनों से विद्यार्थी प्रायः अनभिज्ञ रहते हैं। ऐसी स्थिति में वे प्रयोगशाला उपकरण, रसायन अथवा स्वयं को गम्भीर क्षति पहुँचा सकते हैं। अतः अध्यापक को चाहिए कि वह प्रयोगशाला में कार्य करते समय विद्यार्थियों के साथ स्वयं भी उपस्थित रहे तथा उन्हें प्रयोगात्मक कार्य के लिए उचित निर्देशन प्रदान करे।

3.3.4 अध्यापक का निर्देशन सम्बन्धी कार्यक्षेत्र Scope of a Teacher as a Guide - अध्यापक के निर्देशन सम्बन्धी कार्यों की चर्चा करने से पूर्व हमें यह जान लेना आवश्यक है कि किन परिस्थितियों में विद्यार्थी को अध्यापक के निर्देशन की आवश्यकता होती है। लेखक के मतानुसार निम्नांकित कार्य क्षेत्र ऐसे हैं जहां विद्यार्थी को अध्यापक के निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होती है-

1. शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति का क्षेत्र

2. कुसमायोजित बालकों के समायोजन का क्षेत्र
3. शैक्षिक विकास का क्षेत्र
4. सूचनाओं को समझने एवं अनुसरण करने का क्षेत्र
5. शैक्षिक उपकरणों एवं रसायनों का प्रयोग
6. पुस्तकाल।
7. पाठ्य-सहगामी गतिविधियाँ
8. विशिष्ट बालकों के लिए निर्देशन

निर्देशक के रूप में अध्यापक की भूमिका का निर्वहन निम्न रूपों में किया जा सकता है:-

i. एक व्यक्ति के रूप में
ii. कक्षा अध्यापक के रूप में
iii. विषय अध्यापक के रूप में
iv. खेल शिक्षक के रूप में
v. प्रशासक के रूप में
vi. अनुशासक (च्तवबजवत) के रूप में

इसके अतिरिक्त अध्यापक विद्यार्थी का अभिभावक और नेता भी होता है।

3.4 पाठ्यक्रम

उपरोक्त चर्चा के पश्चात हम निर्देशक के रूप में शिक्षक की भूमिक से भली भाँति परिचित हो चुके हैं। आगे की पंक्तियों में हम निर्देशन कार्य एवं पाठ्यक्रम के पारस्परिक सम्बन्धों पर चर्चा करेंगे।
एक विद्यार्थी का छात्र जीवन उसकी अन्तिम परीक्षा तक निरन्तर चलता रहता है। किसी भी विद्यालय में प्रवेश के दिन से आरम्भ करके विद्यार्थी जो भी गतिविधियाँ सम्पादित करता है चाहे वे गतिविधियाँ कक्षा में हों, कक्षा के बाहर हों, अथवा अपने अध्यापक के साथ विद्यालय के बाहर हो उसकी समस्त गतिविधियाँ निर्देशन, पाठ्यक्रम और अधिगम के अन्तर्गत आती है। अतः हमें क्रमशः उक्त तीनों ही पक्षों को स्पष्ट रूप से समझना और समझाना होगा।

3.4.1 पाठ्यक्रम की परिभाषा

‘‘लेखक के अनुसार विद्यालय में प्रवेश लेने के पश्चात परीक्षा उत्तीर्ण करने तक विद्यार्थी जो भी गतिविधियाँ अध्यापक के निर्देशानुसार सम्पन्न करता है वह सभी गतिविधियाँ पाठ्यक्रम (Curriculum) का अंग होती है।’’

पाठ्यक्रम की उपरोक्त परिभाषा को ध्यान से देखने पर हमें यह पता चलता है, कि हममें से अधिकाँश लोग जिसे पाठ्यक्रम समझते हैं वास्तव में पाठ्यक्रम उससे कहीं अधिक है।

विद्यार्थियों, अध्यापकों और अभिभावकों में से अधिकाँश लोग पाठ्यवस्तु (Syllabus) को पाठ्यक्रम का पर्याय मानते हुए अपना सारा ध्यान उसी पर केन्द्रित कर देते हैं। जबकि वस्तुस्थिति इससे बिल्कुल भिन्न है। वास्तव में पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रम का पर्याय न होकर उसका एक अंग मात्र है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि जिसे हम पाठ्यवस्तु कह रहे हैं वह पाठ्यक्रम का सैद्धान्तिक पक्ष है अथवा पाठ्यक्रम का लिखित रूप है। पाठ्यक्रम के जिस भाग को हम पुस्तकों की सहायता से समझाते हैं तथा लिखित परीक्षा के माध्यम से उसका मूल्यांकन करते हैं पाठ्यक्रम का वह भाग पाठ्यवस्तु कहलाता है। यद्यपि पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रम का अति महत्वपूर्ण अंग है तथापि पाठ्यक्रम में विद्यार्थी को अनेक अन्य गतिविधियाँ करनी पड़ती हैं जैसे कक्षा कक्ष व्यवहार, खेल की गतिविधियाँ, शैक्षिक भ्रमण आदि।

अपनी इस बात को हम एक उदाहरण से और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे। मान लीजिए कक्षा टप्प्प् के विज्ञान विषय में पाठ्यवस्तु का एक अंग 'बल' (Force) है। हम प्रायः अपने विद्यार्थियों को पाठ्यवस्तु के माध्यम से बल की परिभाषा, बल के प्रकार, और बल के विभिन्न प्रयोग बता कर संतुष्ट हो जाते है। हमारा विद्यार्थी उससे कुछ कम पढ़कर, पढ़े हुए से कुछ कम रटकर और रटे हुए से भी कुछ कम लिखकर अपने कर्तव्य की इति समझ लेता है। आश्चर्य की बात तो यह है कि उसका मूल्यांकन भी इसी आधार पर हो जाता है। यही कारण है कि हमारे विद्यार्थियों का ज्ञान का स्तर दुनिया के दूसरे विद्यार्थियों के ज्ञान के स्तर से कम रह जाता है।

उपरोक्त उदाहरण में यदि हम बच्चे को कक्षा कक्ष से लेकर खेल के मैदान तक बल के विषय में बताते रहें और उसे सैद्धान्तिक एंव प्रायोगिक ज्ञान से समृद्ध करते हुए उसके जीवन में इस ज्ञान के प्रयोग का कौशल विकसित कर सके तभी यह वास्तविक रूप से पाठ्यक्रम के रूप में बल को पढ़ाना होगा।

उदाहरण के सन्दर्भ में हम विभिन्न विद्वानों द्वारा दी गयी पाठ्यक्रम की परिभाषाओं को समझने का प्रयास करेंगे।

माध्यमिक शिक्षा आयोग (मुदालियर कमीशन) ने पाठ्यक्रम को परिभाषित करते हुए स्पष्ट कहा है कि "पाठ्यक्रम का अर्थ उन बौद्धिक विषयों से नहीं है जो विद्यालय में पढ़ाये जाते हैं; अपितु पाठ्यक्रम में वे सभी अनुभव समाहित हैं जिनको विद्यार्थी विद्यालय में प्राप्त करता है"

उपरोक्त परिभाषा पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में दी गयी हमारी परिभाषा की ही एक तरह से पुष्टि करती है।

फ्रोबेल महोदय तो पाठ्यक्रम को परिभाषित करते हुए उसमें पूरे जीवन के अनुभवों को ही समाहित कर लेना चाहते हैं। उनके अनुसार ''मानव जाति का सम्पूर्ण ज्ञान एवं उसके समस्त अनुभवों को पाठ्यक्रम के रूप में ग्रहण किया जाना चाहिए।''

पाठ्यक्रम की यह विस्तृत परिभाषा हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति नही करती अतः यहाँ पर हम कुछ ऐसे विद्वानों की परिभाषाओं का अध्ययन करेंगे जिन्होंने पाठ्यक्रम को विद्यालय के सन्दर्भ में परिभाषित किया है।

टेलर महोदय के अनुसार ''पाठ्यक्रम में पाठयवस्तु, शिक्षण विधियाँ तथा शिक्षण के उद्देश्य सम्मिलित है।'' इसे टेलर महोदय त्रिविमीय अन्तः क्रिया की संज्ञा देते हैं।

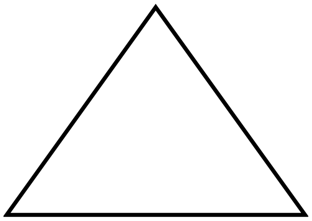

पाठ्यक्रम की त्रिविमीय अन्तः क्रिया

इसी बात को मुनरो अपेक्षाकृत सरल शब्दों में कहते हैं, उनके अनुसार ''पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वे सभी गतिविधियाँ आ जाती हैं जिनका उपयोग विद्यालय शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए करता है।''

हॉर्न महोदय भी इसी तरह के विचारों का अनुमोदन करते हुए कहते हैं कि ''जो कुछ विद्यार्थी को पढ़ाया जाता है वह पाठ्यक्रम है। यह लिखने व पढ़ने से अधिक है। इसमें अभ्यास, गतिविधियाँ, उद्योग-धन्धे, अवकाश तथा ज्ञान प्राप्त करना सम्मिलित है।''

विद्वानों की अलग-अलग परिभाषायें अन्ततः एक ही सत्य की ओर जाती हैं अतः इन परिभाषाओं के आधार पर लेखक पाठ्यक्रम को इस प्रकार परिभाषित कर सकता है-

"विद्यालय में प्रवेश लेने से परीक्षा उत्तीर्ण करने तक विद्यार्थी एवं अध्यापक की प्रत्येक वह प्रक्रिया जो शैक्षिक निहितार्थ लिये हुए है पाठ्यक्रम है"

3.4.2 अच्छे पाठ्यक्रम के सिद्धान्त Principle of Good Curriculum

पाठ्यक्रम की उपरोक्त परिभाषायें हमें यह स्पष्ट संकेत देती हैं कि पाठ्यक्रम निर्माण का कार्य अति महत्वपूर्ण कार्य है। वास्तव में जिस प्रकार हम भवन निर्माण के समय उसकी सामग्री की गुणवत्ता देखकर भवन की गुणवत्ता का अनुमान लगा सकते हैं उसी प्रकार पाठ्यक्रम की गुणवत्ता राष्ट्र के भविष्य की ओर इंगित करती है। इस सन्दर्भ में अरस्तू, पेस्टालाजी, काण्ट आदि विद्वानों ने विस्तृत चर्चा करते हुए पाठ्यक्रम निर्माण के अनेक सिद्धान्त निर्धारित किये हैं। स्थानाभाव के कारण हम यहाँ पर इन सभी विद्वानों के द्वारा दिये गये कुछ अति महत्वपूर्ण सिद्धान्तों की चर्चा करेंगे-

1. **ज्ञान वृद्धि में सहायक Helpful in Enhancing Knowledge-** वास्तव में मानव को अन्य जीव-जन्तुओं की अपेक्षा इसीलिए श्रेष्ठ कहा गया है, क्योंकि वह विविध साधनों के

माध्यम से अपने ज्ञान की वृद्धि करने में समर्थ है, अतः विद्यालय का पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जो विद्यार्थियों के ज्ञान में वृद्धि करने में समर्थ हो।

2. **शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक Helpful to Acquire the Teaching Objectives**- मानव की प्रत्येक क्रिया सोद्देश्य होती है, अतः शिक्षण कार्य भी कुछ निश्चित उद्देश्यों को लेकर किया जाता है। शिक्षण के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए पाठ्यक्रम सर्वोत्तम उपकरण है; अतः पाठयक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जो शिक्षण के विविध उद्देश्यों को सरलता से प्राप्त कर सके।
3. **बालक के समग्र विकास में सहायक Helpful in Wholesome Development of Child** - प्रायः हम शिक्षा को ज्ञान प्राप्ति का साधन मानते हैं। किन्तु शिक्षा केवल ज्ञान प्राप्ति के लिए नहीं है अपितु शिक्षा का उद्देश्य बालक का शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक, नैतिक आदि अनेक प्रकार का विकास करना है। अतः विद्यालय का पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जो बालक का सर्वांगीण विकास करने में सहायक हो।
4. **सिद्धान्त एवं प्रयोग का समन्वय Coordination of Principle and Practical** - हम पहले भी इस पर चर्चा कर चुके हैं कि पाठ्यक्रम केवल सैद्धान्तिक ज्ञान के लिए नहीं है, अपितु पाठ्यक्रम में शिक्षा का प्रयोगात्मक पक्ष भी अनिवार्य है। अतः विद्यालय का पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जो सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ बालक को विषय से सम्बन्धित व्यवहारिक ज्ञान भी प्रदान करे।
5. **अनुभवों को वरीयता Priority to Experiences**- प्रत्येक जीव दूसरे की अपेक्षा अपने अनुभवों से जल्दी सीखता है। यह बात मानव जाति के लिए भी उतनी ही सही है। विद्यालय का पाठ्यक्रम इस प्रकार से बनाया जाना चाहिए जिससे बच्चा सैद्धान्तिक ज्ञान प्राप्त करने के बाद उसे अपने अनुभवों से पुष्ट कर सके।
6. **अभ्यास को महत्व Importance to Exercise**- संस्कृत में उक्ति है ‘‘अभ्यासात् धारयते विद्या’’ अर्थात विद्या को अभ्यास से धारण किया जाता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि हमारा ज्ञान चाहे कितनी भी उच्च श्रेणी का क्यों न हो अभ्यास के अभाव में वह अस्थिर हो जाता है। अतः किसी भी विषय के लिए विद्यालय का पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जिसमें बालक के अभ्यास कार्य की पर्याप्त संभावनाऐं हों।
7. **गतिविधियों पर आधारित Activity Centred** -विद्यालय का पाठ्यक्रम केवल पुस्तकीय ज्ञान तक ही सीमित नहीं है। शिक्षा के क्षेत्र में चल रहे शोध इस बात की ओर संकेत करते हैं कि विद्यालय के पाठ्यक्रम में विभिन्न गतिविधियों को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिये।
8. **विद्यार्थियों के स्तर के अनुकूल According to the Level of Students** -हम जानते हैं कि किसी भी पात्र में उसकी सामर्थ्य से अधिक पदार्थ नहीं भरा जा सकता और यदि हम ऐसा करते हैं तो पात्र अथवा पदार्थ अथवा दोनों की क्षति हो सकती है। ठीक इसी

प्रकार यदि हम विद्यार्थी को उसके स्तर से अधिक का ज्ञान प्रदान करेंगे तो वह उसे प्राप्त करने में असफल रहेगा और यदि हम उसे उसके स्तर से नीचे का ज्ञान प्रदान करेंगे तो वह सम्बन्धित विषय में रूचि नहीं लेगा। अतः विद्यालय का पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए कि प्रत्येक स्तर का विद्यार्थी अपने स्तर के अनुकूल ज्ञान को प्राप्त कर सके।

9. **शैक्षिक अवधि के अनुकूल According to Academic Period-** अलग-अलग राज्यों में विभिन्न स्तरों के पाठ्यक्रम का अवलोकन करने से हमें यह ज्ञात होता है कि कुछ विषयों के पाठ्यक्रम एक शैक्षिक वर्ष की अवधि की तुलना में अधिक समय की अपेक्षा रखते हैं। इसी प्रकार अनेक पाठ्यक्रम इस प्रकार से बने होते हैं कि उन्हें विद्यार्थी दो से तीन माह की अवधि में ही पूरा कर लेता है। उक्त दोनों ही प्रकार के पाठ्यक्रम विसंगति की श्रेणी में आते हैं। वास्तव में विद्यालय के पाठ्यक्रम की संरचना इस प्रकार से की जानी चाहिए जिससे विद्यार्थी स्वयं पर समय का अधिक दबाव अनुभव न करे अथवा उसे बहुत कम समय में पूर्ण न कर सके। अतः हम कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम शैक्षिक अवधि के अनुकूल होना चाहिए।
10. **अन्य विषयों से सहसम्बद्ध Corelated With Other Subjects** -ज्ञान ईश्वर की तरह पूर्ण और अखंड होता है; उसे खण्डों में विभाजित कर सकना असम्भव है। हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि एक विषय में प्राप्त किया गया ज्ञान किसी न किसी स्थिति में दूसरे विषय में भी प्रयोग करने के योग्य होता है। अतः पाठ्यक्रम की रचना करते समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि पाठ्यक्रम अन्य विषयों से भलीभाँति सम्बद्ध हो।
11. **अवकाश का सदुपयोग करने में सहायक Helpful in use of Lesiure** - प्रायः यह देखने में आता है कि अवकाश के दिनों में विद्यार्थी खेल-कूद कर अपना सारा समय खर्च कर देते हैं तथा उनकी अवकाश कालीन गतिविधियों का पाठ्यक्रम/पाठ्यवस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं होता। पाठ्यक्रम की संरचना करते समय यदि हम इस तथ्य का ध्यान रख सकें कि पाठ्यक्रम अवकाश के समय का सदुपयोग करने में सहायक होना चाहिए तो इस समस्या से मुक्ति पायी जा सकती है।
12. **आयु एवं बौद्धिक क्षमता के अनुसार पाठ्यक्रम का बढ़ता स्तर Improving Standered of Curriculum According to Age and Mental Capacity-** आपने अपने अध्ययन काल में विभिन्न विषयों का अध्ययन करते हुए यह पाया होगा कि राज्य सरकार द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम में कहीं-कहीं छोटी कक्षाओं में अपेक्षाकृत कठिन तथा बड़ी कक्षाओं में अपेक्षाकृत सरल पाठ्यक्रम का निर्धारण कर दिया गया है। यह पाठ्यक्रम निर्धारण की बड़ी विसंगति है। पाठ्यक्रम निर्धारण करते समय विद्यार्थी की आयु एवं बौद्धिक क्षमता के अनुरूप पाठ्यक्रम का स्तर भी बढ़ता रहना चाहिए।
13. **विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम की परस्पर सहसम्बद्धता Corelation of Carriculum at Different Level** - कभी-कभी निम्न स्तर के पाठ्यक्रम में कुछ विषय

उच्च स्तर तक जाते-जाते समाप्त कर दिये जाते हैं। ऐसी स्थिति में विषय विशेष में प्राप्त किया गया विद्यार्थी का ज्ञान एवं उसका परिश्रम व्यर्थ हो जाता है। अतः विभिन्न स्तरों पर पाठ्यक्रम की परस्पर सहसम्बद्धता होनी चाहिए।

14. **राष्ट्र की आवश्यकता के अनुकूल According to the Requirment of Nation-** प्रत्येक राष्ट्र की बौद्धिक एवं भौतिक सम्पदा किसी भी दूसरे राष्ट्र की अपेक्षा अलग होती है। उदाहरण के लिए भारत भौगोलिक सामाजिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से विविधताओं वाला देश है। जनसंख्या की दृष्टि से इसका विश्व में दूसरा तथा क्षेत्रफल की दृस्टि से विश्व में सातवां स्थान है विद्यालय पाठ्यक्रम का निर्धारण करते समय उसे राष्ट्र के उपलब्ध संसाधनों, भौगोलिक स्थिति तथा उसकी आवश्यकता का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए।
15. **जीवन की वास्तविकताओं के निकट Nearabout the realities of life**-पाठ्यक्रम निर्माण के उपरोक्त सिद्धान्तों का ध्यान रखते-रखते कहीं ऐसा न हो कि हमारा पाठ्यक्रम जीवन की वास्तविकताओं से बहुत दूर चला जाये। ऐसा होने की स्थिति में पाठ्यक्रम के लिए किये गये प्रयास न केवल निष्फल सिद्ध होंगे अपितु नकारात्मक परिणाम प्राप्त होने की भी पर्याप्त संभावनायें है। अतः कुछ भी करके हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि हमारा पाठ्यक्रम जीवन की वास्तविकताओं के निकट अवश्य हो।

3.5 पाठ्यक्रम एवं निर्देशन Guidance and Curriculum

निर्देशन पाठ्यक्रम का एक अति महत्वपूर्ण एवं अभिन्न अंग है। निर्देशन और पाठ्यक्रम में इतनी अभिन्नता है कि हम निर्देशन के बिना पाठ्यक्रम की कल्पना भी नहीं कर सकते। आगे की पंक्तियों में हम निर्देशन एवं पाठ्यक्रम की समानता पर चर्चा करेंगे।

निर्देशन और पाठ्यक्रम में समानतायें Similarities between Guidance and Curriculum

निर्देशन और पाठ्यक्रम में कुछ महत्वपूर्ण समानतायें निम्नवत हैं -

i. **छात्र केन्द्रित** - निर्देशन और पाठ्यक्रम दोनों ही छात्र केन्द्रित होते हैं छात्रों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर ही निर्देशन का कार्यक्रम बनाया जाता है, तथा विभिन्न कक्षाओं के पाठ्यक्रम का निर्माण भी छात्रों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर किया जाता है।
ii. **विषय केन्द्रित**- निर्देशन प्रक्रिया का आयोजन छात्र की प्रत्येक विषय की आवश्यकता को ध्यान में रखकर अलग-अलग किया जाता है। प्रत्येक विषय का पाठ्यक्रम भी विषय की

आवश्यकता के अनुसार अलग-अलग प्रकार से निर्धारित किया जाता है। जैसे भाषा के पाठ्यक्रम में व्याकरण पर अधिक बल दिया जाता है, तो विज्ञान के पाठ्यक्रम में प्रयोग पर।

iii. **शिक्षक की भूमिका**- पाठ्यक्रम निर्माण तथा निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन में शिक्षक की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है बिना शिक्षक की भूमिका के न तो पाठ्यक्रम का निर्माण संभव है और न ही निर्देशन कार्य अतः हम यह कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम निर्माण तथा निर्देशन कार्यक्रम के केन्द्र में शिक्षक धुरी के रूप में खड़ा है।

iv. **बालक के शारीरिक विकास में सहायक** - पाठ्यक्रम तथा निर्देशन दोनों ही बालक के शारीरिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शारीरिक शिक्षा, खेल-कूद, शैक्षिक भ्रमण तथा गृह विज्ञान आदि कुछ पाठ बालक के शारीरिक विकास के लिए अति महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार उक्त समस्त गतिविधियों में कुशल निर्देशन के बिना बालक का समुचित शारीरिक विकास सम्भव नहीं है।

3.5.2 पाठ्यक्रम के माध्यम से निर्देशन Guidance through Curiculum

जब हम विद्यार्थी को पाठ्यक्रम के माध्यम से विषयों का ज्ञान प्रदान कर रहे होते हैं हम उसे विषय विशेष का ज्ञान देने के साथ-साथ उस विषय से सम्बन्धित निर्देशन भी प्रदान कर रहे होते हैं। इस तथ्य को एक उदाहरण के माध्यम से और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है। जब हम कक्षा 6 अथवा 7 के विद्यार्थी को पाठ्यक्रम के माध्यम से भाषा का ज्ञान प्रदान करते हैं। तब हम भाषा ज्ञान के अन्तर्गत उसे गद्य, पद्य तथा व्याकरण का ज्ञान प्रदान करेंगे। गद्य का पाठ पढ़ाते समय बालक या विद्यार्थी को भाषा के उचित प्रयोग का निर्देशन भी देते हैं। पाठ में समाहित विषय वस्तु के आधार पर हम उसे किसी न किसी प्रकार का निर्देशन जो विद्यार्थी के ज्ञान पक्ष को प्रबल करता है दे रहे होते हैं। पद्य को पढ़ाते समय हम उसे भावनात्मक संतुलन बनाने का निर्देशन देते हैं।

इसी प्रकार व्याकरण का शिक्षण भाषा के शुद्ध तथा सटीक प्रयोग का निर्देशन है। उदाहरण केवल कक्षा 6 तथा 7 नहीं अपितु किसी भी स्तर के विद्यार्थी के लिए समान रूप से सही है।

सामाजिक विषयों का शिक्षण करते समय हम विद्यार्थी को विभिन्न प्रकार के सामाजिक मूल्यों के विकास, समाज में सामंजस्य स्थापित करना, समाज से अनुकूलन तथा समाज में अपने लिए श्रेष्ठतर स्थान प्राप्त करने आदि का निर्देशन देते हैं।

भाषा और सामाजिक विषयों की ही भाँति हम विद्यार्थी को विज्ञान से सम्बन्धित विषयों का ज्ञान प्रदान करते हैं। विज्ञान से सम्बन्धित विषयों का शिक्षण करते समय हम विद्यार्थी को विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकों के प्रयोग तथा वह प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों का सर्वोत्तम प्रयोग कैसे करें, इसका भी निर्देशन प्रदान करते हैं। इसके साथ-साथ हम उसे विभिन्न प्रकार के कृत्रिम उपकरणों के प्रयोग का निर्देशन भी प्रदान करते हैं।

सामाजिक विषय सामाजिक मूल्यों का विकास समाज में उसका स्थान तथा भूमिका, समाज में कैसे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करें।

विज्ञान, वैज्ञानिक तकनीकों का प्रयोग, प्रकृति द्वारा प्रदत्त संसाधनों एवं कृत्रिम उपकरणों का प्रयोग करने हेतु निर्देशन।

3.6 निर्देशन और कक्षा कक्ष अधिगम Guidance and Classroom Learning

यदि हम शिक्षण प्रक्रिया को ध्यानपूर्वक देखें तो हम पायेंगे कि शिक्षण का कार्य निर्देशन से अधिक कुछ भी नहीं है। प्रायः विद्यालयों में दो प्रकार से शिक्षण कार्य किया जाता है। अध्यापक केन्द्रित तथा छात्र केन्द्रित।

व्याख्यान विधि से किया गया कार्य अध्यापक केन्द्रित होता है और इसमें छात्र केवल सुनते हैं। इस प्रकार प्राप्त किया गया ज्ञान ऊपर से थोपा गया ज्ञान होता है।

छात्रों की सहायता से किया जाने वाला शिक्षण कार्य एक प्रकार से निर्देशन का ही दूसरा रूप है, अध्यापक विषय को प्रस्तावित करके उसका विकास छात्रों पर छोड़ देता है तथा बीच-बीच में आवश्यकतानुसार निर्देशन प्रदान करता रहता है। कक्षा कक्ष अधिगम की इस प्रक्रिया के विषय में हम आगे विस्तारपूर्वक चर्चा करेंगे।

कक्षा कक्ष अद्यिगम में निर्देशन की भूमिका Roll of Guidance in Classroom Learning- कक्षा कक्ष अद्यिगम में निर्देशन की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रतिदिन के कक्षा कक्ष व्यवहार में एक कुशल शिक्षक अधिगम का उच्च स्तर प्राप्त करना चाहता है। शिक्षण की श्रेष्ठ कला, शिक्षक का उच्चस्तरीय ज्ञान तथा छात्रों का उच्च मानसिक स्तर मिलकर श्रेष्ठ अधिगम के लिए उत्तरदायी हैं किन्तु उक्त समस्त तथ्य निर्देशन की भूमिका के बिना आधारहीन हैं। जब प्रतिदिन के कक्षा-कक्ष व्यवहार में एक शिक्षक कुशल निर्देशक की भूमिका का निर्वहन करता है तब वह शिक्षण की गतिविधि को आधार प्रदान कर रहा होता है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि प्रतिदिन का कक्षा-कक्ष व्यवहार निर्देशन की आधार भूमि पर ही सम्पन्न हो सकता है। आगे की जाने वाली चर्चा कक्षा-कक्ष अधिगम में निर्देशन की भूमिका को और अधिक स्पष्ट करने में सक्षम होगी।

3.6.1 कक्षा कक्ष शिक्षण के सिद्धान्त Theories of Classroom Teaching

1. **पाठ्यक्रम का ज्ञान Knowledge of Curriculum-** किसी भी कक्षा का पाठ्यक्रम शिक्षण एवं निर्देशन कार्य का मूल आधार है अध्यापक को कक्षा कक्ष शिक्षण आरम्भ

करने से पूर्व सर्वप्रथम अपने लिए निर्धारित कक्षा के पाठ्यक्रम से भली-भाँति अवगत हो जाना चाहिए तभी वह उचित प्रकार से शिक्षण कार्य करने में सक्षम होगा।

2. **सामान्य उद्देश्यों का निर्धारण Determination of General Objectives** -कक्षा कक्ष शिक्षण आरम्भ करने से पहले अध्यापक को वर्षपर्यन्त किये जाने वाले शिक्षण कार्य के लिए उद्देश्यों का निर्धारण कर लेना चाहिए। उसे पहले से ही यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि पढ़ाये जाने वाले पाठ्यक्रम को किन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्धारित किया गया है, तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति किस प्रकार की जा सकेगी।
3. **शिक्षण लक्ष्य का निर्धारण Determination of Learning Aims**-पूरे वर्ष के लिए शिक्षण उद्देश्यों का निर्धारण करने के पश्चात अध्यापक का प्रथम दायित्व यह बनता है कि वह अपने प्रतिदिन के शिक्षण कार्य की योजना बना लें। उक्त योजना में उसे यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि कक्षा में प्रवेश करने से लेकर एक दिन का शिक्षण कार्य समाप्त करने के पश्चात वह किन-किन लक्ष्यों को प्राप्त कर लेगा।
4. **विद्यार्थी के ज्ञान का आकलन Estimate of Student's Knowledge**-कक्षा में जाने से पूर्व हमें यह अवश्य पता होना चाहिए कि हम जिन विद्यार्थियों को पढ़ाने जा रहे हैं, उनका मानसिक स्तर क्या है तथा हमारे विषय से सम्बन्धित कितना और किस प्रकार का ज्ञान छात्र पहले से ही रखते हैं छात्रों के ज्ञान का स्तर पता चल जाने से शिक्षण का कार्य अपेक्षाकृत सरल हो जाता है।
5. **सहायक सामग्री का एकत्रीकरण Collection of Helping Aid**- एक कुशल अध्यापक के रूप में हमें अपने शिक्षण विषय से सम्बन्धित वह सामग्री पहले से ही एकत्र कर लेनी चाहिए जो शिक्षण कार्य में सहायक हो सकती है। यह सामग्री किसी भी प्रकार की कोई वस्तु, उपकरण, चित्र, रेंखाचित्र, ग्राफ, चार्ट, मानचित्र, किसी वस्तु का मॉडल आदि हो सकती है।
6. **विद्यार्थियों में विषय के प्रति रूचि उत्पन्न करना To Increase the Interest of Student for Particular Subject** - गली में तमाशा दिखाने वाला मदारी और कक्षा में शिक्षण करने वाले शिक्षक दोनों की भूमिका इस दृष्टि से समान होती है कि वे स्वयं में अथवा अपने विषय में बालक का रूझान विकसित किये बिना सफलता प्राप्त नहीं कर सकते। विशेषकर किशोरावस्था की ओर बढ़ रहे बालक केवल उन्हीं कार्यों को पूरे मन से सम्पादित करते हैं जिनमें उनकी रूचि होती है। अतः कक्षा कक्ष में जाने पर एक अध्यापक का पहला कर्तव्य यह बनता है कि वह किसी भी प्रकार से पढ़ाये जाने वाले विषय में विद्यार्थी की रूचि का विकास करे।
7. **मूल विषय का प्रस्तुतीकरण Presentation of Main Subject** - अंग्रेजी में एक कहावत है कि well begin is half done अर्थात अच्छी तरह से आरम्भ किया गया कार्य सहजता और सरलता से सम्पन्न होता है यह बात कक्षा कक्ष शिक्षण पर भी पूरी तरह से

लागू होती है, अतः एक अध्यापक का यह दायित्व बनता है कि वह पढ़ायी जाने वाली विषयवस्तु को अपनी सर्वोत्तम क्षमता का उपयोग करते हुए प्रस्तुत करे।

8. **पाठ का विकास Development of Lesson-** पाठ के उत्तम प्रस्तुतीकरण के बाद अध्यापक के भीतर बैठा हुआ निर्देशक सक्रिय हो जाता है। शिक्षण की कला में पारंगत अध्यापक इस बात को भली-भाँति जानते हैं कि ईश्वर ने समस्त प्रकार का ज्ञान बालक के भीतर पहले से ही भरा हुआ है किन्तु उसको विकसित करने का दायित्व अध्यापक का है। एक कुशल अध्यापक अपने विद्यार्थियों पर अपना ज्ञान कभी भी थोपता नहीं है अपितु वह तो उनके भीतर के ज्ञान को ही निर्देशन की विभिन्न विधियों से बाहर निकालने का कार्य करता है। इस बात को हम निम्नांकित बिन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट करेंगे।

   a. **विद्यार्थियों की सुनिश्चित भागीदारी Confirmation of Participation of Students** - पाठ के विकास की प्रक्रिया में एक कुशल अध्यापक यह सुनिश्चित कर लेता है कि पाठ का विकास करते समय कक्षा के अधिकांश छात्र सक्रिय रूप से भागीदार रहें। वस्तुतः पाठ का वास्तविक विकास विद्यार्थी ही करते हैं। अध्यापक तो अपने उचित निर्देशन के माध्यम से पाठ को उपयुक्त दिशा और सही गति प्रदान करता है।
   b. **कक्षा की आवश्यकताओं के अनुकूल शिक्षण गति Teaching Speed Acoording to Requirment of Classes-** किसी भी पाठ का विकास किस गति से होगा यह कक्षा के विद्यार्थियों पर निर्भर करता है। वास्तव में कक्षा में उपस्थित विद्यार्थियों की रूचि तथा उनका मानसिक स्तर पाठ के विकास के लिए उत्तरदायी होता है।
   c. **विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का विशेष ध्यान Special Care for Special Child** - किसी भी कक्षा में प्रायः तीन प्रकार के विद्यार्थी होते हैं कुछ मानसिक स्तर पर पिछड़े हुए कुछ प्रखर तथा अधिकांश सामान्य बुद्धि के प्रायः शिक्षण कार्य को सामान्य बुद्धि के विद्यार्थी संचालित करते हैं, किन्तु कक्षा के पिछड़े एवं प्रखर विद्यार्थियों की आवश्यकतायें अलग-अलग होती है। अतः अध्यापक को इन विद्यार्थियों की आवश्यकताओं का विशेष ध्यान रखना चाहिए।
   d. **सहायक सामग्री का सटीक प्रयोग Appropriate use of Material Aid** -शिक्षण कार्य के लिए कक्षा में उपकरण आदि सहायक सामग्री का ले जाना ही अध्यापक के लिए पर्याप्त नहीं है अपितु उसे इस बात का भली-भाँति ज्ञान होना चाहिए कि किस प्रकार की सामग्री का प्रयोग कब और कैसे करना है। सहायक सामग्री वास्तव में शिक्षण की कला को जानने वाले अध्यापकों के हाथ में एक महत्वपूर्ण उपकरण तथा अकुशल शिक्षक के हाथ में खतरे की घंटी है।

पाठ के विकास में अध्यापक की निर्देशक के रूप में भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है इस पर सम्पूर्ण चर्चा करने के लिए अलग से एक पुस्तक लिखने की आवश्यकता है। समय तथा स्थान के अभाव में यहाँ कतिपय महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर संक्षिप्त चर्चा की गयी है। उक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त कक्षा कक्ष शिक्षण की प्रक्रिया में कुछ और बिन्दु भी है जो अधिगम के स्तर को बढ़ाते हैं, जैसे-आवश्यकतानुसार विषय की गहराई में जाना, बीच-बीच में प्रश्नोत्तर, प्रेरणात्मक वाक्यों का प्रयोग, उपयुक्त उदाहरणों का प्रयोग तथा हाव-भाव का प्रदर्शन आदि।

9. **प्राप्त ज्ञान का मूल्यांकन Evaluation of Aquired Knowledge** -एक कुशल अध्यापक प्रतिदिन के कक्षा कक्ष शिक्षण के अन्तिम चरण में इस बात का मूल्यांकन अवश्य करता है कि उसके विद्यार्थियों ने आज की कक्षा में किस सीमा तक ज्ञान प्राप्त किया।
10. **समस्त पाठ की संक्षिप्त आवृत्ति Brief Recaptulation of Whole Lesson-** कक्षा कक्ष शिक्षण का समापन करते हुए एक कुशल अध्यापक को उस दिन के समस्त पाठ की संक्षिप्त आवृत्ति अवश्य करनी चाहिए यह प्रक्रिया प्राप्त किये गये ज्ञान को स्थिर करने में सहायक होती है।
11. **पुनरावलोकन के अवसर प्रदान करना To Provide Oppurtunity of Revision** - केवल एक बार विषय वस्तु को भली-भाँति पढ़ाकर अध्यापक का कर्त्तव्य पूर्ण नहीं होता, अपितु छात्र को विषयवस्तु के पुनरावलोकन का अवसर प्रदान करना भी शिक्षक का दायित्व बनता है। इस कार्य के लिए वह ग्रह कार्य की सहायता ले सकता है।
12. **प्राप्त ज्ञान का व्यवहारिक पटल पर आकलन Evaluation of acquired Knowledge on the Practical Basis** - मेरी कक्षा के छात्रों ने कितना सीखा? क्या वह सीखे हुए ज्ञान का उपयोग पर पायेंगे? इस तरह के प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के लिए उसे छात्रों के समक्ष भविष्य में ज्ञान के प्रयोग हेतु परिस्थितियों का निर्माण करना होगा, प्रयोगशाला में प्रयोग कराने होंगे तथा आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों को उपयुक्त निर्देशन देना होगा।

उक्त बिन्दुओं के माध्यम से की गयी अति संक्षिप्त चर्चा यह स्पष्ट करती है कि कक्षा कक्ष शिक्षण में अधिगम का श्रेष्ठ स्तर प्राप्त करने के लिए एक अध्यापक तथा उसके द्वारा दिया जाने वाला निर्देशन अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

3.6.2 शिक्षक का निर्देशक के रूप में कक्षा कक्ष अधिगम में महत्व Importance of Teacher as a Guide in Classroom Learning

अध्यापक के महत्व को स्वीकार करते हुए विद्वानों ने उसकी तुलना जहाज में कप्तान, घड़ी में कमानी तथा शरीर में मस्तिष्क से की है। इतनी महत्वपूर्ण स्थितियों को संजोकर रखने वाले अध्यापक का

सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य कक्षा कक्ष शिक्षण है। एक विषय अध्यापक के रूप में अध्यापक अपने सर्वाधिक महत्वपूर्ण दायित्व का निर्वहन करता है अतः यह स्पष्ट ही है कि कक्षा कक्ष शिक्षण में अध्यापक का महत्वपूर्ण स्थान है।

किसी विषय का विशेषज्ञ अध्यापक यदि निर्देशन की कला से अनभिज्ञ है तो उसकी विद्वता विद्यार्थियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी इसमें संशय है। किन्तु, यदि अध्यापक निर्देशन कार्य को निपुणतापूर्वक सम्पन्न करना जानता है तो उसकी यह विशेषता न केवल अध्यापक को सफल सिद्ध करेगी अपितु ऐसे अध्यापक के विद्यार्थी ज्ञान के क्षेत्र में नये कीर्तिमान स्थापित करने में सफल होंगे, अतः एक अध्यापक के लिए जितना अनिवार्य विषय विशेषज्ञ होना है उतना ही निर्देशन की कला में निपुण होना भी है।

3.6.3 कक्षा कक्ष अधिगम में अधिगमकर्त्ता के रूप में विद्यार्थी की भूमिका Role of a Student as a Learner in Classroom Learning

कुम्हार चाहे कितना ही कुशल क्यों न हो बर्तन बनाने की मिट्टी यदि उत्तम प्रकार की नहीं है तब श्रेष्ठ परिणाम प्राप्त होने की आशा कम रहती है। इसी प्रकार एक योग्य अध्यापक के कुशल निर्देशक होते हुए भी अधिगम का स्तर कक्षा के विद्यार्थियों पर अधिक निर्भर करता है। यदि कक्षा के विद्यार्थी श्रेष्ठ मानसिक स्तर (High I.Q) स्वस्थ शरीर वाले एवं विषय में रूचि रखने वाले होंगे तभी विषय विशेष में उनका अधिगम का स्तर ऊंचा होगा। निश्चित रूप से निर्देशक के रूप में अध्यापक की भूमिका जितनी अधिक महत्वपूर्ण है अद्यिगमकर्ता के रूप में उतनी ही महत्वपूर्ण भूमिका अध्येता (विद्यार्थी) की है।

3.6.4 कक्षा कक्ष अद्यिगम से सम्बन्धित कुछ मनोवैज्ञानिक कारक Some Psychological Factors Related to Classroom Learning-

किसी भी कार्य को भली-भाँति सम्पन्न करने की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिक कारकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार कक्षा कक्ष अद्यिगम में भी मनोवैज्ञानिक कारक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं, यहाँ हम कुछ अति महत्वपूर्ण कारकों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे।

1. अध्यापक को बालक के ज्ञान का स्तर पता होने की दशा में अधिगम का स्तर बढ़ने की सम्भावना रहती है।
2. अध्यापक द्वारा ज्ञान प्रदान करने से पूर्व विद्यार्थी की विषय के प्रति रूचि विकसित कर लेने से रूचिपूर्वक पढ़े गये पाठ सदैव श्रेष्ठ परिणाम देने वाले होते हैं।
3. विषय के प्रस्तुतीकरण से सम्बन्धित संसाधनों को पहले से ही एकत्र कर लेना तथा कक्षा में उनका सहज और सटीक प्रदर्शन भी अधिगम के स्तर को बढ़ाने में सफल होता है।
4. कक्षा कक्ष में शिक्षण करते समय अध्यापक पाठ के विकास में विद्यार्थियों की जितनी अधिक भागीदारी सुनिश्चित करेगा अधिगम का स्तर उतना ही अधिक होगा।

5. पाठ का विकास करते समय विद्यार्थियों की अनुकूल प्रतिक्रिया मिलने पर अध्यापक द्वारा उनके लिए प्रशंसासूचक शब्दों का प्रयोग अधिगम के स्तर को बढ़ाने का कार्य करता है।
6. आवश्यकतानुसार विद्यार्थियों को प्रेरित करने वाले वाक्य भी अधिगम का स्तर बढ़ाते हैं।
7. एक कुशल निर्देशक समय-समय पर कक्षा की प्रगति का मूल्यांकन भी करता रहता है जिससे वह अधिगम के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए उपयुक्त प्रयास कर सके।
8. उपरोक्त समस्त कारकों के साथ यदि विद्यार्थी में दृढ़ इच्छा शक्ति एवं आत्मविश्वास का विकास कर दिया जाये तो हम निश्चित रूप से अधिगम के श्रेष्ठ स्तर को प्राप्त कर सकेगें।

3.7 सारांश

निर्देशन प्रत्येक व्यक्ति की अनिवार्य आवश्यकता है, इस कार्य में शिक्षक की भूमिका अत्यधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि विद्यार्थी शिक्षक को न केवल अपना आदर्श मानते हुए उसका अन्धानुसरण करता है अपितु उसके अत्यधिक सम्पर्क में होने के कारण शिक्षक भी अपने विद्यार्थी को भली भाँती समझता है। एक अच्छा शिक्षक अपने विद्यार्थी को वैयक्तिक निर्देशन के अन्तर्गत संवेगात्मक निर्देशन, स्वास्थ्य सम्बन्धी निर्देशन एवं व्यवहार सम्बन्धी निर्देशन प्रदान करता है। इसी प्रकार शैक्षिक निर्देशन के अन्तर्गत वह उपयुक्त विषय के चुनाव में सहायता करते हुए न केवल ज्ञान प्राप्ति में सहायता प्रदान करता है अपितु श्रेष्ठ अभिव्यक्ति की विद्या भी सिखाता है। एक शिक्षक अपने विद्यार्थी को कक्षा कक्ष व्यवहार सम्बन्धी निर्देशन देने के साथ-साथ अध्ययन सामग्री का चयन करने में सहायता तथा प्रयोगशाला कार्य के लिए निर्देशन भी प्रदान करता है। एक अध्यापक अपने विद्यार्थी को कभी एक व्यक्ति के रूप में, कभी कक्षाध्यापक के रूप में, कभी विषय अध्यापक के रूप में, कभी खेल शिक्षक के रूप में और कभी अनुशासक के रूप में निर्देशन प्रदान करता है।

निर्देशन एवं पाठ्यक्रम में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। कभी-कभी पाठ्यवस्तु एवं पाठ्यक्रम को पर्याय मान लिया जाता है किन्तु पाठ्यवस्तु पाठ्यक्रम का एक अंग मात्र है। विद्यालय के सन्दर्भ में की गयी प्रत्येक प्रक्रिया पाठ्यक्रम का ही अंग होती है। अच्छे पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय हमें अनेक बातों का ध्यान रखना चाहिए। जैसे पाठ्यक्रम न केवल ज्ञान वृद्धि में सहायक हो अपितु शिक्षण उद्देश्यों की प्राप्ति में भी सहायक हो। बालक के समग्र विकास में सहायता करने वाला पाठ्यक्रम उसे अवकाश के समय का सदुपयोग करना सिखाये और जीवन की वास्तविकताओं के निकट हो।

निर्देशन और पाठ्यक्रम दोनों ही छात्र केन्द्रित एवं विषय केन्द्रित होने चाहिए तथा बालक के समग्र विकास में इनकी भूमिका महत्वपूर्ण होनी चाहिए। एक कुशल अध्यापक अपने विद्यार्थी को पाठ्यक्रम के माध्यम से श्रेष्ठ निर्देशन प्रदान करता है तथा कक्षा कक्ष अध्ययन के समय अनेक महत्वपूर्ण सिद्धान्तों का ध्यान रखता है।

3.8 संदर्भ ग्रंथ

1. Agrawal Rashmi, (Education Vocational Guidance and counseling) Shipra Publications, Delhi- 11092 (2006)
2. Suri S.P., T.S. Sodhi, (Guidance and counseling), Bawa Publication Patiala (1997)
3. Sharma R.A., (Career information in career guidance) Surya Publication Meerut (2004)
4. Sharma R.A (Guidance and counseling) Vinay Rakheia c/o R. Lall book Depot Meerut (2010)
5. सिंह रामपाल राधावल्लभ उपाध्याय, (शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. जायसवाल सीताराम (शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श), अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा (2009)

3.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. एक कुशल निर्देशक के रूप में अध्यापक के दायित्वों का वर्णन करो।
2. निर्देशक के रूप में शिक्षक को किन-किन भूमिकाओं का निर्वहन करना पड़ता है।
3. पाठ्यक्रम एवं पाठ्यवस्तु में क्या अन्तर है?
4. एक अच्छे पाठ्यक्रम की विशेषतायें संक्षेप में बताइये।
5. एक सफल कक्षा कक्ष अधिगम के लिए किन बातों की आवश्यकता होती है।
6. 'कक्षा कक्ष अधिगम में शिक्षक एवं विद्यार्थी एक दूसरे के पूरक हैं' सिद्ध कीजिए।

इकाई - 4 निर्देशन के अभिकरण: राष्ट्रीय स्तर, राज्य स्तर

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 अभिकरण की परिभाषा
4.4 भारत में निर्देशन के अभिकरण
4.5 भारत में निर्देशन अभिकरणों के विभिन्न स्तर
    4.5.1 राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन के अभिकरण
    4.5.2 राज्य स्तर पर निर्देशन के अभिकरण
    4.5.3 स्थानीय स्तर पर निर्देशन के अभिकरण
4.6 सारांश
4.7 संदर्भ ग्रंथ
4.8 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

पीछे के पृष्ठों में हम निर्देशन के विषय में पर्याप्त अध्ययन कर चुके हैं। हम जानते हैं कि निर्देशन शिक्षा की ही भाँति जन्म से आरम्भ होकर मृत्यु तक चलने वाली प्रक्रिया है। निर्देशन की यह प्रक्रिया अनेक प्रकार से सम्पादित की जा सकती है। यद्यपि निर्देशन की यह प्रक्रिया अन्य लोगों की सहायता से सम्पन्न की जाती है, तथापि इसमें किसी विशेष प्रकार के संगठन की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु, जब हम निर्देशन की इस प्रक्रिया को व्यवस्थित एवं समग्र रूप से करना चाहते हैं तो हमें विशेष प्रकार के संगठन की आवश्यकता होती है। आगे के पृष्ठों में हम निर्देशन के अभिकरणों के बारे में जानेंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. निर्देशन के अभिकरण को परिभाषित कर सकेंगे।
2. भारत में निर्देशन की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे।

3. यह जान सकेंगे कि भारत में राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन के कौन-कौन से अभिकरण हैं तथा उनके क्या कार्य हैं।
4. यह जान सकेंगे कि राष्ट्रीय स्तर पर समाचार पत्र तथा विभिन्न पत्र-पत्रिकायें किस प्रकार निर्देशन के अभिकरण के रूप में कार्य करते है।
5. यह भी जान सकेंगे कि निर्देशन के गैर सरकारी अभिकरण कौन-कौन हैं; तथा वह क्या कार्य करते हैं ?
6. राज्य स्तर पर निर्देशन के सरकारी, गैर सरकारी तथा अन्य अभिकरणों के बारे में जान सकेंगे।
7. राज्य स्तर पर निर्देशन में पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका के बारे में जान सकेंगे।
8. यह भी जान सकेंगे कि स्थानीय स्तर पर निर्देशन के कौन-कौन से अभिकरण हैं तथा वे किस प्रकार से कार्य करते हैं ?

4.3 अभिकरण की परिभाषा Definition of Agencies

जैसा कि हम ऊपर की पंक्तियों में जान चुके हैं कि निर्देशन की प्रक्रिया को दो प्रकार से सम्पादित किया जा सकता है –

i. नितान्त निजी स्तर पर
ii. संगठित रूप से

निर्देशन का यह कार्य कभी भी और कहीं भी किया जा सकता है। किन्तु, जब हम निर्देशन का यह कार्य संगठित और व्यवस्थित तरीके से करना चाहते हैं तो हमें इसके लिए किसी संगठन या संस्था की आवश्यकता होती है। किसी क्षेत्र विशेष में निर्देशन के कार्य विशेष के लिए बनायी गयी यह व्यवस्था अथवा संस्था ही अभिकरण कहलाती है। हम अभिकरण को निम्नांकित प्रकार से परिभाषित कर सकते हैं- “जब किसी व्यक्ति अथवा संस्था को (जैसे निर्देशन) किसी कार्य विशेष को करने के लिए वैधानिक अधिकार प्रदान करते है तथा उसका दायित्व निर्धारित करते हैं तो हम कह सकते हैं कि उस संस्था तथा व्यक्ति के पास कार्य विशेष (जैसे निर्देशन) का अभिकरण (ऐजेन्सी) है”

4.4 भारत में निर्देशन के अभिकरण Agencies of Guidance in India

जैसा कि हम भली भाँति जानते हैं कि सभ्यता के आरम्भ से ही निर्देशन का भी आरम्भ हो गया था। निरन्तर चलने वाली यह प्रक्रिया जीवन के छोटे से छोटे तथा बड़े से बड़े कार्य में आवश्यक होती है। सभ्यता के विकास के साथ-साथ निर्देशन की प्रक्रिया में भी परिवर्तन होता रहा। आदि काल में

मानव एकाकी जीवन व्यतीत करता था किन्तु जैसे ही मानव ने समूह में रहना आरम्भ किया वैसे ही उसे समायोजन के लिए निर्देशन की आवश्यकता अनुभव होने लगी।

सभ्यता के उन्नति शिखर पर पहुँचने के लिए जैसे-जैसे मानव ने विकास की सीढ़ियों पर कदम बढ़ाये वैसे-वैसे निर्देशन की यह प्रक्रिया औपचारिक रूप लेने लगी।

लेखन कला का विकास-काल निर्देशन के अभिकरणों का आरम्भिक काल कहा जा सकता है। ज्ञात रूप से सर्वप्रथम पुस्तकें ही निर्देशन का ऐसा अभिकरण थी जो व्यक्ति को व्यक्तिगत या सामूहिक रूप से निर्देशन प्रदान करती थी।

औद्योगीकरण की प्रक्रिया ने निर्देशन के अभिकरणों को पुस्तकों से निकालकर प्रथम संगठित एवं औपचारिक रूप प्रदान किया। धीरे-धीरे जनसंख्या वृद्धि और संसाधनों के अत्यधिक दोहन ने बेरोजगारी सहित अनेक विकराल समस्याओं को जन्म दिया। इन समस्याओं के समाधान के लिए निर्देशन की प्रक्रिया जटिल, संगठित और अधिक महत्वपूर्ण हो गयी।

मानव अब तक मशीनो का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में करने लगा था और समाज अपनी जीवन शैली के कारण अपेक्षाकृत अधिक जटिल हो गया था। परिणामस्वरूप निर्देशन की आवश्यकता अधिक, और प्रक्रिया जटिल होने लगी।

हमारे देश में प्राचीन काल से ही शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह से निर्देशन की ही प्रक्रिया थी। प्राचीन भारतीय मनीषियों ने ज्ञान एवं सूचना के बारीक अन्तर को भली-भाँति समझा हुआ था, तथा वे सूचना पर ज्ञान को प्रधानता देते थे, इसीलिए गुरूकुलों में ज्ञान पर आधारित शिक्षा दी जाती थी। शिष्य, गुरू के निर्देशन में घर से बहुत दूर रहकर न केवल स्वयं में विभिन्न कौशलों का विकास करता था अपितु स्वयं की रूचियों एवं क्षमताओं को सीखने के साथ-साथ समायोजन को भी सीखता था। गुरूकुल शिक्षा पद्धति तथा गुरू और शिष्यों के बीच अत्यधिक घनिष्ठता ने भारत में अलग से निर्देशन हेतु किसी संगठन की आवश्यकता अनुभव नहीं की। भारत के जन-जन तथा कण-कण में व्याप्त निर्देशन प्रक्रिया का ही ये परिणाम था कि वैदिक भारत से लेकर स्वतन्त्र भारत तक निर्देशन का कोई स्वतन्त्र अभिकरण न होते हुए भी भारतीय समाज ने विश्व में न केवल सफलता का परचम लहराया बल्कि भारतीय विवेक, बुद्धि तथा कौशल का भी लोहा मनवाया था। तथापि परतन्त्र भारत में पश्चिमी जगत की देखा-देखी पहली बार 1938 में व्यावसायिक निर्देशन का पहला अभिकरण स्थापित हुआ। इसकी स्थापना कलकत्ता यूनिवर्सिटी के व्यवहारिक मनोविज्ञान की शाखा के अन्तर्गत की गयी। 1941 में बम्बई प्रान्त में भी संगठित रूप से व्यावसायिक निर्देशन आरम्भ किया गया जिसे बाद में पारसी पंचायत ने संभाल लिया और स्वतन्त्रता के वर्ष 1947 में व्यावसायिक ब्यूरो के रूप में कार्य आरम्भ किया। इसी के अन्तर्गत कैरियर मास्टर के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी थी। इससे पूर्व उ0प्र0 के इलाहाबाद में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में 1942 में मनोविज्ञान निर्देशन ब्यूरो की स्थापना हो चुकी थी। यह ब्यूरो उ0प्र0 के विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों को निर्देशन देने के लिए स्थापित किया गया था। बाद में उ0प्र0 के पाँच प्रमुख नगरों

में इस ब्यूरो की शाखायें खुलीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारतवर्ष में निर्देशन के अभिकरणों में बहुत तेजी से विकास हुआ। स्वतन्त्र भारत की नयी सरकार में भारतीय जनमानस के लिए बहुत कुछ कर गुजरने की इच्छा शक्ति थी। उसकी इसी इच्छा शक्ति ने उसे विभिन्न आयोगों के गठन के लिए प्रेरित किया।

सर्वप्रथम 1953 में गठित माध्यमिक शिक्षा आयोग ने शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन की आवश्यकता पर बल देते हुए उसके विस्तार के लिए सुझाव प्रस्तुत किये। इससे पूर्व 1950 में बम्बई में व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरों की स्थापना की जा चुकी थी जिसकी शाखायें अहमदाबाद तथा पूना में भी खोली गयीं जहाँ पर कैरियर मास्टर आदि का प्रशिक्षण दिया जाता रहा।

1954 में केन्द्रीय शिक्षा तथा व्यवसायिक ब्यूरो की स्थापना की गयी। इसका संचालन केन्द्रीय शिक्षा मंत्रालय द्वारा किया जाता था इसी तारतम्य में 1964 में गठित कोठारी कमीशन ने भी प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक निर्देशन की आवश्यकता पर बल दिया तथा निर्देशन से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण तथा उपयोगी सुझाव दिये जिनके अनुपालन से भारत में निर्देशन के अभिकरण पल्लवित तथा पुष्पित हुए।

1964 में केन्द्र सरकार ने राज्यों को निर्देशन सम्बन्धी सहायता देने के लिए एक विभाग की स्थापना कर दी। इससे पूर्व 1955 से 1957 के बीच उड़ीस, राजस्थान, असोम, आन्ध्र प्रदेश, केरल आदि राज्यों में भी निर्देशन ब्यूरो की स्थापना हो चुकी थी। 1957 में ही राष्ट्रीय स्तर पर रोजगार कार्यालय ने निर्देशन कार्य आरम्भ कर दिया था।

वर्तमान भारत में निर्देशन के अभिकरण Agencies of Guidance in Present India

जैसा कि हम पहले से ही जानते हैं कि निर्देशन की प्रक्रिया अनेक प्रकार से सम्पादित की जा सकती है। समस्त प्रकार के निर्देशन व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से दिये जा सकते हैं। भारत में निर्देशन की प्रक्रिया प्रशासनिक दृष्टि से मुख्यतः चार स्तरों पर सम्पादित की जाती है - राष्ट्रीय स्तर, राज्य स्तर, स्थानीय स्तर तथा निजी संस्थायें। निर्देशन की प्रक्रिया के स्तरों को यदि हम किसी उदाहरण के द्वारा समझना चाहे तो हम इसकी तुलना प्याज से कर सकते हैं। प्याज के छिलकों की तरह निर्देशन की प्रक्रिया के स्तर बहुत बारीक झिल्ली के माध्यम से एक दूसरे से अलग है यदि इन छिलकों को परस्पर एक रहने दिया जाता है तभी प्याज का अस्तित्व बना रह सकता है इन छिलकों के अलग हो जाने पर प्याज का कोई अस्तित्व नहीं रहता अतः हम कह सकते हैं निर्देशन के विभिन्न स्तर परस्पर अलग होते हुए प्याज की भाँति संयुक्त रहने की ही दशा में निर्देशन कहे जा सकते हैं।

4.5 भारत में निर्देशन अभिकरणों के विभिन्न स्तर

ऊपर के उदाहरण से हम यह बात भली-भाँति जान चुके हैं कि निर्देशन अभिकरण के विभिन्न स्तर अत्यन्त गुम्फित हैं। भारत में निर्देशन की प्रक्रिया अनेक स्तरों से होकर गुजरती है। इन प्रमुख स्तरों को हम निम्नांकित प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं-

1. राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।
2. राज्य स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।
3. मण्डल स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।
4. विश्वविद्यालय स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।
5. महाविद्यालय एवं विद्यालय स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।
6. निजी स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।
7. व्यावसायिक स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।
8. सामाजिक स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।
9. शैक्षिक स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।
10. मनोविज्ञान स्तर पर निर्देशन के अभिकरण।

यद्यपि यहाँ पर हम पाठ्यक्रम की आवश्यकताओं के अनुकूल केवल राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर निर्देशन के अभिकरणों की चर्चा करेंगे। तथापि निर्देशन के अन्य स्तरों पर अभिकरणों के बारे में पाठक अवश्य जान लें कि विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, विद्यालय आदि अपने स्तर पर निर्देशन के विभिन्न सरकारी, अर्धसरकारी अथवा गैर सरकारी स्तर के अभिकरणों से निर्देशन सेवायें प्राप्त करते रहते हैं। सक्षम एवं बड़ी संस्थायें स्वयं अपने लिए तथा दूसरी संस्थाओं के लिए भी अपने स्तर पर निर्देशन के अभिकरण स्थापित करती हैं। निर्देशन की ये सेवायें सशुल्क एवं निशुल्क दोनों ही प्रकार की हो सकती हैं।

राज्य स्तर के अनेक अभिकरण जिनके बारे में हम आगे के पृष्ठों में अध्ययन करेंगे अपनी शाखायें मण्डल, जिला एवं तहसील आदि स्तर पर खोलने के लिए भी स्वतन्त्र होते हैं, इसी प्रकार विभिन्न व्यावसायिक संगठन अपने कर्मचारियों की आवश्यकता पूर्ति के लिए अपने अभिकरण स्थापित करते हैं। कुछ व्यवसायिक संगठन आवश्यकतानुसार अन्य संगठनों को भी निर्देशन की सेवायें प्रदान करते हैं।

भारतवर्ष समाज कल्याण की भावना से ओत-प्रोत देश है इसमें अनेक सामाजिक संगठन आवश्यकतानुसार स्वेच्छा से निर्देशन सेवायें प्रदान करते रहते हैं। अनेक लोग निजी स्तर पर भी निर्देशन सेवायें देने का कार्य करते हैं।

आगे की पंक्तियों में राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर निर्देशन के अभिकरणों की चर्चा की गई है।

4.5.1 राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन के अभिकरण Agencies of Guidance at National Level

राष्ट्रीय स्तर पर निर्देशन के अभिकरणों को अध्ययन की सुविधा के लिए प्रमुख रूप से चार भागों में बाँटा जा सकता है -

i. सरकारी अभिकरण
ii. गैर सरकारी अभिकरण
iii. अन्य अभिकरण
iv. पत्र पत्रिकायें

सरकारी अभिकरण Government Agencies

केन्द्र सरकार के द्वारा संचालित निर्देशन के अभिकरणों में से कुछ प्रमुख अभिकरण निम्नवत् हैं -

i. **राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद (NCERT)-** मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अन्तर्गत आने वाली यह संस्था देश भर में शैक्षिक निर्देशन कार्य का समन्वय करने में प्रमुख भूमिका निभाती है। इसके साथ-साथ यह संस्था निर्देशन कार्य करने वाले लोगों को प्रशिक्षण देने का भी कार्य करती है; जिसमें प्रमुख रूप से मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण तथा निर्देशन विद्या का प्रशिक्षण होता है। NCERT के द्वारा निर्देशन से सम्बन्धित साहित्य का सृजन तथा विद्यालयों में इनका वितरण होता रहता है। यह संस्था निर्देशन कार्य के लिए अनुसंधान का कार्य प्रमुख रूप से करती रहती है।

   सन् 1954 में केन्द्रीय शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन ब्यूरो की स्थापना की गयी थी जो बाद में NCERT में मिल गया। वर्तमान में यह NCERT के मनोविज्ञान विभाग के साथ मिलकर शैक्षिक निर्देशन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करता है तथा यह ब्यूरो निर्देशन सेवायें प्रदान करने के लिए अनुसंधान का कार्य भी करता है।

ii. **पुर्नस्थापना एवं नियोजन निदेशालय Directorate General of Rehabilitation and Employment** -भारत विभाजन के समय पंजाब तथा बंगाल प्रान्त से विस्थापित लोगों को पुनः स्थापित करने के लिए केन्द्रीय श्रम मंत्रालय के अन्तर्गत इस विभाग की स्थापना हुई। अपने उक्त कार्य को भली-भाँति सम्पन्न कर लेने के पश्चात यह विभाग अब भारतवर्ष के रोजगार कार्यालय को संचालित करने का कार्य करता है। छब्म्त्ज् की ही तरह निर्देशन तथा नियोजन कार्य से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करना इसकी कार्यप्रणाली का ही अंग है निर्देशन क्षेत्र से सम्बन्धित अनुसंधान तथा प्रशिक्षण कार्यों में भी यह विभाग बढ़ चढ़ कर भागीदारी करता है।

   पुर्नस्थापना एवं नियोजन निदेशालय के अन्तर्गत कार्य करने वाला रोजगार कार्यालय 1957 से देश भर में व्यावसायिक निर्देशन के सम्बन्ध में अपनी सेवायें प्रदान कर रहा है। यह

विद्यालयों में जाकर विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित निर्देशन की सेवायें प्रदान करता है। इसके साथ-साथ यह निर्देशन प्रदाताओं को प्रशिक्षण भी प्रदान करता है। रोजगार कार्यालय द्वारा निर्देशन सेवाओं से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों का प्रकाशन किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त विभिन्न दृश्य श्रव्य सामग्री का उपयोग करके भी यह अपनी निर्देशन सेवाओं का विस्तार कर रहा है। यह देश भर में 500 से भी अधिक शाखाओं के साथ रोजगार से सम्बन्धित आंकड़ों का संग्रहण करके देश के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। वर्तमान में उत्तर-प्रदेश तथा कुछ अन्य राज्यों में राज्य सरकारों द्वारा रोजगार कार्यालय के माध्यम से बेरोजगारी भत्ता भी वितरित किया जा रहा है। यह विभाग रोजगार कार्यालय के साथ मिलकर समय-समय पर विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए राष्ट्र के युवाओं को निःशुल्क कोचिंग भी प्रदान करता है। किन्तु, उसकी यह सेवा अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति एवं विकलांग वर्ग के युवाओं तक ही सीमित है। रोजगार कार्यालय निर्देशन कार्य के लिए केवल सैद्धान्तिक पक्ष पर ही बल नहीं देता अपितु यह निर्देशन के क्रियात्मक पहलू पर भी उतना ही ध्यान देता है। रोजगार कार्यालय ने शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने के लिए अनेक मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण भी प्रदान किये हैं।

iii. **रोजगार सेवाओं के लिए केन्द्रीय अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान Central Institute for Research and Training in Employment Services (CIRTES)-** केन्द्रीय श्रम मंत्रालय के अधीन यह संस्थान विभिन्न व्यवसायों पर अनुसंधान का कार्य करता है। विभिन्न व्यवसायों के लिए इस संस्थान के द्वारा कैरियर से सम्बन्धित साहित्य प्रकाशित किया जाता है। रोजगार अधिकारियों को प्रशिक्षण देने का कार्य भी इसके द्वारा किया जाता है।

गैर सरकारी अभिकरण Non - Government Agencies

i. **अखिल भारतीय शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संघ All India Educational and Vocational Guidance Association -** जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है यह संघ अखिल भारतीय स्तर पर शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के कार्य को आगे बढ़ाता है। इसके कार्यों में शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन तथा अनुसंधान कार्य सम्मिलित है।

अन्य अभिकरण Other Agencies

भारतवर्ष विविधताओं का देश है। यहां अनेक संस्कृतियाँ निवास करती हैं। भारतीय संस्कृति मूल रूप से सेवा की संस्कृति है। इसलिए यहाँ सेवा के कार्य को आवश्यक वातावरण सहजता से उपलब्ध हो जाता है। भारतवर्ष में राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अनेक गैर सरकारी संगठन कार्यरत हैं, जो अपनी मूल संस्था के सिद्धान्तों पर चलते हुए विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवाओं

को सम्पादित करते रहते हैं। उनकी सेवाओं के इसी क्रम में शैक्षिक व्यावसायिक निर्देशन आदि की कड़ी भी सम्मिलित है। ये संगठन समय-समय पर आवश्यतानुसार कभी स्वतन्त्र रूप से और कभी सरकारी अभिकरणों के साथ मिलकर निर्देशन कार्य को सम्पादित करते हैं। इनमें प्रमुख रूप से रोटरी क्लब, दिव्य जीवन संघ, शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास आदि का नाम लिया जा सकता है-

पत्र-पत्रिकायें Magazines & Newspapers

i. **राष्ट्रीय समाचार पत्र National Newspaper** - राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित समाचार पत्र निर्देशन कार्य में बहुत बड़ी भूमिका का निर्वहन करते हैं। इसलिए उन्हें निर्देशन का अभिकरण कहा जा सकता है। भारत में मुख्य रूप से यह कार्य हिन्दुस्तान टाइम्स, टाइम्स ऑफ इंडिया, हिन्दुस्तान, दैनिक जागरण, अमर उजाला, नव भारत, बिजनेस स्टैन्ड, इकॉनामिक्स टाइम्स, द हिन्दू, जनसत्ता आदि समाचार पत्र करते हैं। यह समाचार पत्र समय-समय पर शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों पर लेख प्रकाशित करते हैं। अपने पाठकों को विज्ञापन एवं अन्य माध्यमों से शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों की सूचना देते हैं। समय-समय पर शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों पर प्रकाशित समाचारों के माध्यम यह समाचार पत्र निर्देशन के क्षेत्र में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

ii. राष्ट्रीय पत्रिकायें National Magzine -भारतवर्ष में कुछ प्रकाशन समूह इस प्रकार के हैं जो भारतीय युवाओं तथा अन्य नागरिकों को शैक्षिक, व्यवसायिक एवं मनोवैज्ञानिक निर्देशन प्रदान करने के लिए पत्रिकाओं का प्रकाशन करते हैं। ये पत्रिकायें भारतीय युवाओं को रोजगार के अवसरों की सूचना देती हैं। विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कैसे करें इस बारे में बताती हैं। इसके साथ-साथ ये पत्रिकायें अपने पाठकों की मानसिक क्षमता बढ़ाने के लिए विभिन्न प्रकार की विधियाँ भी बताती हैं।

समसामयिक विषयों पर लेखों का प्रकाशन करना, अपने पाठकों को सामान्य ज्ञान एवं सामान्य सूचनायें प्रदान करना, प्रतियोगी परीक्षायें देने के लिए अपने पाठकों को प्रशिक्षित करना तथा विशेष प्रकार के व्यवसायों के लिए मार्गदर्शन प्रदान करना इन पत्रिकाओं का मुख्य कार्य है। राष्ट्रीय स्तर पर शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन प्रदान करने वाली कुछ पत्रिकाओं के नाम इस प्रकार हैं- प्रतियोगिता दर्पण, सक्सेस मिरर, कम्पटीशन सक्सेस, समसायिकी आदि। राष्ट्र के नागरिकों को मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित निर्देशन प्रदान करने के लिए निरोगधाम, निरोगी दुनिया आदि अनेक पत्रिकायें अलग से प्रकाशित होती हैं। इसी प्रकार योग संदेश, दिव्य जीवन, रस वृन्दावन जैसी पत्रिकायें सामाजिक तथा सांस्कृतिक जागरूकता फैलाने के साथ-साथ अपने पाठकों को योग विज्ञान से सम्बन्धित निर्देशन प्रदान करती है।

iii. रोजगार समाचार Employment News-भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी में रोजगार समाचार तथा अंग्रेजी में Employment News नामक समाचार पत्र प्रकाशित किया जाता है जिसमें विभिन्न प्रकार के शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों की सूचना मुख्य रूप से दी जाती है इस समाचार पत्र में सम्पादकीय के रूप में समसामयिक विषय पर एक महत्वपूर्ण लेख नियमित रूप से रहता है। इतना ही नहीं यह समाचार पत्र विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं से सम्बन्धित प्रश्न भी प्रकाशित करता है।

4.5.2 राज्य स्तर पर निर्देशन के अभिकरण Agencies of Guidance at State Level

राष्ट्रीय स्तर की ही भाँति राज्य स्तर पर भी निर्देशन के अभिकरणों को चार भागों में विभाजित किया जा सकता है -

i. सरकारी
ii. गैर सरकारी
iii. अन्य अभिकरण
iv. पत्र-पत्रिकायें

वास्तव में राष्ट्रीय स्तर के अभिरणों का विस्तार ही राज्य स्तर तक जाता है इस बात को हम आगे की पंक्तियों का अध्ययन करके भली-भाँति समझ सकते हैं।

राज्य स्तर पर निर्देशन के सरकारी अभिकरण Government Agencies of Guidance at State Level

i. **राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद SCERT**- NCERT की ही तरह यह संस्था भी शैक्षिक निर्देशन कार्य का समन्वय करती है। अन्तर केवल इतना है कि यह संस्था अपने समस्त कार्य केवल राज्य स्तर पर सम्पादित करती है। राज्य स्तर पर निर्देशन कार्य करने वाले लोगों को प्रशिक्षण देना जिसमें निर्देशन कला, मनोवैज्ञानिक प्रशिक्षण, निर्देशन से सम्बन्धित सूचनाओं को संकलित एवं प्रसारित करने के उपाय आदि सम्मिलित हैं इस संस्था के प्रमुख कार्य हैं। इसके अतिरिक्त यह संस्था निर्देशन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन भी करती है। विद्यालयों में निर्देशन सेवा का विस्तार करती है। कैरियर मास्टर को प्रशिक्षण देती है। व्यावसायिक सूचनाओं को एकत्र एवं प्रसारित करती है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि यह संस्था राज्य स्तर पर निर्देशन से सम्बन्धित लगभग वह समस्त कार्य सम्पादित करती है जिन कार्यों को राष्ट्रीय स्तर पर NCERT सम्पादित करती है। अलग-अलग राज्यों में यह संस्था अलग-अलग नामों से जानी जाती है अथवा हम यह भी कह सकते हैं कि भारत के विभिन्न राज्यों में निर्देशन कार्य करने वाली संस्थाएं न तो समान नाम से जानी जाती हैं और न ही उनकी सम्बद्धता आदि के नियम समान हैं। किन्तु, यह बात हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि राज्य स्तर पर भारतवर्ष के प्रत्येक राज्य में शैक्षिक

एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने, शिक्षा एवं व्यवसाय से सम्बन्धित सूचनाओं का संकलन एवं प्रसारण करने, शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन करने तथा निर्देशन कार्य करने वाले कार्मिकों को प्रशिक्षण देने के लिए किसी न किसी संस्था का अस्तित्व अवश्य है और यह संस्था सीधे तौर पर राज्य सरकार से शक्ति और सम्बद्धता प्राप्त है और उसके लिए उत्तरदायी भी है। इस संस्था को किसी राज्य में SCERT राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, किसी राज्य में राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्राधिकरण, किसी राज्य में राज्य निर्देशन संस्थान आदि नामों से जाना जाता है।

ii. **राज्य सेवायोजन निदेशालय State Directorate of Employment** -प्रत्येक राज्य का अपना एक सेवायोजन निदेशालय होता है जहाँ पर रोजगार से सम्बन्धित न केवल सूचनायें एकत्र की जाती हैं अपितु यह निदेशालय राज्य के लोगों को रोजगार के अवसर भी उपलब्ध कराता है। यह निदेशालय रोजगार कार्यालयों के माध्यम से व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करता है। राज्य के नागरिकों को व्यावसायिक अवसरों की सूचना देता है विभिन्न नौकरियों एवं व्यवसायों के लिए वर्ग विशेष के अभ्यर्थियों को निःशुल्क प्रशिक्षण प्रदान करता है। राज्य में व्यावसायिक निर्देशन कार्यक्रम का विकास करता है, भिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित सूचनाओं के लिए साहित्य का प्रकाशन एवं वितरण करता है तथा राज्य में व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने वाले व्यक्तियों को समय-समय पर उनकी आवश्यकता के अनुसार प्रशिक्षण प्रदान करता है तथा उन्हें साहित्य भी उपलब्ध कराता है। यद्यपि भारतवर्ष में निर्देशन के अनेक अभिकरण अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग प्रकार से कार्यरत हैं। समय तथा स्थान के अभाव के कारण यहाँ पर सबकी चर्चा करना सम्भव नहीं है इसलिय प्रमुख रूप से कार्य करने वाली दो प्रमुख अभिकरणों की चर्चा यहाँ हम कर चुके हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ राज्यों में विश्वस्तरीय शिक्षा एवं व्यवसाय प्राप्त कराने के लिए सरकारी अभिकरण निर्देशन का कार्य करते हैं। ये अभिकरण विदेशों में विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश, विदेशी पाठ्यक्रमों की सूचना, विदेशों में व्यवसाय के अवसर आदि की जानकारी प्रदान करने के लिए निर्देशन का कार्य करते हैं।

इसी प्रकार कुछ राज्यों में विशिष्ट प्रकार की सेवाओं को प्रदान करने के लिए, निर्देशन केन्द्र कुछ राज्यों में मनोवैज्ञानिक निर्देशन प्रदान करने के लिए मनोविज्ञान केन्द्र तथा कुछ राज्यों में कृषि हेतु निर्देशन प्रदान करने के लिए कृषि निर्देशन की व्यवस्था की गयी है।

राज्य स्तर पर निर्देशन के गैर सरकारी अभिकरण Non Government Agencies of Guidance at State Level

i. **राज्य शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन संघ State Bureau of Educational and Vocational Guidance -** अखिल भारतीय शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन संघ की तर्ज पर राज्यों में भी शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन का कार्य किया जाता है। यह निजी संस्था NCERT, SCERT आदि की ही तरह शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन प्रदान करने के साथ-साथ निर्देशन से सम्बन्धित साहित्य का प्रकाशन भी करती है।

अन्य अभिकरण Other Agencies

रोटरी क्लब, शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास, दिव्य जीवन संघ आदि अनेक अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय और राज्य स्तरीय गैर सरकारी संगठन अलग-अलग राज्यों में अपने स्तर पर विभिन्न प्रकार के निर्देशन का कार्य अवसरानुकूल स्वतन्त्र रूप से, परस्पर मिलकर अथवा सरकारी अभिकरणों के साथ मिलकर सम्पादित करती हैं।

पत्र-पत्रिकायें

प्रत्येक राज्य में राज्य सरकार द्वारा तथा निजी प्रकाशकों द्वारा नियतकालीन तथा अनियतकालीन, पत्र-पत्रिकायें प्रकाशित की जाती हैं जिनमें शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन से सम्बन्धित अनेक सूचनायें, रोजगार के अवसरों से सम्बन्धित निर्देशनात्मक सूचनायें तथा विभिन्न पाठ्यक्रमों में प्रवेश से सम्बन्धित निर्देशनात्मक सूचनायें सम्मिलित होती हैं। राज्य स्तर पर प्रकाशित होने वाले विभिन्न समाचार पत्र तथा टीवी चैनल भी निर्देशन से सम्बन्धित सामग्री अपने नियत अंकों में तथा समय-समय पर अपने विशेष अंक प्रकाशित एवं प्रसारित करके निर्देशन प्रदान करते रहते हैं।

4.5.3 स्थानीय स्तर पर निर्देशन के अभिकरण Agencies of Guidance At Local Level

पूर्वोक्त वर्णित विभिन्न सरकारी एवं गैर सरकारी अभिकरण मण्डल एवं जिला स्तर पर भी निर्देशन से सम्बन्धित अपनी गतिविधियों को संचालित करते हैं अनेक स्थानीय संगठन निर्देशन के इस पुनीत कार्य में अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं।

उच्च शिक्षा में विश्वविद्यालय एवं महाविद्यालयों द्वारा तथा माध्यमिक शिक्षा में जिला विद्यालय निरीक्षक एवं विद्यालयों द्वारा समय-समय पर औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से निर्देशन का कार्य किया जाता है।

साधन सम्पन्न विश्वविद्यालय, महाविद्यालय एवं विद्यालय अपने स्तर पर निर्देशन सेवायें प्रदान करने के लिए निर्देशन अध्यापक की नियुक्ति, निर्देशन सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन तथा साक्षात्कार आदि के द्वारा निर्देशन सेवायें प्रदान करते हैं। समय-समय पर सरकारी गैर सरकारी अभिकरणों की मदद करते रहते हैं।

उपसंहार

भारत में विभिन्न स्तरों पर निर्देशन के विभिन्न अभिकरणों का अध्ययन करने के उपरान्त हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भारतवर्ष में हमारी शैक्षिक, व्यावसायिक, मनोवैज्ञानिक एवं निजी आवश्यकताओं की पूर्ती करने के लिए निर्देशन के अनेक अभिकरण उपलब्ध हैं। ये समस्त अभिकरण पूरी तत्परता के साथ मानव विकास में सहायता करने को उद्यत है। किन्तु यहाँ हम यह भी जान लें कि जिस प्रकार से हमारे समक्ष बहुत मनोरम दृश्य उपस्थित होने पर भी नेत्र बन्द कर लेने से हम उसे देखने में सक्षम नहीं होते और जब तक हम नेत्र नहीं खोलते तब तक वह मनोरम दृश्य हमारे लिए कोई अस्तित्व नहीं रखता उसी प्रकार राष्ट्रीय स्तर से स्थानीय स्तर पर सरकारी, गैर सरकारी तथा अन्य अनेक अभिकरणों के सक्रिय होते हुए भी यदि हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु इन अभिकरणों के पास नहीं जाते तब इन अभिकरणों का हमारे लिए कोई अस्तित्व नहीं।
आइये निर्देशन के इन अभिकरणों का संज्ञान हो जाने के पश्चात हम स्वयं भी इन अभिकरणों का प्रयोग करे तथा अपने आस-पास उपस्थित प्रत्येक उस व्यक्ति की भी सहायता करें जिसे निर्देशन की आवश्यकता है। ऐसा करके हम मानव संसाधन के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करेंगे।

4.7 सारांश

निर्देशन जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है यह प्रक्रिया नितान्त निजी स्तर से लेकर संगठित रूप से सामूहिक स्तर तक सम्पादित की जा सकती है। शेष विश्व की तरह भारतवर्ष में भी निर्देशन के अनेक अभिकरण कार्यरत हैं। निर्देशन के ये अभिकरण भारतीय नागरिकों को राष्ट्रीय स्तर, राज्य स्तर तथा स्थानीय स्तर पर शैक्षिक, व्यावसायिक, मनोवैज्ञानिक एवं निजी निर्देशन प्रदान करने का कार्य करते हैं। निर्देशन के इन अभिकरणों को हम पूर्वोक्त सभी स्तरों पर सरकारी, गैर सरकारी, अन्य अभिकरण तथा पत्र-पत्रिकाओं के रूप में विभाजित कर सकते हैं। निर्देशन के उपरोक्त समस्त अभिकरण उपरोक्त प्रकार का निर्देशन प्रदान करने के साथ-साथ निर्देशन सम्बन्धी साहित्य का प्रकाशन, आंकड़ो तथा सूचनाओं का संकलन तथा निर्देशन कार्य के लिए प्रशिक्षण प्रदान करने का कार्य भी करते हैं। निर्देशन के उपरोक्त अभिकरण अकेले, अन्य अभिकरणों के साथ मिलकर, अन्य संस्थाओं के साथ मिलकर निर्देशन का कार्य करते हैं। तकनीकी एवं सामाजिक जटिलताओं के इस युग में पग-पग पर निर्देशन की आवश्यकता होती है अतः हमारे लिए निर्देशन के इन अभिकरणों के बारे में जानना तथा उनका उपयोग करना बहुत जरूरी है।

4.8 संदर्भ ग्रंथ

1. Agrawal Rashmi, (Education Vocational Guidance and counseling) Shipra Publications, Delhi- 11092 (2006)
2. Suri S.P., T.S. Sodhi, (Guidance and counseling), Bawa Publication Patiala (1997)

3. Sharma R.A., (Career information in career guidance) Surya Publication Meerut (2004)
4. Sharma R.A (Guidance and counseling) Vinay Rakheia c/o R. Lall book Depot Meerut (2010)
5. सिंह रामपाल राधावल्लभ उपाध्याय, (शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन) विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
6. जायसवाल सीताराम (शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श), अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा (2009)

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. प्राचीन भारत में औपचारिक रूप से निर्देशन के अभिकरण की आवश्यकता क्यों नहीं थी ?
2. भारत में व्यावसायिक निर्देशन का पहला अभिकरण कब और कहाँ स्थापित हुआ ?
3. आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में किस ब्यूरो की स्थापना हुई तथा इसके क्या कार्य थे ?
4. माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन कब हुआ?
5. केन्द्रीय शिक्षा तथा व्यावसायिक ब्यूरो की स्थापना कब हुई।
6. कोठारी कमीशन का गठन कब हुआ?
7. निम्नांकित के पूरे नाम बताइये - NCERT, SCERT
8. राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर निर्देशन के कौन-कौन से अभिकरण हैं?
9. भारतीय परिवेश में निर्देशन के अभिकरणों की उपयोगिता एवं कार्यप्रणाली पर एक लघु निबन्ध लिखिए।

इकाई-5 विशिष्ट बालकों की समस्याएँ एवं आवश्यकताएं, विशेष आवश्यकताओं वाले बालकों की सहायता में शिक्षक की भूमिका, प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालकों का निर्देशन

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 विशिष्ट बालकों की समस्याऐं एवं आवश्यकताएं
5.4 विशेष आवश्यकता वाले बालकों की सहायता में शिक्षक की भूमिका
5.5 प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालकों का मार्गदर्शन
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ ग्रन्थ
5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

निर्देशन एक प्रकार की मार्गदर्शन प्रक्रिया है। निर्देशन की सहायता से विद्यार्थियों को अपने शैक्षिक तथा व्यावसायिक प्रक्रिया में सहायता प्राप्त होती है। अतः हम कह सकते हैं कि निर्देशन एक महत्वपूर्ण तथा आवश्यकता की दृष्टि से विद्यार्थियों के लिए अति उपयोगी है। निर्देशन की सहायता से अध्यापक भी अपने विद्यार्थियों की मदद प्रत्येक क्षेत्र में कर सकते हैं। व्यक्तिक विभिन्नता की दृष्टि से देखा जाए तो प्रत्येक बालक की कुछ विशेषता होती है। प्रत्येक बालक का अपनी अभिरूचि, अभिवृत्ति होती है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रत्येक बालक में कुछ न कुछ विशिष्टता होती है। हम देखते हैं कि सभी बालक अलग-अलग अधिगम योग्यताओं वाले होते हैं। इन बालकों में कुछ तेजी से सीखते हैं तथा कुछ धीरे-धीरे सीखते हैं। कुछ बालकों को सीखने में समस्याएं आती है तथा बच्चे

आसानी से सीख लेते हैं। अध्ययन-अध्यापन में प्रत्येक अध्यापक को प्रतिदिन इन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। इन समस्याओं से निपटने के लिए एक अध्यापक को निर्देशन प्रक्रिया का भली प्रकार ज्ञान होना आवश्यक होता है। अध्यापक के लिए प्रत्येक बालक एक जैसा है तथा उन्हें सीखने और कार्य करने में सहायता की आवश्यकता होती है। निर्देशन विषय का ज्ञान ही एक शिक्षक को इन विशिष्ट बालकों की समस्याओं एवं आवश्यकताओं से परिचित कराता है। इस इकाई में विशिष्ट बालकों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं और अध्यापक के नाते इन समस्याओं वाले विद्यार्थियों का निर्देशन कैसे कर सकते हैं, के बारे में बताने का प्रयास किया गया है।

5.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. विशेष समस्याओं वाले बच्चों की समस्यायों से अवगत हो पायेंगे।
2. विशेष समस्याओं वाले बच्चों हेतु निर्देशन की भूमिका को बता पायेंगे।
3. विशिष्ट बालकों की सहायता हेतु अध्यापक की भूमिका को स्पष्ट कर पायेंगे ।
4. प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालकों का मार्गदशन किस प्रकार किया जाए इस पर चर्चा कर सकेंगे।
5. सृजनात्मक एवं प्रतिभाशाली बालकों की विशेषता को सूचीबद्ध कर सकेंगे।
6. प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालकों में अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे।
7. विशेष बालकों के लिए किस प्रकार की शिक्षा एवं व्यावसायिक चुनौतियाँ होती है इसका वर्णन कर सकेंगे।

5.3 विशिष्ट बालकों की समस्याऐं एवं आवश्यकताएं

विशिष्ट बालक से आशय उत्तम या अत्याधिक प्रतिभा सम्पन्न छात्र से नहीं है। विशिष्ट बालक सामान्य से उच्च एवं निम्न दोनों ही श्रेणियों के हो सकते हैं। विशिष्ट बालक मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक गुणों में सामान्य बालकों से भिन्न होता है। ऐसे बालकों के लिए कुछ अतिरिक्त अनुदेशन तथा मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है तथा जिसकी सहायता से ऐसी दशा में उनका सामर्थ्य का सामान्य बालकों की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित है -
विशिष्ट बालकों के लक्षण, गुण, स्वरूप सामान्य बालकों से भिन्न होते हैं। एक विशिष्ट बालक वह है जो सामान्य शिक्षा कक्ष तथा सामान्य शिक्षा कार्यक्रमों से पूर्णतया लाभान्वित नहीं हो सकता क्योंकि उसके विकास की सामर्थ्य अधिक होती है।

एक विशिष्ट बालक शारीरिक मानसिक, सामाजिक, भावनात्मक तथा शैक्षणिक उपलब्धियों जैसी सभी धाराओं में सम्मिलित होता है।

विशिष्ट बालक की अधिकतम सामर्थ्य के विकास के लिये उसे स्कूल की कार्यप्रणाली तथा उसके साथ किये जाने वाले व्यवहार में परिवर्तन की आवश्यकता होती है।

एक विशिष्ट बालक शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक सामाजिक आधार पर सामान्य बालक से बिल्कुल हट के होता है। सामान्य बालक की अपेक्षा उसका विकास तीव्र गति से होता है।

प्रत्येक विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने के लिए अनेक बालक आते हैं। इनके अलावा कुछ ऐसे बालक भी आते हैं, जिनकी अपनी कुछ शारीरिक और मानसिक विशेषताएं होती हैं। इनमें कुछ प्रतिभाशाली कुछ मन्दबुद्धि, कुछ पिछड़े हुए और कुछ शारीरिक दोषों वाले होते हैं। इनको विशिष्ट बालकों की संज्ञा दी जाती है। जो निम्न प्रकार के हैं -
(1) प्रतिभाशाली बालक (2) सृजनात्मक बालक (3) पिछड़े बालक (4) मन्द बुद्धि बालक
(5) विकलांग बालक (6) जटिल अथवा समस्यात्मक (7) श्रवण बाधित बालक
(8) अधिगम असमर्थी बालक (9) अस्थि बाधित बालक (10) बहुविकारों से पीड़ित बालक
(11) दृष्टि बाधिक बालक (12) समाज में असुविधात्मक बालक (13) विशिष्ट स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायुक्त बालक (14) वाणी बाधित बालक (15) संवेगात्मक रूप से विक्षिप्त बालक
(16) अपराधी बालक

विशिष्ट बालको की समस्याऐं

अधिकांश बच्चों को कभी-न-कभी व्यवहारगत समस्याएँ होती है। व्यवहारगत समस्याएँ बालक की अंतर्दशाओं या प्रायः ध्यान में न आने वाले बाह्य दबाओं या दूसरों द्वारा नहीं समझे जाने वाली बातों से उत्पन्न होती है। व्यवहारगत समस्याएँ पलायन से लेकर उत्तेजित होने विरोध शत्रुता प्रकट करने एवं अत्यन्त आक्रामक रूख अपना लेने के रूप में प्रकट होती है। कक्षा में विद्यार्थी व्यवहारगत समस्याओं का सामना अपने ढंग से करने का प्रयास करते हैं। जो कभी-कभी दूसरों के लिए दुःखदायी हो जाता है।

जिस प्रकार मानसिक रूप में बालक धीरे-धीरे सीखते हैं। उसी प्रकार अन्य विशिष्ट बालक व्यवहारगत समस्याओं के कारण अपने विकास और अधिगम में गंभीर बाधा महसूस कर सकते हैं। अध्यापकों व माता पिता को अपने बच्चों की इस प्रकार की समस्याओं से निपटने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। ऐसी समस्याएं प्रायः अधिगम प्रक्रिया में बाधा डालती है। अतः एक अध्यापक के लिए अपने विद्यार्थियों की प्रत्यक्ष दिखाई पड़ने वाली व्यवहारगत समस्याओं के कारणों को समझना जरूरी है, अन्यथा वह ऐसे विद्यार्थियों के साथ ऐसे तरीके से व्यवहार कर सकता है जिसके परिणाम गंभीर हो सकते हैं। व्यवहारगत समस्याओं से ग्रस्त विद्यार्थी अपने अध्यापकों के लिए प्रायः अत्यधिक कुंठित करने वाली समस्याएं या लाभदायक चुनौतियां खड़ी कर देते हैं। इस प्रकार की विद्यार्थियों की शारीरिक आवश्यकताओं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं एवं शैक्षिक

आवश्यकताओं की पूर्ति भली प्रकार समय पर होना चाहिए। विशिष्ट बालकों की समस्याएँ दो अवस्थाओं में होती है।

- विशिष्ट बच्चों की समस्याएं
- विशिष्ट किशोरों की समस्याएं

विशिष्ट बच्चों की समस्याएं

बच्चों द्वारा अनुभव की जाने वाली कुछ समस्याएं निम्न होती हैं जैसे अत्यधिक शर्मीलापन, डरावनापन, आक्रामक व्यवहार, ध्यान आकर्षित करना, अति फुर्तीलापन, अत्यधिक निर्भरता, दिवास्वप्न देखना, पड़े रहना, धोखा देना और चोरी करना तथा शारीरिक विकलांग रूप से बालक के सामाजिक समायोजन में उत्पन्न कठिनाईयाँ उपहास के डर से सामान्य बच्चों के साथ खेल-कूद में सम्मिलित न होना, एकाकीपन आदि है। इन समस्याओं में से कई समस्याएं अध्यापक, माता-पिता द्वारा 'पुरस्कार' का प्रयोग करके, जैसे - प्रशंसा, खिलाना तथा खिलौन का प्रयोग करके हल की जा सकती है। माता-पिता और अध्यापकों को इस बात के लिए कि वे ऐसी समस्याओं वाले बालकों को इन पुरस्कारों को प्राप्त करने के लिए उपयुक्त व्यवहार में लगाने हेतु प्रोत्साहित करें प्रशिक्षित किया जा सकता है तथा विकलांग बच्चों के समस्याओं को जन्म देने वाली सामाजिक स्थितियों को परिवर्तित करना तथा लोगों को विकलांग बच्चों के प्रति अपने व्यवहार में परिमार्जन तथा साथ ही साथ विचारों में परिवर्तन हेतु समझ पैदा करनी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य की कुछ मानवीय आवश्यकताएँ होती है। जो इस प्रकार है-

i. शारीरिक आवश्यकताएँ
ii. सुरक्षात्मक आवश्यकताएँ
iii. प्यार और अपनत्व
iv. आत्म सम्मान की आकांक्षा
v. आत्मसिद्धी

अतः इस प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होने पर विशिष्ट बालकों के समायोजन में किसी प्रकार की समस्या उत्पन्न नहीं होगी।

विशिष्ट किशोरों की समस्याएँ

किशोरावस्था की मुख्य पहचान है, प्रायः स्वतंत्रता के लिए भरपूर प्रयास करना और वयस्क सत्ता से छुटकारा पाने हेतु बगावत करना। माता-पिता, अभिभावकों तथा विद्यालयीन अधिकारियों से खटपट, नशीले पदार्थों का सेवन, कर्तव्य पलायन, चोरी और लैंगिक दुराचार किशोरों की सामान्य

समस्याएँ है। ऐसे अनिच्छुक किशोर अपनी समस्याओं के लिए दूसरों को दोष दे सकते हैं और उनमें अपने अपने व्यवहार को बदलने में अभिप्रेरणा की कमी पाई जाती है।

विशिष्ट बालकों की आवश्यकताएँ

सामान्यतः देखा जाये तो विद्यार्थियों को ऐसी कई शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक आवश्यकताएँ है जो उनकी वृद्धि एवं विकास के लिए आवश्यक है। ये आवश्यकताएँ निम्नलिखित है-

शारीरिक आवश्यकता

- उचित भोजन व कपड़े
- दर्द व बीमारी से बचाव
- खेलने के लिए समय

मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं

- व्यक्ति के रूप में स्वीकरण
- संवेगात्मक संतुष्टि
- सतत् पुनः विश्वास
- स्नेह
- भावात्मक अनुक्रियाओं को नियंत्रित करने में सहायता
- दूसरे व्यक्तियों के साथ कैसा व्यवहार किया जाए इसे सीखने के लिये सहायता प्रदान करना।

शैक्षिक आवश्यकताएं

- ऐसी शिक्षा जो डर पर आधारित न हो
- अध्ययन में सहायता
- विद्यालय में समझपूर्ण और गरमजोशी भरा वातावरण
- उपलब्धि की भावना
- जीवन की चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए शिक्षा
- कुछ न कुछ नया सीखने के लिए प्रोत्साहन ये सभी आवश्यकताएं परस्पर संबंधित है। ये सभी आवश्यकताएं एक-दूसरी को प्रभावित करती है और बढ़ रहे बालक पर अपनी छाप छोड़ती है।

- पिछड़े हुए एवं प्रतिभाशाली बालकों के उत्थान हेतु विशेष सुविधाओं तथा साधनों की आवश्यकता है।

  प्रतिभाशाली बालकों को सामाजिक तथा वैयक्तिक आवश्यकताओं को ग्रहण करने के लिये अतिरिक्त सुविधाओं तथा साधनों की आवश्यकता होती है। अतः ऐसी सुविधायें प्रतिभाशाली बालकों को उनकी कार्य करने की क्षमता से अवगत कराती है, तथा शारीरिक रूप से बाधित बालकों में उनके दोषों को कम करने का प्रयास करती है।

  विद्यालय में विशिष्ट कक्षायें बाधित बालकों के लिये आवश्यक है क्यों कि उनकी शिक्षा के लिये विशिष्ट विधियों तथा प्रविधियों की आवश्यकता होती है।

  सामान्यतः विलक्षण बालक अन्य सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक संवदेन शील होते है। उनकी सोचने की क्षमता अधिक तथा तीव्र होती है। वे कार्य के प्रति सावधान होते हैं, इसलिये उनके शिक्षण में विशेष विधियों व प्रविधियों की आवश्यकता होती है।

  प्रतिभाशाली बालकों का बुद्धि स्तर सामान्य बालकों की अपेक्षा उँचा होता है। इसलिये प्रतिभाशाली बालकों की सामान्य बालकों के साथ समायोजित करने में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

  विशिष्ट बालकों का महत्व सामान्य कक्षा मे आने वाली कठिनाईयों का समाधान खोजने द्वारा समझा जा सकता है। सामान्य कक्षा में अपंग तथा सामान्य अन्य विभिन्न श्रेणी के बालक होते है। वे शारीरिक रूप से बाधित और साधारण या प्रतिभाशाली बालकों के लिये अध्यापकों को ऐसी विधियां अपनानी पड़ती हैं जिससे उपरोक्त विभिन्न बालकों को शिक्षा देते समय कक्षा में अध्यापक को कुछ परेशानियों का सामना न करना पड़े। क्योंकि विद्यार्थियों को शिक्षक द्वारा दिया जाने वाला अनुदेशन समझने में समस्या आती है। कुछ विद्यार्थी अनुदेशन की सार्थकता के माप को कम समझते हैं ऐसी स्थिति में विशिष्ट कक्षाओं की आवश्यकता को गम्भीरता से समझा जाता है।

प्रयोगात्मक आँकड़े प्रकट करते है कि सामान्य शिक्षण संस्थाओं में प्रतिभाशाली बालकों के साथ सामाजिक कुप्रबन्ध उग्र रूप् में पाया जाता है ऐसी परिस्थितियें में उनका व्यक्तिगत व्यवहार स्वीकार करने योग्य नहीं होता है क्योंकि वे स्वयं को उद्धण्डता के कार्यो में शामिल कर लेते है।

लगभग 5 प्रतिशत शारीरिक रूप से बाधित बालक विशिष्ट शिक्षा केन्द्रों में शिक्षा ग्रहण करते है। तथा उन्हें विभिन्न कार्य क्षेत्रो में शिक्षा दी जाती है। लेकिन अधिकांश ऐसी शिक्षण संस्थायें महानगरों य नगरों में स्थिति है। ऐसी शिक्षण संस्थाओं में ग्रामीण क्षेत्र के बालक शिक्षा ग्रहण करने नहीं जा पाते है। अतः इन क्षेत्रों में शिक्षा केन्द्रों के अति आवश्यकता है। इस प्रकार आप जान गए होंगे कि विशिष्ट बालकों की क्या-2 समस्याएं एवं क्या-क्या आवश्यकताएं होती है। साथ ही साथ आप यह भी समझ गए होंगे कि इन बालकों की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को क्यों और किस प्रकार ध्यान में रखना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. विशिष्ट बालक कितने प्रकार के होते हैं?
2. सृजनात्मक बालक किसे कहते हैं?
3. विशिष्ट बालक की कोई दो समस्याऐ बताइए?

5.4 विशेष आवश्यकता बाले बालकों की सहायता में शिक्षक की भूमिका

विशिष्ट शिक्षा तथा सामान्य शिक्षा के उद्देश्य समान होते है-जैसे बालकों को उपयुक्त शिक्षा द्वारा मानवीय संसाधनों का उत्थान, देश का विकास, समाज का पुर्नगठन नागरिक विकास, व्यवसायिक कार्यकुशलता आदि प्रदान करना इन उद्देश्यों के अतिरिक्त विशेष शिक्षक की और महत्वपूर्ण जिम्मेदारियां होती है। जैसे-

- शारीरिक दोष युक्त बालकों की विशेष आवश्यकताओं का पूर्ण पहचान तथा निर्धारण करना।
- शारीरिक दोष की दशा में उससे पहले बालक कितनी गम्भीर स्थिति को प्राप्त हो उनके राकथाम के लिये पहले से ही उपाय करना। बालकों के सीखने की समस्याओं को ध्यान में रखते हुए कार्य करने की नवीन विधियों द्वारा बालकों को शिक्षा देना।
- शारीरिक रूप से बाधित बालकों की शिक्षण समस्याओं की जानकारी देना तथा सुधार हेतु सामूहिक संगठन तैयार करना।
- शिक्षा की राष्ट्रीय नीति (1986-92) में स्वयं एवं जीवन यापन के आव्यूहों का क्रम बद्धता से निर्धारण करना।
- शारीरिक बाधित बालकों के माता-पिताओं को निपुणता तथा कार्यकुशलताओं के बारे में समझाना तथा बालकों की उत्पन्न कमियों के बारे में सुरक्षा तथा रोकथाम के उपाय करना।
- शारीरिक रूप से बाधित बालकों का पुर्नवास कराना।
- विशिष्ट बालकों के शैक्षिक चयन में अध्यापक के मार्गदर्शन का महत्वपूर्ण भूमिका होती है। एक अध्यापक विशिष्ट बालक के अभिरूचि तथा अभिक्षमता के आधार पर उसके शैक्षिक क्षेत्र में विषय चयन में सहायता प्रदान करता है।
- विशिष्ट बालकों के व्यवसायिक चयन में शिक्षक के मार्गदर्शन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। शिक्षक बालकों की रूचि अनुसार तथा उपयोगी व्यवसायिक क्षेत्रों की जानकारी विशिष्ट बालकों को देते है। जिसकी सहायता से वो अपने लिये उपयोगी व्यवसाय की चयन करते हैं।

इस प्रकार आप समझ गए होंगे कि एक शिक्षक के रूप मे विशेष आवश्यकता वाले बालकों की किस प्रकार मदद की जा सकती है।

अभ्यास प्रश्न

4. विशिष्ट बालक की सहायता एक अध्यापक किन-किन क्षेत्रों में करता है ?
5. विशेष आवश्यकता वाले बालक की सहायता करने में एक शिक्षक की कोई दो मुख्य भूमिका बातइए?
6. एक शिक्षक के व्यक्तित्व में कौन-कौन से गुण मुख्यतः विशिष्ट बालकों को अपनी ओर आकर्षित करता है ?

5.5 प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालक का मार्गदर्शन

प्रतिभाशाली बच्चे वे होते हैं जिनकी मानसिक अवस्था वास्तविक अवस्था से अच्छी होती है। साधारण बच्चों की अपेक्षा ये बच्चे कम समय में किसी भी काम को सीखते हैं या करते हैं। प्रतिभाशाली बालक शारीरिक गठन, सामाजिक समायोजन, व्यक्तित्व के गुणों, विद्यालय उपलब्धि एवं खेलों की सूचनाओं और रूचियों की बहुरूपता में बालकों से श्रेष्ठ होते है किसी भी राष्ट्र की उन्नति इन प्रतिभावान बालकों पर ही निर्भर होती है। इसलिए प्रतिभावान बालक वे हैं जिनकी बुद्धि-लब्धि उच्च है अर्थात 140 से उपर होती है। वे सभी कार्यो को शीघ्र ही पूरा करा लेते हैं। यह समाज के सभी कार्यो में रूचि भी लेते हैं। उनके कार्य समाज की भलाई के लिए होते हैं।

इसके साथ ही साथ कभी कभी अध्यापक कक्षा में बालको के सम्पर्क में आते है जो कार्य को नया रूप देकर नई विधि से पूरा करने की योग्यता रखते हैं। ऐसे बालको के द्वारा आवश्यक रूप से अपनाई गई विधियों का प्रारूप बालकों के मस्तिष्क की नई खोज होती है, जो अध्यापक जानता भी नहीं है। ऐसे बालक सृजनात्मक कार्य करने में अपनी बुद्धि का भरपूर प्रयोग करते हैं तथा इनमें आत्मविश्वास अधिक होता है ऐसे बालकों के रचनात्मक कार्यो में स्कूली परिस्थितियों तथा सामान्य कार्यकलाप नियम आदि बांधा पहुँचाते हैं। ऐसे बालकों का व्यवहार कुछ अलग होता है। ऐसे बालक अपने कार्य में रूचि लेते है तथा साहसी होते है। ऐसे बालकों में आत्म-निर्भरता है। अध्यापकों को चाहिए कि इसप्रकार के बालकों के साथ अपने व्यवहार तथा कार्य प्रणाली में परिवर्तन करें तथा बालकों के रचानात्मक कार्यो को प्रोन्नत करने की दिशा में नये प्रयास करें। इसप्रकार हम सृजनात्मक बालकों को निम्नप्रकार से परिभाषित कर सकते हैं। जो बालक किसी नई वस्तु को उत्पन्न करने, बनाने या अभिव्यक्त करने की योग्यता या क्षमता रखते हैं उन्हें सृजनात्मक या सरचानात्मक बालक कहते हैं।

प्रतिभाशाली बालक का मार्गदर्शन

प्रतिभाशाली बालक अपने आयु से ज्यादा बुद्धिमान होते हैं। अतः इस प्रकार के बालक के मार्गदर्शन हेतु माता-पिता एवं इनके शिक्षक को अत्यधिक ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है। प्रतिभाशाली बालक का बुद्धिस्तर सामान्य बालकों से ऊँचा होने के कारण कठिनाई का सामना करना पड़ता है। प्रतिभाशाली बालक सामान्य बालकों की अपेक्षा शीघ्र ही अपना कार्य समाप्त कर लेता है। अतः शिक्षक प्रतिभाशाली बालक के पाठ्यक्रम निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। तथा मार्गदर्शन कर उपर्युक्त पाठ्यक्रम का निर्माण करते हैं। विशिष्ट कक्षायें बालकों में अधिक सीमा तक शिक्षण मार्गदर्शक के रूप् में अग्रसर होने का अवसर प्रदान करता है। प्रतिभावान बालकों की यदि विशेष प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध न होता तो उनकी बुद्धि-लब्धि में गिरावट आने का भय रहता है। प्रत्येक कक्षा एवं स्कूल में प्रतिभावान बालक होते है। लेकिन इनका चयन करना आसान कार्य नहीं है। अतः सर्वप्रथम शिक्षक को बुद्धि परीक्षण, पिछली कक्षाओं में सफलता, माता-पिता के विचार, रूचि परीक्षण तथा अन्य शिक्षकों के मत से इन बालकों का चयन करना आवश्यक होता है। तत्पश्चात इनका मार्गदर्शन करना चाहिए। प्रतिभावान बालकों के शैक्षिक पृष्ठभूमि को मजबूत बनाने हेतु शिक्षक एक मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है। तथा स्कूल में अच्छे पुस्तकालय, वाचनायल एवं प्रयोगशाला का सुविधा उपलब्ध कराता है इससे समायोजन के लिए अच्छा एवं अनुकुल वातावारण मिल जाता है। इन बालकों को उत्तरदायित्व का कार्य सौंपा जाता है। जिससे इनके अन्दर नेतृत्व का गुण विकसित हो सके। प्रतिभाशाली बालकों के सर्वांगीण विकास हेतु पाठ्यक्रम समृद्ध करने की सलाह शिक्षक देता है। क्योंकि ये बालक पाठ्यक्रम को समझने में बहुत कम समय लेते है, फलस्वरूप बचा हुआ समय किसी और कार्य में व्यस्त करके उपयोग करने की कोशिश करते हैं। शिक्षक इन बालकों के लिए विशेष प्रकार की शिक्षण विधियों का प्रयोग करता है। जिसकी सहायता से इन बालकों की मौखिक योग्यता, मानसिक योग्यता, रचानात्मक एवं प्रयोगात्मक कार्यो पर अधिक बल दिया जाता है। साथ ही साथ प्रतिभावान बालकों हेतु व्यक्तिगत शिक्षण विधि हेतु सुझाव दिया जाता है। शैक्षिक क्षेत्र में भाषण-प्रवचन आदि के प्रबन्ध में प्रतिभावान बालक अपनी योग्यताओं को सबके सामने व्यक्त करता है। जिससे उसके विकास में बढ़ोत्री होती है। शैक्षिक पृष्ठभूमि मजबूत होने के पश्चात इन बालकों के रूचि अनुसार शिक्षक व्यवसायिक क्षेत्र के चयन में इन बालकों की सहायता करता है। शिक्षक एक मार्गदर्शक के रूप् में इन बालकों की उपलब्धि तथा वर्तमान समय की मांग के अनुसार व्यवसाय चयन करने के लिए प्रेरित करते हैं। जिससे कम समय में ये बालक ज्यादा उन्नति कर सकें।

सृजनात्मक बालक का मार्गदर्शन

जो बालक किसी नवीन स्थिति का निर्माण करने व जीवन में अभिनव व्यवहार करने की योग्यता रखते हैं उन्हें सामान्य बालकों से पृथक सृजनात्मक व रचनात्मक बालक कहते हैं। ऐसे बालक सृजनात्मक कार्य करने में अपनी बृद्धि का भरपूर प्रयोग करते हैं तथा इनमें आत्मविश्वास अधिक

होता है। शैक्षिक दृष्टि से सृजनात्मक बालकों की पहचान करना अत्यन्त आवश्यक और महत्वपूर्ण होता है। अतः एक शिक्षक बालकों में सृजनात्मकता के उचित स्वं वांछित विकास हेतु मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है। बालकों के माता-पिता और अभिभावकों को कर्त्तव्य है कि वे उनके लिए समुचित वातारण की व्यवस्था करें ताकि सृजनात्मकता उचित रूप से विकसित हो सकें। बालकों में सृजनात्मकता के उचित विकास के लिये आवश्यक है कि उनमें सदैव धनात्मक सामाजिक अभिवृत्तियां विकसित हो वरना उनका साथियों, संरक्षकों एवं शिक्षकों से सम्बन्ध बिगड़ जाता है। बालकों को ज्ञान अर्जित करने के जितने अधिक अवसर प्राप्त होते हैं। उतना ही अधिक बालकों का सृजनात्मक विकास होने की सम्भावना रहती है। इन बालकों का विशेषज्ञों द्वारा प्रशिक्षण, सामाजिक सुगमता तथा सफलता के अनुभव सृजनात्मक के विकास में सहायक होते हैं। एक शिक्षक मार्गदर्शक के रूप में बालकों को जिज्ञासा व्यक्त करने का अवसर देता है तथा उनका उचित समाधान भी कर सकते हैं आप जान गए होंगे कि शिक्षक मार्गदर्शक के रूप में उपयुर्क्त कारकों की सहायता से बालक को निरन्तर सृजनशील बनाए रखकर उनके भविष्य को सभ्य सुसंस्कृत व निर्माणक बनाया जा सकता है। शिक्षक इन बालकों के मजबूत शैक्षिक पृष्ठभूमि हेतु सृजनात्मक शिक्षण, विभिन्न प्रकार के बालकों में प्रोत्साहित करने वाले पाठ्यक्रम पर आधारित शिक्षण प्रदान करने का कार्य करता है। बालकों में सृजनात्मकता एक स्वाभाविक गुण है। बालकों में सृजनात्मकता एक स्वाभाविक गुण है। यह लगभग प्रत्येक बालक में पायी जाती है। किन्तु वातावरा व रहतन-सहन का इसर प्रभाव अवश्य पड़ता है। क्योंकि विज्ञान और तकनीक से लेकर समाज के प्रत्येक कार्य क्षेत्र में सृजनात्मकता की आवश्यकता होती है इसी के अनुसार रचनात्मक बालकों का वर्गीकरण किया गया है जो इस प्रकार है। वैज्ञानिक सृजनात्मकता, तकनीकी सृजनात्मकता , साहित्यिक सृजनात्मकता, सौन्दर्ययात्मक सृजनात्मकता, शैक्षिक सृजनात्मकता, संगीतिक सृजनात्मकता, कलात्मक सृजनात्मकता, औद्योगिक सृजनात्मकता इतने प्रकार की सृजनात्मकता बालकों में पायी जाती हैं जो वह अपने विचारों एवं कार्यो में प्रदर्शित करता है और इन्हीं आधारों पर उनकी रचानात्मकता देखी जा सकती है।

अतः शिक्षक, मार्गदर्शक के रूप में उपरोक्त उनके रूचि के अनुसार सृजनात्मकता के आधार पर बालक विशेष की अलग-अलग व्यवसायिक क्षेत्र चयन करने का सुझाव प्रदान करता है। जिसकी सहायता से बालक कम समय में अच्छी उन्नति कर सकता है।

आप समझ गये होंगे कि किस प्रकार एक शिक्षण सृजनात्मक बालक के शैक्षिक तथा व्यवसायिक क्षेत्र के चयन में मार्गदर्शक की भूमिका अदा करता है। आप प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालक के कैरियर हेतु मार्गदर्शक के महत्व से भलिभाँति परिचित हो गयें होंगें।

अभ्यास प्रश्न

7. मार्गदर्शक के कोई दो महत्वपूर्ण कार्य बताइए ?
8. प्रतिभाशाली बालक का मार्गदर्शन किस प्रकार किया जाना चाहिए ?

9. सृजनात्मक बालक का मार्गदर्शन किस प्रकार किया जाना चाहिए ?
10. प्रतिभाशाली तथा सृजनात्मक बालकों में कोई दो अन्तर स्पष्ट कीजिए ?

5.6 सारांश

इस इकाई के अन्तर्गत विशिष्ट बालकों को किन-किन समस्याओं से जूझना पड़ता है तथा इन समस्याओं के सामाधान हेतु इन बालकों की क्या-क्या आवश्यकताएं होती है इस विषय में समझाया गया है। साथ ही साथ प्रस्तुत इकाई में इन विशेष आवश्यकता वाले बालकों की सहायता शिक्षक किस प्रकार करता है इसका वर्णन किया गया है अर्थात शिक्षक किस प्रकार एक मार्गदर्शक बनकर विशेष बालकों के शैक्षिक तथा व्यावसायिक पृष्ठभूमि को उन्नत बनाने हेतु सुझाव अथवा सहायता प्रदान करता है। विशेष बालकों के अन्तर्गत आने वाले प्रतिभाशाली एवं सृजनात्मक बालकों का मार्गदर्शन शिक्षक किस प्रकार करता है, इसका वर्णन किया गया है। प्रस्तुत इकाई में विशेष बालक की अवधारणा से परिचित कराया गया है। इस इकाई में विशेष बालक, उनकी समस्याऐं , आवश्यकताएं, उनकी सहायाता में शिक्षक की भूमिका सृजनात्मक एवं प्रतिभाशाली बालकों पर केन्द्रित करके महत्वपूर्ण चर्चा की गई है।

5.7 शब्दावली

1. **विशिष्ट बालक-** विशिष्ट बालक मानसिक, शारीरिक तथा सामाजिक गुणों में सामान्य बालक से भिन्न होता है।उसकी भिन्नता कुछ ऐसी सीमा तक होती है कि उसे स्कूल के सामान्य कार्यो में विशिष्ट शिक्षा सेवाओं में परिवर्तन की आवश्यकता होती है । ऐसे बालकों के लिए कुछ अतिरिक्त अनुदेशन भी चाहिए ऐसी दशा में उनका सामर्थ्य का विकास सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक हो सकता है। (क्रिक,1962)
2. **प्रतिभाशाली बालक**- प्रतिभाशाली बालक जिनकी बुद्धिलब्धि(आई.क्यू.) 140 से ऊपर होती है तथा ये बच्चे कम समय में किसी भी कम को सीखते हैं या करते हैं।
3. **सृजनात्मक बालक** – ऐसे बालक जो किसी नवीन वस्तु का निर्माण करने व जीवन में अभिनव व्यवहार करने की योग्यता रखते हैं उन्हें सामान्य बालकों से पृथक सृजनात्मक बालक कहते हैं।
4. **श्रवणबाधित बालक** - श्रवण बाधित बालक ऐसे बालक हैं जिनकी सुनने की क्षमता नष्ट हो जाती है तथा बोलने और भाषा में परेशानी का सामना करते हैं।
5. **दृष्टिबाधित बालक-** दृष्टिबाधित बालक वे बालक होते हैं जो ठीक प्रकार से देख पाने में असमर्थ होते हैं।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. विशिष्ट बालकों के अन्तर्गत मुख्यतः सोलह प्रकार के बालक सम्मिलित होते है।
2. जो बालक किसी नवीन वस्तु का निर्माण करने व जीवन में अभिनव व्यवहार करने की योग्यता रखते है इन्हें सृजनात्मक बालक कहते हैं।
3. विशिष्ट बालकों को सर्वप्रथम सामाजिक समायोजन तथा शैक्षणिक समायोजन की समस्या होती है।
4. विशिष्ट बालक की सहायता शिक्षक व्यक्तिगत, शैक्षणिक तथा व्यवसायिक क्षेत्र में करता है।
5. विशेष आवश्यकता वाले बालक की सहायता शिक्षक, मार्गदर्शक तथा अभिभावक के रूप में करता है।
6. एक शिक्षक के अन्दर मृदुभाषिता, परिस्थितियों को समझने वाला समझदार तथा सही सुझाव देने का गुण आकर्षित करता है।
7. मार्गदर्शक बालक के प्रत्येक क्षत्र में मार्गदर्शन करता है किन्तु शैक्षिक व व्यवसायिक क्षेत्र में मार्गदर्शन करना महत्वपूर्ण कार्य है।
8. प्रतिभाशाली बालक की बुद्धि लब्धि उसकी उम्र से ज्यादा होता है। अतः उसके पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य क्रियाविधियों में व्यस्त रखकर प्रशिक्षित करना चाहिए।
9. सृजनात्मक बालक में उसके रूचि अनुसार नवीन कार्यो में लगाना चाहिए तथा उसको ऐसा वातावरण देना चाहिए जिसमें उकसी सृजन करने की क्षमता में वृद्धि हो।
10. प्रतिभाशाली बालकों की बुद्धि लब्धि औसत से ज्यादा होता है। अपितु सृजनात्मक बालक औसत बुद्धि लब्धि के हो सकते हैं।
    प्रतिभाशाली बालक सृजनात्मक हो सकते है किन्तु सृजनात्मक बालक प्रतिभाशाली नहीं हो सकते हैं।

5.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. ओबेराय, डॉ0 सुरेश चन्द्र (2006), शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ,
2. मंगल, डॉ0 एस0 के0 एवं श्रीमती श्रुभ्रा (2003), मार्गदर्शन एवं परामर्श, आर्य बुक डिपो, मेरठ
3. गुप्ता, एस.पी. (2008), उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. सिंह, ए. के. (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
5. जायसवाल, एस.(2008), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi: Vikash Publishing House.

7. Das, B.N. (2010). Career Guidance and Counselling. Agra: Vinod Pustak Mandir
8. Kochhar, S.K, (1980) Guidance and Councelling, New Delhi: Sterling Publishers.
9. Mathur, S.S.(2012).Fundamentals of Guidance and Counselling.Agra: Vinod Pustak Mandir
10. NCERT(2008).Introduction to Guidance,Module-1, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
11. NCERT(2008).Career Information in Guidance,Module-5 and 12, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
12. Pandey, K.P.(2009).Educationaland Vocational Guidance in India. Varanasi: Vishvidyalaya Prakashan.
13. Sharma, N.R. (2012). Educationaland and Vocational Guidance. Agra: Vinod Pustak Mandir

5.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

Books:-

1. Agarwal, J.C, (1985), Educational Vocational Guidance and Counseling, Doaba House, New Delhi.
2. Agrawal, R (2006). Educational, Vocational Guidance and Counselling, New Delhi, Sipra Publication.
3. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi, Vikash Publishing House.
4. Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Counselling, Rex Printing Company, Inc., Quezon City.
5. Kinra, A.K. (2008). Guidance and Counselling, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. New Delhi.
6. Jones, A.J.(19510.Principles of Guidance and Pupil Personnel work,New York,MiGraw Hill.
7. Mendoza, E. (2003), Guidance and Counselling Today. Rex Book Store (RBSI), Manila.

8. Nanda, S.K and Sharma S, (1992) Fundamentals of Guidance, Chandigarh.

Websites & E-links:-

1. www.books.google.co.in
2. www.education.go.ug/guidance
3. http://encyclopedia2.thefreedictionary.com
4. www.careersteer.com
5. www.lotsofessays.com
6. www.careerstrides.com
7. www.wikipedia.org/wiki

5.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. विशिष्ट बालक से आप क्या समझते है ? उनकी समस्याऐं एवं आवश्यकताएं बताइए?
2. विशिष्ट बालकों की सहायता में शिक्षक की क्या भूमिका है? तथा शिक्षक की भूमिका एक मार्गदर्शक के रूप् में भी बताइए ?
3. विशेष बालकों के अन्तर्गत कौन-कौन से बालक आते हैं ? सभी प्रकार के बालकों का विवरण दिजिए ?
4. सृजनात्मक तथा प्रतिभाशाली बालक से आप क्या समझते हैं ? उनमें अन्तर स्पष्ट कीजिये?

इकाई 6 समूह निर्देशन- अर्थ, प्रत्यय, परिभाषा, सिद्धान्त, समूह निर्देशन प्रक्रिया एंव तकनीकि

6.1 उद्देश्य
6.2 समूह निर्देशन- अर्थ, परिभाषा
6.3 समूह निर्देशन का उद्देश्य एवं महत्व
6.4 समूह निर्देशन प्रक्रिया
6.5 समूह निर्देशन की समस्याएं एवं लाभ
6.6 समूह निर्देशन के सिद्धान्त
6.7 समूह निर्देशन के आवश्यक तत्व
6.8 समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन
6.9 समूह निर्देशन की प्रविध् (तकनीकि)
6.10 सारांश
6.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.12 सन्दर्भ ग्रंथ सूची
6.13 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

वर्तमान बदलते परिदृश्य में मानव के विकास के साथ-साथ विद्यार्थी जीवन के प्रत्येक स्तर एंव प्रत्येक पक्ष पर निर्देशन की आवश्यकता महसूस होती है। निर्देशन एक व्यवसायिक प्रक्रिया के साथ-साथ सामूहिक तथा व्यक्तिगत रूप से सम्पन की जाने वाली प्रक्रिया है। यह व्यक्ति विशेष को नहीं ब्लकि किसी भी व्यक्ति, बालक को किसी समय और उम्र में दी जा सकती है। कोठारी आयोग (1964-66) ने स्पष्ठ रूप से निर्देशन को शिक्षा का अंग कहा एंव इसको प्राथमिक स्तर से लेकर माध्यमिक स्तर तक के शिक्षकों को प्रशिक्षित करने की बात कही और वित्तिय सुविधाओं को देखते हुए आगामी वर्षों में प्रत्येक माध्यमिक विद्यालयों में अतिथि परामर्श कर्ताओं द्वारा शिक्षकों को निर्देशन के कार्यों के बारे में परिचय कराया जाए इसके अतिरिक्त प्रत्येक जिला स्तर के किसी विद्यालय पर निर्देशन कार्यक्रमों का आयोजन किए जाने की बात कही । विश्व के बदलते परिदृश्य में बालक के मस्तिष्क का बदलना स्वभाविक है जैसे विश्वास, अभिवृति मूल्यों में परिवर्तन स्वाभाविक

है, और उसे समझने की आवश्यकता होती है इस प्ररिप्रेक्ष्य में निर्देशन की भी आवश्यकता महसूस होती है बदलते परिदृश्यों के कारण निर्देशन की आवश्यकता और बढ़ जाती है।

विकास का पक्ष चाहे वो शैक्षिक व्यवसायिक, व्यक्तिगत, समाजिक, धार्मिक पक्षों के साथ-साथ विद्यालय के वातावरण में परिवर्तन होने पर निर्देशन की आवश्यकता होती है। विद्यार्थियों की विभिन्न प्रकार की समस्याएं उत्तपादकता आदि के कारण भी निर्देशन की आवश्यकता महसूस होती है।

अपने व्यापक रूप में निर्देशन में विभिन्न प्रकार के शैक्षिक आयोजन के द्वारा व्यक्ति को उसकी खामियों एंव अभिवृतियों से अवगत कराना, समायोजन करना ताकि वास्तविक परिदृश्य में वह खुद को समायोजित कर सके। व्यक्तिगत दृष्टिगत के साथ-साथ सामूहिक दृष्टिकोण से निर्देशन की आवश्यकता पड़ती है। अगर हम प्रकार की बात करें तो निर्देशन व्यक्तिगत एंव सामूहिक दो प्रकार से होता है।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्धयन करने के पश्चात आप -

1. समूह निर्देशन का अर्थ जान पाऐंगे।
2. समूह निर्देशन की परिभाषित करा सकेंगे।
3. समूह निर्देशन के सिद्धान्त की व्याख्या कर सकेंगे ।
4. समूह निर्देशन की प्रक्रिया को अपने शब्दों में लिख सकेंगे ।
5. समूह निर्देशन की तकनीकि का विवरण कर सकेंगे।
6. समूह निर्देशन की आवश्यकता एंव महत्व को बता सकेंगे।
7. व्यवहारिक रूप से समूह निर्देशन की विभिन्न प्रकार की समस्या को समझ सकेंगें।

6.3 समूह निर्देशन - अर्थ एवं परिभाषा

समूह निर्देशन, निर्देशन कार्यक्रम का ही एक भाग है। निर्देशन प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्तिगत रूप से किसी व्यक्ति को खुद निर्देशित करना, खुद का ज्ञान, करना एंव खुद का समान्यिकरण करना होता है। जिसका कुछ भाग सामूहिक संरचना में ही प्राप्त किया जा सकता है। समूह निर्देशन सामूहिक जीवन परिदृश्य में किसी निर्देशन कर्त्ता द्वारा एक समय पर विभिन्न विद्यार्थियों के समूहों को निर्देशित किया जाता है ।

शैक्षिक तथा व्यवसायिक योजनाओं के चयन, क्रियान्वयन, एंव आयोजन तथा विकास से सम्बधित विभिन्न पक्षों में सामूहिक वर्तालाप अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

‘‘समूह निर्देशन से तात्पर्य ऐसे निर्देशन से है जिसमें एक से अधिक व्यक्तियों का समूह, समूह के प्रत्येक व्यक्तियों की समस्याओं के समाधान के प्ररिप्रेक्ष्य में निर्देशित होते हैं/विचार करते हैं’’

समूह निर्देशन, निर्देशन का एक रूप है। जिसमें निर्देशनकर्ता एक से अधिक व्यक्ति जो एक ही आयु समूह एवं समस्या के होते है, को निर्देशित करता है समूह निर्देशन कहलाता है। सामान्यतः निर्देशन की प्रारम्भिक अवस्था में जब एक से अधिक व्यक्तियों के समूह को किसी एक ही विषय पर निर्देशन दिया जाए तो उसे समूह निर्देशन कहा जाता है।

शैक्षिक जनसंख्या के बढ़ते दबाव को देखते हुए सामूहिक निर्देशन, निर्देशन के क्षेत्र में उभरता हुआ एक महत्वपूर्ण निर्देशन है। जिसके द्वारा मितव्यतिता रूप से अधिक से अधिक विद्यार्थियों को सामूहिक रूपों से आत्मनिर्देशन, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक रूप में प्रदान किया जाता है। निसन्देह सामूहिक निर्देशन व्यक्तिगत निर्देशन से महत्वपूर्ण है।

जब शैक्षिक व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन के लिए एक या एक से अधिक व्यक्तियों को किसी परिस्थित विशेष में समूह के रूप में निर्धारित किया जाता है तो उसे समूह निर्देशन की संज्ञा दी जाती है। यह सामूहिक क्रियाओं द्वारा निर्देशन की प्रक्रिया कही जाती है।

समूह निर्देशन की परिभाषा

रॉवर हापोक के अनुसार ’’सामूहिक निर्देशन वह कोई भी सामूहिक क्रिया हो जो कुछ निर्देशन कार्यक्रम को सुविधा देने या सुधार करने के लिए सम्पन्न की जाती है’’।

जेल वार्टस ने कहा है कि:- सामूहिक निर्देशन को साधारणतया इस प्रकार प्ररिभाषित किया जा सकता है कि यह सामूहिक अनुभवों का व्यक्ति के उत्तम विकास में सहायता देने एवं इच्छित उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु चेतना पूर्ण प्रयोग है।

ए०जे० जोन्स (1951) निर्देशन किसी भी समूह का वह उधम या क्रिया है जिसका प्राथमिक उद्देष्य समूह के प्रत्येक व्यक्ति की सहायता करना ताकि वो अपनी समस्या का समाधान कर सके एवं प्रभावपूर्ण समायोजन कर सके। इसके अर्न्तगत समूह सूचना दी जाती है जो व्यक्तिगत सूचना के विपरीत होती है। परन्तु यह सूचना व्यक्ति विशेष के लिए हो सकती है।

समूह परीक्षण व्यक्तिगत परीक्षण है ना कि किसी समूह का परीक्षण है। समूह निर्देशन केवल न्यायोचित ही नहीं बल्कि अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

क्रो० एण्ड क्रो० समूह निर्देशन समूह परिस्थितियों में प्रयोग किया जाने वाले विचार है। जिसमें निर्देशन सेवा को विद्यालय समूह, या विद्यार्थियों के समूह पर किया जाता है।

लीस्टर डाउनिंग ने सामूहिक निर्देशन के सम्बन्ध में लिखा है- सामूहिक निर्देशन, निर्देशन सेवा का वह अंग है जो एक कुशल परामर्शदाता के निर्देशन में नवयुवक को अन्यों के साथ विचार विनिमय

एवं अनुभवों में आदान-प्रदान करता है जिनमें अन्तराभूति विकसित होती है। आत्मबोध की सुविधा मिलती है। परिपक्वता में वृद्धि होती है, कार्य करने के लिए तर्कसंगत निर्णय लिये जाते है। इसमें ऐसा वातावरण मिलता है जिसमें मनोचिक्तिसा लाभ प्राप्त किए जाते है और सामाजिक कुशलता का विकास होता है। सामूहिक निर्देशन का अन्तिम लक्ष्य व्यक्तिगत विकास ही है उन्होंने यहां तक कहा कि सामूहिक निर्देशन संगठित निर्देशन कार्यक्रम का ही एक अंग जिसमें क्रियाएं सम्मिलित की जाती है संगठित निर्देशन कार्यक्रम अनेक छात्रों का परस्पर मिलन होता है। इसमें सूचनाएं प्राप्त करते है, विचारों का आदान-प्रदान होता है, भविष्य की योजना बनाते हैं और निर्णय लेते है।

सार रूप में यह कहा जाता सकता है कि सामूहिक निर्देशन समूह वास्तव में व्यक्तियों के एकत्रितकरण को निर्देशित करता है जिसमें व्यक्ति आपसी प्रत्यक्षीकरण के आधार पर व्यक्तिगत विकास करते है। समूह निर्देशन जैसी क्रियाओं का अपने अन्दर समाहित करता है जो किसी समूह परिस्थित में की जाएं तथा व्यक्तिगत रूप से सामूहिक परिस्थित में व्यक्ति को निर्देशन किया जाए समूह किसी भी प्रकार का हो सकता है परन्तु निर्देशन का उद्देश्य समूह के प्रत्येक सदस्यों के लिए सामान्य होगा।

6.4 सामूहिक निर्देशन के उद्देश्य एवं महत्त्व

समूह निर्देशन क्रियाओं के सफल संचालन के लिए यह आवश्यक है कि क्रियाओं के आयोजन के लिए ध्यानपूर्वक योजना तैयार की जाए जिसमें प्राथमिक रूप से समूह के प्रत्येक व्यक्ति को समूह निर्देशन के उद्देश्यों से अवगत कराया जाए तथा उद्देश्यों का निर्धारण किया जाए। सामान्यतः उद्देश्यों में समस्या या विद्यालय की अलग-अलग पृष्ठभूमि के कारण अन्तर होता है इसलिए उद्देश्यों में भिन्नता आ जाती है। समूह निर्देशन के कुछ प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार है-

1. विद्यार्थियों को ऐसी सूचना प्रदान करना जिससे विद्यार्थी नये विद्यालय से परिचित हो सके।
2. विद्यार्थी विद्यालय के पाठ्यक्रम क्रियाएं, नियमों एवं विद्यालय के संस्कारों से परिचित हो सके।
3. ऐसी सूचनाएं व सामग्री उपलब्ध कराना ताकि छात्र खुद व्यक्तिगत परामर्श के लिए आ सके।
4. छात्रों को सामूहिक क्रियाओं में प्रभावपूर्ण भागीदारी करने में सहायता प्रदान करना।
5. छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान करना ताकि समूह में प्राप्त साक्ष्यों एवं प्राप्त आलोचनाओं का खुद मूल्यांकन कर सके।
6. छात्रों को खुद समूह के सदस्य के रूप मे विकसित करने के लिए सहायता करना।
7. शिक्षकों को ऐसा व्यवहार प्रदान करना जिसमें शिक्षक व्यक्तिगत परामर्श के लिए बहुत बड़ी मात्रा में सूचना एकत्रित कर सके।
8. ऐसे व्यक्तियों के लिए सामूहिक चिकित्सा प्रदान करना जो बाहरी वातावरण में समायोजन स्थापित न कर सके।

9. वस्तुनिष्ठ आधार पर व्यक्तिगत सहायता प्रदान करना जबकि समस्या का स्वरूप सामूहिक हो।
10. छात्रों को ऐसे अवसर प्रदान करना ताकि वे अपने व्यवहारों को समूह के मूल्यों के अनुकूल कर सके।
11. एक जैसी समस्याओं की पहचान मे सहायता करना।
12. समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं के लिए लाभदायी सूचनाएं प्रदान करना।
13. व्यक्तिगत परामर्श की संरचना तैयार करना
14. लोगों की सामान्य समस्याओं की पहचान तथा उसका विश्लेषण कर समस्या से सम्बन्धित सार्थक उपायों को ढूंढने में सहायता करना।
15. सूचनाओं को एकत्रित करना ताकि व्यक्ति अपनी समस्या से सम्बन्धित उन समस्याओं में से समाधान ढ़ूँढ सके।
16. ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करना जिसमें व्यक्ति एक समूह में हो तथा एक दूसरे से अन्तः क्रिया करके उसमें विचारों एवं अनुभवों से लाभ प्राप्त कर सके।
17. ऐसे वातावरण का निर्माण करना जो व्यक्तियों को अपने विचार व्यक्त करने के अवसर प्रदान कर सकें।
18. व्यक्तियों, छात्रों में आत्मविश्वास सामाजिक कुशलता में वृद्धि करने के उद्देश्य से सामूहिक क्रियाओं का आयोजन करना।
19.

इसके अतिरिक्त आर्थर ई० ट्रैक्सलर ने सामूहिक निर्देशन के चार उद्देश्य बताएं हैं-

1. **अभिविन्यास** - छात्रों को समाज के बदलते परिदृश्य एवं नवीन परिस्थित एवं अनुभवों के ज्ञान कराने से है।
2. **सीखने के अनुभवों की व्यवस्था करना**- सामूहिक निर्देशन के द्वारा कुछ ऐसे अनुभव छात्रों को प्रदान किये जाते है जिससे उनकी अधिगम क्षमता में वृद्धि अच्छी आदतों का विकास नवीन परिस्थितियों को समझने की क्षमता विकसित हो।
3. **स्वंय निर्देशन के विचारों की उत्पत्ति**- सामूहिक निर्देशन की प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति निजी रूप से अपनी समस्याओं पर विचार करने लगता है जिससे उसके अन्दर स्वंय निर्देशत होने का दृष्टिकोण विकसित होने लगता है।
4. **समायोजन-** सामूहिक निर्देशन का एक उद्देश्य व्यक्ति में समायोजन से सम्बन्धित समस्याओं को हल करना शामिल किया जाता है।

समूह निर्देशन का महत्व

1. राबर्ट एच. नाप ने समूह निर्देशन के महत्व को बताते हुए कहा है कि यदि सार्थक अभिवृद्धि एवं अनुभव बड़ी संख्या में बच्चों को प्रदान किया जाए तो बच्चों को किसी समूह विशेष में रखना पड़ेगा और बहुत कम समय में विद्यार्थियों के एक बड़े समूह को सूचना प्रदान कर दी जायेगी।
2. परामर्श दाता अपने विद्यार्थियों की सामान्य पृष्ठभूमि से सम्बन्धित जानकारी व उनकी समस्याओं को प्राप्त कर ले तो वो इस जानकरी से विद्यार्थियों के बहुत बड़े समूह पर सामान्यीकरण कर सकता है।
3. समूह निर्देशन विद्यार्थियों के अभिवृत्ति सुधार व व्यवहार में परिवर्तन लाने मे सहायक होता है।
4. इसके द्वारा विद्यालय में नामांकित नये छात्रों को विद्यालय के कार्यक्रम, विद्यालय का इतिहास, परम्परा, नियमों एवं शैक्षिणक, सामाजिक तथा विद्यालय की पाठ्य सहगामी क्रियाओं से अवगत कराया जा सकता है।
5. समूह निर्देशन विभिन्न प्रकार की नेतृत्वपूर्ण प्रशिक्षण देने में भी सहायक है।
6. बालकों के व्यक्तित्व के कुछ पक्ष ऐसे होते है। जिसको निरीक्षण या जांच समूह में लगाया जा सकता है। शिक्षक चाहे तो समूह निर्देशन की क्रियाओं का प्रयोग कर उसकी व्यक्तिगत विशेष ताओं का पता लगा सकता है।
7. व्यक्तिगत परामर्श के लिए समूह निर्देशन की प्रविधियों का प्रयोग करके पर्याप्त मात्रा में परामर्श दिया जा सकता है।
8. एक शिक्षक या परामर्श दाता समूह उपागम द्वारा अपने अधिकतम समय को बचा सकता है तथा व्यक्तिगत रूप से समस्या ग्रसित बालक पर अधिक ध्यान दे सकता है।
9. समूह निर्देशन विद्यार्थियों को अपनी समस्याओं व चिन्ताओं को व्यक्त करने तथा दबी हुई भावनाओं को सामूहिक परिस्थिति में स्वतन्त्र रूप से चर्चा करने में भी सहयोगी होता है।

6.5 समूह निर्देशन प्रक्रिया

समूह निर्देशन प्रक्रिया का आयोजन करने के लिए निर्देशनकर्त्ता ऐसे निर्देशन लेने वाले व्यक्तियों/छात्र का चुनाव करता है, जो सामान्यतः शैक्षिक, आयु एवं भौगोलिक परिदृश्य में भिन्न-भिन्न होते हैं परन्तु निर्देशन से सम्बन्धित समस्या सामान्य अथवा एक जैसी होती है। निर्देशनकर्त्ता समस्त सदस्यों की विभिन्न आवश्यकताओं का विभिन्न उपकरणों द्वारा आकलन करते हुए समूह निर्देशन के लिए स्थान समय एवं समूह के आधार को निर्धारण करना तथा दिए जाने वाले निर्देशन विषय पर समूह के समस्त सदस्यों को अवगत कराता है तथा निर्देशन परिप्रेक्ष्य के सन्दर्भ मे परिणामों का आकलन करता है।

6.6 समूह निर्देशन की समस्याएं एवं लाभ

समूह निर्देशन की निम्न समस्याएं हैं -

1. गृह व विद्यालय के समायोजन से समस्या।
2. शैक्षिक योजना से सम्बन्धित समस्या।
3. रोजगार से सम्बन्धित समस्या
4. आर्थिक एवं व्यवसायिक समस्या
5. पारिवारिक समस्या आकलन करता है।

समूह निर्देशन के लाभ

समूह निर्देशन की विभिन्न क्रियाओं का आयोजन एवं उपागमों के अध्ययन के उपरान्त निम्न लाभ प्राप्त होते हैं-

समूह निर्देशन के निम्नलिखित लाभ है-

1. समूह निर्देशनकर्ता कुशलता के साथ तथा अत्यन्त कम समय में विद्यार्थियों को सूचना प्रदान करने व उनकी समस्याओं को पहचानने तथा विभिन्न कठिन समस्याओं से सम्बन्धित प्रति उत्तरों को ढूँढने में सफल होता है।
2. समूह निर्देशन शिक्षक अथवा परामर्श दाता को सामूहिक परिस्थिति में बालक के सामाजिक दृष्टिकोण एवं व्यवहारों को अध्ययन करने के लिए अवसर उपलब्ध कराता है।
3. विद्यार्थियों की एक जैसी समस्याओं को किसी समूह विशेष के सामने चर्चा करने व समस्या से सम्बन्धित उत्तर ढूँढने मे मदद करता है।
4. समूह निर्देशन में समस्त विद्यार्थियों के समक्ष सुझाव रखे जाते है तथा समस्त विद्यार्थी उसे आसानी से स्वीकार करते है तथा अपने विचारों को रखते है।
5. समूह निर्देशन प्रक्रिया के दौरान सामान्य छात्र अन्य छात्रों से विभिन्न प्रकार के ज्ञान प्राप्त करते है।
6. समूह निर्देशन में एक जैसी समस्या पर सामूहिक उत्तर प्राप्त होते है।
7. समूह निर्देशन व्यक्तिगत परामर्श के लिए तैयार करता है।
8. समूह निर्देशन के द्वारा शिक्षक छात्रों की बहुत बड़ी संख्या से सम्पर्क बना सकता है।
9. निर्देशन का यह प्रकार मितव्ययी एवं सार्थक है।
10. विद्यार्थियों से सम्पर्क बनाने में सहायक है।
11. विद्यार्थियों को एक जैसी समस्या पर चर्चा करने के लिए अवसर प्रदान करता है।
12. यह विद्यार्थियों के अभिवृत्ति एवं व्यवहार में सुधार लाता है।
13. यह विद्यार्थियों में जागरूकता लाता है ताकि वे अपनी आवश्यकता को पहचान सके।

14. समूह निर्देशन में आपसी अन्तक्रिया के परिणाम स्वरूप समूह के प्रत्येक सदस्य एक दूसरे से कुछ न कुछ सीखते रहते हैं।
15. समूह निर्देशन के द्वारा निर्देशनकर्ता साथ-साथ विद्यार्थी दोनों को ही समय के साथ प्रयास एवं धन की बचत होती है।

6.7 समूह निर्देशन के सिद्धांत

विषय का सार्थक होना

सबसे पहले जिस विषय अथवा प्रकरण पर निर्देशन दिया जाना है उस पर यह विचार करना आवश्यक होता है कि जिस समूह के लिए निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन किया जाता है वह विषय समूह के सदस्यों की समस्याओं के अनुकूल है या नहीं। उदाहरण के लिए-समूह का नेतृत्व करने वाला या सलाहकर्ता ने यह निर्णय लिया कि नवीन छात्रो के साथ 'शिष्टता' विषय पर चर्चा की जायेगी परन्तु यह विषय सभी के लिए समान रूप् से महत्वपूर्ण नही होगा और परिणाम भी अप्रत्याशित अथवा अभिप्रेरित करने वाला नहीं होगा तथा समूह के सदस्य भी विषय में रूचि नहीं लेगें। तब निर्देशनकर्ता पुनः विषय को चर्चा के लिए प्रस्तुत करेगा, तो यह पायेगा की सामान्य शिष्टता विषय पर चर्चा में समूह के कुछ सदस्य हैं जो रूचि लेते है और कुछ सदस्य रूचि नहीं लेते हैं।

इस प्रकार समूह निर्देशन की क्रिया तुरन्त असफल हो जायेगी। अतः निर्देशनकर्ता को ऐसे विषय का चुनाव करना चाहिए जिसको समूह के सदस्य आसानी से स्वीकार कर सकें।

सक्रिय सहभागिता आवश्यक है

छात्रों द्वारा प्रभावपूर्ण समूह निर्देशन के लिए सक्रिय सहभागिता आवश्यक है। इसमें यह आवश्यक होता हैं कि निर्देशनकर्ता की प्रतिक्रियाओं का प्रति उत्तर छात्रों द्वारा दिया जाए। जिसको प्राप्त करना निर्देशनकर्ता के लिए एक कठिन कार्य है। समूह निर्देशन का द्वितीय सिद्धान्त सक्रिय सहभागिता, शिक्षकों के अनुसार निष्चित रूप से कठिन सिद्धान्त है। जिसका सफल होना समूह कार्य के लिए आवश्यक है। यदि समूह के सभी सदस्यों के साथ अन्तःक्रिया प्रतीत न हो तो वास्तविक निर्देशन की प्रक्रिया प्रतीत नहीं होती है। हमें जो ज्ञान प्राप्त है इसी के अनुसार हम रहते है ना कि हमने क्या सुना, या क्या चर्चा किया, दोनों ही महत्वपूर्ण नहीं है। किसी कार्य में सहभागिता की महत्ता इस प्रकार समझी जा सकती है कि जब विद्यार्थी परिषद सम्मेलन का आयोजन किया जाता है तब उस समय विद्यार्थियों की जो प्रतिक्रियायें होती है वो निर्णय लेने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

प्रयोजन की तैयारी

निर्देशन कर्ता या आयोजन कर्ता के खुद के लिए यह आवश्यक होता है कि वह इस प्रकार तैयारी करे व योजना बनाये ताकि वह छात्रों में रूचि जागृत कर सके, तथा निर्देशन सामग्री का निर्माण कर सके। विद्यार्थियों का प्रयास आवश्यक है। समूह निर्देशन की क्रिया विद्यार्थियों के प्रयास के अभाव में न तो सार्थक हो सकती है और न ही उसका उनको कोई लाभ या सहायता प्राप्त हो सकती है। अतः समूह के निर्देशन कर्ता को समूह के सदस्यों के समक्ष विषय पर चर्चा करना आवश्यक है।

समूहकार्य और व्यक्तिगत परामर्श संपुरक के रूप में

व्यक्तिगत परामर्श के लिए आवश्यक नहीं है कि समूह कार्य का आयोजन किया जाए क्योंकि दोनों का अपना महत्वपूर्ण योगदान समूह निर्देशन में होता है।

इसके अतिरिक्त आर. ए. शर्मा ने समूह निर्देशन के छः सिद्धान्तों का बताया है-

1. समूह निर्देशन का प्रयोग परामर्श के अनुपूरक के रूप में होना चाहिए न कि प्रतिस्थापन के रूप में।
2. जैसे भी सम्भव हो परामर्श दाता को समूह के समस्त सदस्यों को इस प्रकार प्रोत्साहित करना चाहिए की प्रत्येक सदस्या व्यक्तिगत परामर्श के लिए अभिप्रेरित हो सके।
3. विभिन्न पक्षों में समूह के सदस्यों का चुनाव इस प्रकार करना चाहिए ताकि समजातीय समूह का निर्माण हो सके।
4. विद्यार्थियों के परिचय के लिए परियोजना का संचालन आवश्यक है।
5. समूह निर्देशन के लिए नियुक्त व्यक्ति को समूह निर्देशन की तकनीकियों से पूर्णतः परिचित होना चाहिए।
6. समूह निर्देशन का प्रयोग पूरक निर्देशन के रूप में करना चाहिए ताकि परामर्श प्रतिस्थापन के रूप में स्वीकार किया जा सके।

जैसा सम्भव हो निर्देशनकर्त्ता को यह चाहिए की समूह के प्रत्येक सदस्यों को व्यक्तिगत निर्देशन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।विजक रूप में समूह निर्देशन की परियोजना से विद्यार्थियों को अवगत करना चाहिए। समूह निर्देशन देने वाला व्यक्ति समूह निर्देशन की प्रक्रिया से पूर्णतः परिचित होना चाहिए।

6.8 समूह निर्देशन के आवश्यक तत्व

1. परामर्श दाता का विद्याथियों के साथ उचित सम्बन्ध होना चाहिए।
2. परामर्श दाता विद्यार्थियों को स्वीकार करने वाला होना चाहिए।
3. परामर्शदाता समूह के विचारों ध्यानपूर्वक सुनने वाला होना चाहिए।
4. परामर्श दाता का दृष्टिकोण समस्या के प्रति सकारात्मक होना ।

5. प्रभावपूर्ण समापन प्रक्रिया।

6.9 समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन

आधुनिक समूह निर्देशन कार्यक्रम में इस बात पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है कि समूह के प्रत्येक सदस्य अपने व्यक्तिगत स्तर पर व्यक्तिगत व सामाजिक सम्बन्धों के लिए महत्वपूर्ण है। तथा वे अपनी रूचि अभिक्षमता, योग्यता अनुभव, आवश्यकता के अनुकूल सीखने के लिए सक्षम है। जिसके कारण समूह निर्देशन की क्रियाओं के आयोजन के लिए एक प्रारूप विकसित करना मुश्किल है। तथा क्रियाओं का आयोजन विद्यालय की परिस्थिति, संगठन नामांकन की संख्या, वित्तीय स्थिति प्रतिछात्रों पर कार्य की स्थिति व शिक्षक प्रशासक भी समूह निर्देशन आदि कारकों पर निर्भर करती है व समूह निर्देशन के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। एक सफल कार्यक्रम तब कहा जायेगा जब प्रारम्भ से लेकर अन्तः तक की क्रियाओं का सफल आयोजन हो सके। मूल रूप से समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन शैक्षिक स्तरों के विभिन्न प्रकार व विभिन्न समूह के अनुसार किया जाता है।

स्तरानुसार समूह निर्देशन क्रियाओं का आयोजन इस प्रकार है-

1. प्राथमिक स्तर पर समूह निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।
2. माध्यमिक स्तर पर समूह निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।
3. विभिन्न समूहों के आधार पर निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।
4. वैकल्पिक रूप से समूह का निर्माण एवं निर्देशन क्रियाओं का आयोजन।

प्राथमिक स्तर पर सामूहिक निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन

प्राथमिक स्तर पर सामूहिक निर्देशन की क्रियाओं के आयोजन के मुख्यतः दो उद्देश्य होते हैं-

1. प्राथमिक स्तर पर विद्यालय का यह प्रमुख कार्य है कि वह प्रत्येक छात्र से सम्बन्धित उसकी समस्त सूचनाओं को एकत्रित करे ताकि केवल वह स्वंय ही नहीं बल्कि सम्बन्धित विद्यालय के शिक्षक , परामर्श दाता साथ ही साथ माध्यमिक स्तर के परामर्श दाता भी इससे लाभ प्राप्त कर सकें।
2. प्राथमिक विद्यालयों का यह द्वितीय महत्वपूर्ण दायित्व है कि वह विद्यार्थियों को अधिकतम व्यक्तिगत व सामाजिक समायोजन प्राप्त करने के लिए वतावरण उपलब्ध करा सकें।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन क्रियाओं का आयोजन करने के लिए ध्यान देने वाली सावधानियां

1. विद्यालय में छात्रों को नांमकन से पूर्व एवं बाद में अनुस्थापन कार्यक्रम का आयोजन करना चाहिए। जिसमें विद्यालय में किसी प्रकार की क्रियाओं का आयोजन किया जाना, विद्यालय का वार्षिक कार्यक्रम क्या है इत्यादि बातों का उल्लेख होता है।

2. मुख्य रूप से विद्यालय के परामर्श दाता के असफल होने में सूचनाओं का महत्वपूर्ण स्थान होता है। क्योंकि किसी भी व्यक्ति के बारें में यदि प्राप्त सूचनाएं अपर्याप्त है तो उचित निर्देशन नहीं हो सकता इसलिए क्रियाओं के आयोजन से पहले विद्यालय में उपस्थित समस्त दस्तावेज, जो संचयी हो को सुरक्षित एवं संजोकर रखना चाहिए।
3. विद्यालय में एक निर्देशन एवं परामर्श प्रकोष्ठ की स्थापना की जानी चाहिए जो शिक्षकों को विद्यार्थियों से सम्बन्धित समस्त दस्तावेजों को उपलब्ध करा सके और जांच सूची अथवा चेक लिस्ट का निर्माण भी करे।
4. छात्रों की व्यक्तिगत दस्तावेज में उनकी मानसिक विकास एवं अभिवृद्धि का मापन, लम्बाई व वजन आदि विकासात्मक विशेष ताओं का भी अभिलेख रखना चाहिए।

माध्यमिक स्तर पर निर्देशन क्रियाओं का आयोजन

माध्यमिक स्तर पर अधिकतम सामूहिक निर्देशन क्रियाओं का आयोजन कक्षा में ही विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से शिक्षकों द्वारा कराया जाता है। यदि शिक्षकों द्वारा अनुस्थापन कार्यक्रम का आयोजन सफलतापूर्वक किया गया हो तो माध्यमिक स्तर में शिक्षकों द्वारा विद्याथियों के आत्मप्रत्य के विकास तथा उनके सकारात्मक पक्ष व नकारात्मक पक्ष को पहचानने में अपना योगदान दे सकते है। सामान्यतः माध्यमिक स्तर पर निर्देशन क्रियाओं के आयोजन का कार्य प्राथमिक स्तर से ही आरम्भ हो जाता है। जिसमें विद्यालय प्रबन्ध का यह दायित्व होता है कि वो छात्रों के विकासात्मक अभिलेखों व सूचनाओं को संग्रहित करे तथा विद्यार्थियों को अवगत कराये जिससे विद्यार्थी अपना व्यक्तित्व एवं सामाजिक समायोजन अच्छी प्रकार कर सके।

- इसके अन्तर्गत विद्यालयों में निर्देशन प्रकोष्ठ की स्थापना की जाती है जिसका मुख्य कार्य शिक्षकों, विद्यार्थियों पाठ्यक्रम, सहपाठयक्रम, पाठ्य- सहगामी क्रियाएं, तथा सामान्य निर्देशन कार्यक्रम के बीच एक आर्दश लोकतान्त्रिक सम्बन्ध स्थापित करना।
- इसके अन्तर्गत निर्देशन इकाई को संस्थागत पाठ्यक्रम में रखा जाना चाहिए तथा निर्देशन से सम्बन्धित विभिन्न विषय वस्तु को पाठ्यक्रम में शामिल करना चाहिए।
- सामान्य निर्देशन पाठ्यक्रम को छात्र केन्द्रित, व्यापक और लोचपूर्ण बनाना चाहिए।
- छात्रों को समुदाय व समूह आधारित कार्यक्रमों में सहभागिता बढ़ाने पर बल देना चाहिए।
- छात्रों को अच्छे सार्वजनिक सम्बन्धों के लिए अवसर उपलब्ध कराना चाहिए।

समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन मूल रूप से निम्न बिन्दुओं को शामिल करता है-

1. आवश्यकताओं का आंकलन करना- किसी समूह की सामान्य समस्याओं को जानने के लिए उस समूह से सम्बन्धित प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं का आकलन जरूरी होता है।

जिसकी विभिन्न प्रकार के परीक्षण उपकरणों द्वारा जैसे प्रश्नावली, साक्षात्कार, निरीक्षण, का प्रशासन कर आवश्यकताओं का आकलन किया जा सकता है।

2. समूह निर्देशन का स्थान समय, एवं समूह के आकार का निर्धारण- समूह निर्देशन के लिए यह आवश्यक होता है। समूह की क्रियाओं के आधार का आकार निश्चित किया जाए तथा निर्देशन के लिए उचित समय एवं स्थान पर भी चर्चा की जाए।
3. सदस्यों का चुनाव एवं विशिष्टकरण- समूह निर्देशन के लिए सहगामी सदस्यों का चयन बहुत ही महत्वपूर्ण होता है और सदस्यों को अपने दायित्व एवं कार्यों से परिचित भी होना आवश्यक होता है।
4. सदस्यों का अभिविन्यास- समूह के लक्ष्य का सभी सदस्यों का पता होना तथा उद्देश्यों का मापनीय दृष्टिकोण से स्पष्ट होना भी आवश्यक है।
5. क्रियाओं का नियोजन एवं प्राप्त किए गये परिणामों का मूल्यांकन- यदि क्रियाओं का आयोजन उद्देश्यों के अनुरूप करना है तो उसका नियोजन लक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में आवश्यक है।

निष्कर्ष

समूह निर्देशन क्रियाओं को शत प्रतिशत सफल बनाने के लिए विद्यालय व समुदाय से सम्पर्क आवश्यक है क्योंकि बालक का विकास एवं उसकी अभिवृतियों का निर्माण विद्यालय एवं विद्यालय के बाहर भी होता है। या यू कहे की बालक का विकास सम्पूर्ण वातावरण की आपसी अन्तःक्रियाओं का परिणाम होता है। और वातावरण में विद्यालय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। छात्रों के व्यक्तिगत व्यवहार, निर्देशन कार्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

समूह निर्देशन क्रियाएं निदानात्मकता की अपेक्षा निरोधक होती है। जो किसी न किसी रूप में निर्देशन कार्यक्रम को प्रभावित करती हैं। समूह निर्देशन यह प्रयास करता है कि युवाओं को इस प्रकार तैयार किया जाए की आने वाली समस्या का समाधान कर सके। इसके लिए विभिन्न प्रकार की सूचनाएं उपलब्ध कराई जा सकती है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि केवल समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन कर निर्देशन के सम्पूर्ण कार्यक्रम को सफल नहीं बनाया जा सकता।

6.10 निर्देशन की प्रविधि या तकनीकी

समूह निर्देशन कर्ता द्वारा समूह निर्देशन के लिए विभिन्न प्रकार की तकनीकी का प्रयोग किया जाता है। यह प्रविधि समूह की प्रकृति के आधार पर परिवर्तित होती रहती है। उचित प्रविधि का चुनाव करने के लिए शिक्षक के छात्रों की रूचि से परिचित होना चाहिए तथा उस प्रविधि में विद्यार्थियों की

रूचि भी होनी चाहिए। कुछ महत्पूर्ण एवं प्रभाव पूर्ण समूह निर्देशन की क्रियाओं का वर्णन इस प्रकार है-

प्रविधियों के प्रयोग से पहले निम्न क्रियाओं का आयोजन आवश्यक है-

1. प्रथम समूह की बैठक

   कौशल युक्त समूह निर्देशन कर्ता समूह के लिए प्राथमिक बैठक को अत्यन्त महत्वपूर्ण मानते है, तथा उनका कहना है कि समूह निर्देशन कर्ता को अत्यन्त शीघ्र समूह की प्रथम बैठक करानी चाहिए जो निष्चित योजना के अर्न्तगत हो तथा इस योग्य हो कि विद्यार्थी की रूचि का पता लगा सके तथा समूह निर्देशन के लिए सदस्य ऐच्छिक रूप से शामिल हो सके सदस्यों की प्रथम बैठक सम्पर्क स्थापित करने के लिए भी उचित मानी जाती है।

2. समूह नेतृत्वकर्ता की प्रक्रिया

   अनुभवी समूह परामर्श कर्ता समूह की प्रक्रियाओं का हमेषा अभ्यास करते रहते है ताकि उचित समय पर समूह का नेतृत्व किया जा सके। यह एक महत्वपूर्ण कार्य होता है कि समूह के युवा सदस्यों को समूह के अनुकूल नियन्त्रित किया जा सके इसके लिए समूह निर्देशन अत्यन्त आवश्यक हो जाता है।

प्रो. फिटज ने समूह निर्देशन आयोजन कर्ता व संगठनों की समूह निर्देशन प्रक्रिया के दौरान होने वाली त्रुटि को ध्यान में रखते हुए निम्न सुझाव दिये-

- समूह के सदस्यों पर अत्यधिक मानसिक दबाव न दें।
- संक्षिप्त सुरक्षा प्रदान करना आवश्यक।
- अत्यधिक एवं न्यूनतम समूह व्यवहार के मानको का निर्धारण करना
- अत्यधिक सगंठनात्मक
- समूह संगठन का निर्माण
- शोध समिति का गठन जिसके द्वारा उपयोगी सूचनाओं को एकत्रित किया जा सके।
- प्राप्त सुझावों को लागू करना।
- समूह के कार्यषील सदस्यों का निर्माण
- समितियों का गठन
- समितियों का प्रभावपूर्ण उपयोग
- चर्चा करने वाले सदस्यों का प्रषिक्षण
- चर्चा के लिए विषय का चुनाव अग्रिम होना चाहिए ताकि चर्चा की नेतृत्व करने वाला पूर्णत तैयार हो।
- अत्यधिक बातचीत को स्वीकार नही करना चाहिए।

- यदि सम्भव हो तो समस्त सदस्यों की सहभागिता सुनिष्चित होनी चाहिए।
- जिस बिन्दु पर चर्चा हो रही है उस पर समूह की परख होना आवश्यक है।
- समूह के विचारों को आगे की तरफ ले जाना चाहिए।
- संक्षिप्त कथन प्रस्तुत होना चाहिए न कि भाषण।
- हवा में की जाने वाली चर्चा नही होनी चाहिए।
- विचारों में भिन्नता की पहचान होनी चाहिए।
- बैठक समाप्ति से पहले चर्चाओं का सामान्यीकरण किया जाना चाहिए।
- समूह चर्चा के लिए तैयारी होनी चाहिए।
- समूह में सदस्यों को प्रश्न पूछने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- मुद्रित साम्रगी के प्रयोग में कुशलता होनी चाहिए।

समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में विभिन्न प्रकार के तकनीकों का प्रयोग किया गया है-

i. सभा का आयोजन
ii. कैरियर सम्मेलन
iii. श्रव्य-दृष्य सामग्री
iv. सामूहिक क्रियाएं
v. निर्देशन की नैदानिक विधि
vi. समूह प्रतिवेदन
vii. समूह विचार विर्मश
viii. समस्या समाधान
ix. व्याख्या समाधान
x. औपचारिक विचार विमर्श
xi. व्याख्यान
xii. प्रश्नावली
xiii. सम्मेलन
xiv. नाटक का आयोजन
xv. व्यवसायिक सूचनाएं
xvi. चिकित्सीय परामर्श

1.सभा का आयोजन

सार्थक रूप से समूह निर्देशन के लिए सभाओं का आयोजन को प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। जिसके लिए निम्न क्रियाओं का आयोजन करना पड़ता है-

सभा के उद्देश्य- सभा के उद्देश्यों को समझे बिना, परामर्श दाता सभा के आयोजन का प्रभावपूर्ण प्रयोग, निर्देशन कार्यक्रम के लिए नही कर सकता। सामान्यतः निम्न उद्देश्यों के परिप्रेक्ष्य में सभा का आयोजन किया जाता है-

i. छात्र या व्यक्ति समूह के दूसरे सदस्यों की क्रियाओं में रूचि ले सके।
ii. अच्छी आदतों के विकास के लिए।
iii. अच्छे नेतृत्व कर्ता के विकास के लिए।
iv. सार्वजनिक रूप से बौद्धिक विचारों के विकास के लिए।
v. एक साथ पाठ्य सहगामी क्रियाओं से सम्बन्धित सूचना प्रदान करने के लिए।
vi. विद्यालय के समस्त कार्यों में रूचि पैदा करने के लिए
vii. समूह निर्देशन के अन्तर्गत महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा के लिए।
viii. नाटक के रूप में विद्यालय के संस्कारों एवं विचारों को प्रकाश में लाने के लिए।
ix. विद्यालय में समस्याओं के समाधान के लिए।
x. कक्षा में प्रोत्साहन देने के लिए।

सावधानी के साथ सभा के आयोजन की आवश्यकता

यदि शिक्षक या परामर्श दाता विद्यालय में विभिन्न प्रकार की सभाओं का आयोजन सफलतापूर्वक करना चाहता है। तो उसे निष्चित रूप से आयोजन से पूर्व योजना बनानी होगी जिसमें निम्न बातों का ध्यान रखना होगा-

1. सभा का आयोजन पूर्व निर्धारित समय के अनुसार होना चाहिए।
2. प्रत्येक सदस्यों को यह पता होना चाहिए की सभा का आयोजन किस लिए किया जा रहा है।
3. कार्यक्रम समयानुसार तैयार होना चाहिए।
4. कार्यक्रम शैक्षिक रूप से सार्थक होना चाहिए।
5. कार्यक्रम मे कोई अवरोध नहीं होना चाहिए।
6. सभी स्तर की सामग्री उचित स्थान पर होना चाहिए।

समूह निर्देशन की प्रविधि एक शिक्षक से दूसरे शिक्षक के लिए भिन्न होती रहती है तथा उस शिक्षक के भी प्रविधियों में अन्तर होता है। जब वो विभिन्न समूहों को निर्देषित करता है।

समूह निर्देशन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक निर्देशनकर्ता शिक्षक प्रभावपूर्ण तरीके से समूह में सहभागिता न करे। सार्थक सहभागिता असम्भव है। अगर समूह में सदस्य की कोई अपनी

भूमिका नहीं है। समूह निर्देशन कर्ता को समूह चर्चा, सभाओं का आयोजन, सामाजिक क्रियाओं के लिए इससे सम्बन्धित कौशलों में प्रशिक्षित होना आवश्यक है।

2.कैरियर सम्मेलन

कैरियर सम्मेलन प्रविधि परामर्श दाता द्वारा किसी समूह को सूचना देने की महत्वपूर्ण प्रविधि के रूप में प्रयोग की जाती है। इस प्रकार के सम्मेलनों में अत्यधिक मात्रा में सफल व्यक्तियों द्वारा विभिन्न प्रकार के व्यवस्याओं की व्याख्या, व प्रष्नों का जवाब दिया जाता है।

इस प्रकार के सम्मेलनों की अवधि न्यूनतम एक दिन या इससे अधिक होती है। परामर्श दाता द्वारा विद्यालय के शिक्षक एवं विद्यार्थी दोनों से सहायता प्राप्त कर इस सम्मेलन के आयोजन के लिए तैयारी करता है।

सम्मेलन का आयोजन

सम्मेलन के आयोजन में परामर्श के लिए रखे गये विषय अथवा समस्या के अनुकूल विषय विशेष ज्ञ वक्ता का चुनाव किया जाता है। जिसके द्वारा विद्यार्थियों के किसी भी प्रकार के विषय से सम्बन्धित सन्देह को स्पष्ट शब्दों में दूर करने व समझाने का प्रयास करता है जो वर्तमान परिप्रेक्ष्य के बिल्कुल अनुकूल हो इसके अतिरिक्त व्यवसाय आधारित फिल्मों, प्रर्दशनियाँ का आयोजन भी बीच-बीच में होता रहता है।

सम्मेलन के आयोजन में ध्यान रखने वाली सावधानियां

सम्मेलन में समय का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। विषय की महत्ता के अनुकूल समय का आवंटन आवश्यक है। इसका विशेष ध्यान रखना चाहिए।

- चर्चा के लिए विषय के चुनाव में भी विशेष ध्यान रखना होता है। इसमें इस बात का ध्यान रखना पड़ता हैं की जिस कार्य के लिए अथवा जिस विषय पर सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है उस विषय की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कार्यां के प्रकार सम्मेलन के लिए आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता, इत्यादि पर विशेष ध्यान दिया जाता है।
- यदि आवश्यक हो तो आयोजनकर्ताओं के लिए विशेष प्रषिक्षण की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।
- आवश्यक तानुसार पेषेवर व्यक्तियों, कर्मचारियों को आमन्त्रित करना चाहिए।
- सूचना के लिए विभिन्न माध्यमों के प्रयोग की कुषलता पर भी ध्यान देना आवश्यक होता है।

कैरियर सम्मेलन से लाभ

- इस प्रकार के सम्मेलन से विद्यालय समुदाय शिक्षक विद्यार्थी सबके मध्य प्रत्यक्ष अन्तःक्रिया होती जिससे सभी लाभान्वित होते है। तथा समस्या व उसके निदानों से अवगत होते है।
- विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायिक समस्याओं पर विशेष ज्ञों की राय जानने व सुनने का अवसर मिलता है।
- अभिभावक अपने बच्चों के भविष्य के लिए उचित परामर्श लेने के लिए जागरूक हो जाते है।
- विद्यार्थियों के अन्तर्गत अभिप्रेरणा का भाव जागृत होता है।
- विभिन्न प्रकार के निर्देशन के लिए गठित अभिकरण अपने उद्देश्यों एवं दायित्वों के प्रति जागरूक होते है।

3.श्रव्य-दृष्य सामग्री

निर्देशन की इस प्रविधि के अन्तर्गत छात्रों को सूचना प्रदान करने के लिए चलचित्र, फिल्म स्ट्रिप, फोटोग्राफ, टेप, रिकार्डर और पोस्टर का प्रयोग कर उन्हें शैक्षिक एवं व्यावसायिक सूचनाएं प्रदान की जा सकती है। सम्मेलनों द्वारा यह सुझाव प्राप्त होता है। कि शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन के लिए श्रव्यदृष्य साम्रगी का प्रदर्षन किया जा सकता है जिससे छात्रों में इन साम्रगी को देखकर दर्शाये गए चित्रों पर विशेष ण करने, विचार करने की भावना जागृत होती है। जिससे छात्र खुद निर्देषित हो सकते हैं।

श्रव्यदृष्य साम्रगी के लाभ

- श्रव्य-दृष्य सामग्री के द्वारा विभिन्न परिस्थ्तियों में वास्तविक सूचनाएं प्रदान की जा सकती है।
- अन्य प्रकियाओं की अपेक्षा यह प्रविधि सूचना प्रदान करने के लिए सरल मानी जाती है।
- चलचित्रों के द्वारा छात्रों के विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों को एकत्रित कर सक्रिय सूचना प्रदान की जाती है।
- इसके द्वारा छात्रों के समय की बचत एवं उनकी रूचि में वृद्धि की जाती है।
- छात्रों में वैज्ञानिक प्रवृति का विकास होता है।

4.सामूहिक क्रियाएं

शैक्षिक एवं व्यावसायिक सम्मेलनों द्वारा सामूहिक निर्देशन के लिए निम्न क्रियाओं के आयोजन का सुझाव दिया गया जिसका उद्येष्य भी सामूहिक निर्देशन देना होता है।

जैसे संगीत समूह, आर्ट क्लब,व्यवसाय,बाह्य खेल,वैज्ञानिक समाज,विद्यालय के प्रकाषन आदि क्रियाओं का आयोजन कर निर्देशन की प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

5.निर्देशन की नैदानिक विधि

इस विधि के अंतर्गत निर्देशन की प्रकिया को अत्यंत व्यापक रूप से लिया जाता है जिसमें विभिन्न प्रकार के आंकड़ों की सविस्तार व्याख्या के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

इस विधि में साथी समूह के दोस्तों, अभिभावक व शिक्षकों के विचारों को महत्व देते हुए आलोचनात्मक तर्क दिए जाते है। प्राप्त आकडों के छटनीकरण की प्रकिया में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग किया जाता है। जिससे आंकडों को अधिकतम सार्थक एवं वैध ठहराया जा सके इसके व्याख्या के लिए साख्यिंकीय प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

नैदानिक निर्देशन विधि के महत्वपूर्ण चरण

i. आंकड़ों का संग्रह- आंकडों का संग्रह के अन्तर्गत निम्न बातों के संग्रह पर विशेष ध्यान दिया जाता है। व्यक्ति में अभिक्षमता,अभिवृद्धि, व्यक्तित्व के शील गुण इत्यादि।
ii. आकड़ों का विष्लेषण - विष्लेषण के लिए ऐसे आंकड़ों का चुनाव किया जाता है जो समस्या के समझने व व्याख्या करने के लिए सहयोगी हो
iii. आंकड़ों का संष्लेषण- आंकड़ों का इस प्रकार संयोजन किया जाता है कि आंकड़ों की प्रकृति के आधार पर व्यक्ति की समस्या का पता लगाया जा सके।
iv. निदान- आंकड़ों की प्रकृति व व्यक्ति की शैक्षिक एवं व्यवसायिक संरचना द्वारा व्यक्ति की समस्याओं का निदान किया जाता है।
v. सलाह- इसके अर्न्तगत परामर्श लेने वाले को अभिप्रेरित तथा समस्या के परिप्रेक्ष्य में उचित सलाह दी जाती है।
vi. जांच करना- दिये गये उपचारों की जांच की जाती है।
vii. मूल्यांकन- यह परामर्श का अन्तिम चरण होता है, जो जांच से सम्बन्धित होता है।

6.समूह विचार विमर्श

ऐसी प्रविधि में किसी समस्या के परिप्रेक्ष्य में सदस्यों द्वारा आपस में विचार विमर्श करके उचित समाधान ढुंढने का प्रयास किया जाता है। जैसे माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को विभिन्न करियर के विषय में जानकारी होती है। किसी विषय पर समूह विचार विमर्श का आयोजन किया जा सकता है जिसमें समूह के सदस्य बिना किसी झिझक एवं डर के विषय पर चर्चा कर सके।

7.समस्या समाधान

व्यक्तिगत समस्याओं के समाधान के साथ-साथ सामान्य समस्या का समाधान करने के लिए समस्या समाधान विधि का प्रयोग निम्न चरणों में किया जा सकता है-

- समस्या की उत्पति, समस्या की व्याख्या पर प्रकाश।
- सार्थक तथ्यों के आधार पर समस्या समाधान के लिए कार्यविधि करना।
- एकत्रित आंकड़ों के सन्दर्भ में समस्या का विश्लेषण करना।
- सम्भावित उत्तरों की सूची तैयार करना एवं उनका मूल्यांकन करना।
- समूह में उत्तरों की स्वकारिता की स्थिति जानना।

8.अभिनय

छोटे समूह में अभिनय का प्रयोग निर्देशन की तकनीकी के रूप में किया जा सकता अभिनय प्रविधि एक विधि होती है। जिसके माध्यम से वास्तविक जीवन में अभिनय कर किसी विचार में परिवर्तन लाया जा सकता है। इसके लिए समूह के सभी सदस्यों का अभिनय एवं समस्या से अवगत होना आवश्यक है इसके बाद अभिनय का आंबटन एवं सदस्यों को तैयार करना तथा निष्कर्ष एवं पृष्ठपोषण का आयोजन करना।

9.समूह प्रतिवेदन

समूह प्रतिवेदन को समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए किसी बड़े समूह के सदस्यों को दो छोटे-छोटे सदस्यों के समूहों में बांटकर प्रत्येक समूह के सदस्यों को मदद करते हुए प्र्रतिवेदन समस्या से सम्बन्धित उत्तर तैयार करने को कहा जाए उसके बाद प्राप्त प्रतिवेदन को किसी बड़े समूह के निर्देशन के लिए प्रयोग किया जाए।

10.औपचारिक विचार विमर्श

औपचारिक विचार विमर्श निर्देशन के क्षेत्र में योग्य प्रशिक्षित अध्यापकों द्वारा समूह की समस्या पर किया जा सकता है। यह विमर्श वांछित उद्देश्यों पर केन्द्रित होता है जिसके द्वारा समूह के समस्त व्यक्तियों पर लाभ पहुंचता है।

यह समूह निर्देशन की एक अन्य तकनीकी है जिसमें निश्चित विषय पर रोचक रूप से निर्देशन दिया जा सकता है जैसे साक्षात्कार में कैसे प्रवेश किया जाए? परीक्षा की तैयारी कैसे की जाए? आदि बातों के लिए छात्रों को निर्देशन दिया जा सकता हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. समूह निर्देशन क्या है?

2. ____________ के अनुसार समूह निर्देशन समूह परिस्थितियों में प्रयोग किया जाने वाले विचार है। जिसमें निर्देशन सेवा को विद्यालय समूह, या विद्यार्थियों के समूह पर किया जाता है।
3. ____________ने समूह निर्देशन के महत्व को बताते हुए कहा है कि यदि सार्थक अभिवृद्धि एवं अनुभव बड़ी संख्या में बच्चों को प्रदान किया जाए तो बच्चों को किसी समूह विशेष में रखना पड़ेगा और बहुत कम समय में विद्यार्थियों के एक बड़े समूह को सूचना प्रदान कर दी जायेगी।
4. समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन मूल रूप से किन बिन्दुओं को शामिल करता है?
5. समूह निर्देशन क्रियाएं____________ की अपेक्षा ____________ होती है।
6. समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में किन्हीं पाँच प्रकार की तकनीकों के नाम लिखिए।
7. समूह प्रतिवेदन को ____________ की प्रविधि के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

6.11 सारांश

सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि सामूहिक निर्देशन, निर्देशन का एक अंग एवं भाग जिसमें एक आवश्यकता के विभिन्न व्यक्तियों का चयन कर एक समूह का निर्धारण किया जाता है तथा विषय विशेषज्ञ को बुलाकर सामान्य समस्या पर विचार विमर्श किया जाता है। समूह के सभी सदस्यों की समस्याएं एक समान होती है जिस पर वे आपस में अन्तः किया करते हैं और स्वनिर्देशित होते हो समूह निर्देशन कहलाता है। मूल रूप से समूह निर्देशन के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के आंकड़ों का संग्रह करने वाली विधियों को प्रयोग कर आंकड़ों का संग्रह किया जाता है। तथा प्रविधि के रूप में समूह निर्देशन, वृत्तिका अनौपचारिक विचार विमर्श, नाटक, समस्या समाधान आदि विधि का प्रयोग समूह निर्देशन के लिए किया जाता है।

6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. समूह निर्देशन, निर्देशन का एक रूप है। जिसमें निर्देशनकर्ता एक से अधिक व्यक्ति जो एक ही आयु समूह एवं समस्या के होते है, को निर्देशित करता है समूह निर्देशन कहलाता है।
2. क्रो॰ एण्ड क्रो
3. राबर्ट एचनाप .
4. समूह निर्देशन की क्रियाओं का आयोजन मूल रूप से निम्न बिन्दुओं को शामिल करता है-
   i. आवश्यकताओं का आंकलन करना
   ii. समूह निर्देशन का स्थान समय, एवं समूह के आकार का निर्धारण
   iii. सदस्यों का चुनाव एवं विशिष्टकरण

iv. सदस्यों का अभिविन्यास
v. क्रियाओं का नियोजन एवं प्राप्त किए गये परिणामों का मूल्यांकन

5. निदानात्मकता, निरोधक
6. समूह निर्देशन की प्रविधि के रूप में किन्हीं पाँच प्रकार की तकनीकों के नाम हैं-
   i. सभा का आयोजन
   ii. कैरियर सम्मेलन
   iii. श्रव्यदृष्य सामग्री
   iv. सामूहिक क्रियाएं
   v. निर्देशन की नैदानिक विधि
7. समूह निर्देशन

6.13 सन्दर्भ ग्रंथ

1. शर्मा आर ए० एंव चतुर्वेदी शिखा (2008) निर्देशन एंव परामर्श के मूल तत्व आर लाल बुक डिपो मेरठ।
2. जयसवाल सिताराम (2010) शिक्षा में निर्देशन एंव परामर्श अग्रवाल पब्लिकेशन आगरा।
3. अग्रवाल जे० सी० (1991) शैक्षिक एंव व्यवसायिक निर्देशन एंव परामर्श सेवा डांबा हाऊस नई दिल्ली।
4. भटनागर आर० पी० शिक्षा में निर्देशन एंव परामर्श।
5. सिंह राज (1994) शैक्षिक एंव व्यवसायिक निर्देशन।
6. कोचर एस के (1901) भारतीय शिक्षा में निर्देशन।

6.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. समूह निर्देशन से आप क्या समझते हैं। समूह निर्देशन की विभिन्न प्रविधियों का वर्णन कीजिए।
2. समूह निर्देशन की क्रियओं का आयोजन कैसे किया जाता है?
3. समूह निर्देशन के कोई पांच उद्देश्य लिखो।
4. समूह निर्देशन के विभिन्न सिद्धांतों का वर्णन कीजिए।

इकाई 7 - परामर्श की प्रक्रिया: अवधारणा, परामर्श के सिद्धान्त, परामर्श उपागम: निर्देशीय, अनिर्देशीय एवं समन्वित

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 परामर्श की प्रक्रिया की अवधारणा
7.4 परामर्श की प्रक्रिया के मुख्य अंग
7.5 परामर्श की प्रक्रिया के मूलभूत-सिद्धान्त
7.6 परामर्श प्रक्रिया के पद
7.7 परामर्शप्रार्थी और परामर्शदाता में सम्बन्ध
7.8 परामर्श के सिद्धान्त
7.9 परामर्श के विभिन्न दृष्टिकोण या विचारधाराएँ
 7.9.1 निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक परामर्श
 7.9.2 अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श
 7.9.3 समन्वित या संकलक या समाहारक परामर्श
7.10 सारांश
7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ
7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना

परामर्श का महत्वपूर्ण बिन्दु है जब परामर्श प्रार्थी को अपने महत्व एवं जीवनगत धारणाओं के प्रति विश्वास होने लगता है और इस विश्वास उत्पन्न करने में परामर्श को सहायक होना चाहिए। परामर्श की प्रक्रिया के दो प्रमुख अंग परामर्शदाता और परामर्शप्रार्थी है। परामर्श के लक्ष्यों की प्राप्ति परामर्शप्रार्थी एवम् परामर्शदाता के सम्बन्धों पर निर्भर करती है। परामर्श में विचारों का आदान-प्रदान एक महत्वपूर्ण तत्व है। परामर्शदाता में इतनी योग्यता होनी चाहिए कि वह परामर्शप्रार्थी के मनोभावों को पूर्णरूपेण समझ सके। परामर्शप्रार्थी एवं परामर्श में सामरस तथा मिलने के स्थान का शान्तिपूर्ण

होना परामर्श की सफलता के लिए आवश्यक है। परामर्शदाता को अपने कार्य के प्रति निष्ठावान होना चाहिए। किसी तिथि या प्रणाली के अनुगमन में बँधना उसके लिए आवश्यक नहीं है। कहने का तात्पर्य है कि परामर्श के प्रक्रिया में परामर्शदाता को अनेक अनुभवों से गुजरना पड़ता है। इन अनुभवों से लाभ उठाने के के लिये परामर्श के सत्र की पूर्व तैयारी वांछनीय है तथा परामर्शदाता को परामर्श की प्रक्रिया व परामर्श से सम्बन्धित सिद्धान्तों व विचारधाराओं का ज्ञान होना अति आवश्यक है।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. परामर्श की प्रक्रिया से सम्बन्धित अवधारणा से अवगत हो सकेंगे।
2. परामर्श की प्रक्रिया के मुख्य अंगों, पदों व सिद्धान्तों की व्याख्या करा सकेंगे।
3. परामर्शदाता और परामर्शप्रार्थी के सम्बन्धों का वर्णन कर सकेंगे।
4. परामर्श के मुख्य सिद्धान्तों की व्याख्या करा सकेंगे।
5. निर्देशात्मक, अनिर्देशात्मक व समन्वित परामर्श के मध्य अंतर स्पष्ट कर सकेंगे।

7.3 परामर्श की प्रक्रिया की अवधारणा (Concept of Counselling Process)

परामर्श एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी एक व्यावसायिक रूप से प्रशिक्षित व्यक्ति अर्थात् परामर्शदाता के साथ विशिष्ट उद्देश्य को संस्थापित करने के लिए कार्य करता है तथा ऐसे व्यवहारों को सीखता है जिनका अर्जन इन विशिष्ट उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक है। इस प्रक्रिया को सम्पन्न करने से पूर्व इसकी प्रक्रिया के पमुख अंगों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। कोई भी प्रक्रिया किसी न किसी दिशा में एक अथवा अनेक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये ही सम्पन्न की जाती है। अतः लक्ष्य अथवा उद्देश्य किसी प्रक्रिया का मुख्य बिन्दु माना जाता है। इस लक्ष्य को अपने समक्ष रखकर ही प्रयासकर्ता विशिष्ट कार्य का सम्पादन करता है। परामर्श का प्रमुख लक्ष्य विद्यार्थी, अथवा अन्य किसी सेवार्थी में आत्मबोध एवं सामंजस्य की योग्यता का विकास करना है। इस योग्यता के विकसित होने पर वह स्वयं ही अपनी समस्या का समाधान करने योग्य बना जाता है। इस प्रकार लक्ष्य किसी प्रक्रिया की व्यावहारिक क्रियान्वित का प्राथमिक आधार है। इसके अतिरिक्त जिसके लिये प्रयास किया जा रहा है अर्थात् परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी भी परामर्श की प्रक्रिया के प्रमुख आधार बिन्दु होते हैं। इसलिये यह कहा जाता है कि परामर्श एक त्रिधुवीय प्रक्रिया है। जिसके तीन प्रमुख अंग है। लक्ष्य, परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी। परामर्श की सफलता के लिए उसमें निम्न चार आधारभूत मान्यताओं का होना आवश्यक है।

1. परामर्शदाता का अनुभवी होना- परामर्शदाता के प्रभावशाली ढंग से कार्य करने के के लिए उसका प्रशिक्षित, अनुभवी एवं कार्य के प्रति रूझान रखने वाला होना आवश्यक है।
2. इच्छा जानना- परामर्श के लिए यह स्वीकार करना आवश्यक है कि छात्र परामर्श की प्रक्रिया में भाग लेने का इच्छुक है।
3. आवश्यकता की पूर्ति- परामर्श के द्वारा व्यक्ति की तात्कालिक एवं भविष्य-सम्बन्धी दोनों ही प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति होनी चाहिए।
4. उचित वातावरण- परामर्श की सफलता के लिए उचित वातावरण की उपस्थिति आवश्यक है।

7.4 परामर्श की प्रक्रिया के मुख्य अंग (Main Parts of the Counselling Process)

परामर्श की प्रक्रिया के तीन मुख्य अंग हैं-

i. परामर्श का लक्ष्य
ii. परामर्शप्रार्थी
iii. परामर्शदाता

परामर्श की प्रक्रिया का सबसे महत्वपूर्ण घटक लक्ष्य निर्धारण है। इन लक्ष्यों को परामर्शदाता वातावरण एवं समाज के अनुरूप ही निर्धारित किया जाता है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी के सामाजिक , धार्मिक एवं राजनीतिक परिवेश में जो मूल्य एवं आदर्श प्रचलित होंगे, उनके अनुसार ही परामर्श के लक्ष्यों का निर्धारण होगा। लक्ष्यों के निर्धारण में व्यक्ति की आवश्यकताओं एवं रूचियों को उसके परिवेश के सन्दर्भ में देखना होता है। एक प्रकार से परामर्श का लक्ष्य परामर्शप्रार्थी को मूल्यों के पुनरान्वेषण में सहायता देना है।

7.5 परामर्श की प्रक्रिया के मूलभूत-सिद्धान्त (Fundamental Principles of Counselling Process)

मैकडैनियल और शैफ्टल के अनुसार परामर्श प्रक्रिया निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है-

1. स्वीकृति का सिद्धान्त- इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक प्रार्थी को एक व्यक्तित्व के रूप में समझा जाए और उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया जाए। व्यक्ति के अधिकारों को परामर्शदाता पूर्ण सम्मान प्रदान करें।
2. लोकतन्त्रीय आदर्शों के साथ निरन्तरता का सिद्धान्त- सभी सिद्धान्त लोकतंत्रीय आदर्शों के साथ जुड़े हुए हैं। लोकतांत्रिक आदर्श व्यक्ति को स्वीकार करने की माँग करते हैं और दूसरे के अधिकारों का उपयुक्त सम्मान चाहते हैं। परामर्श की प्रक्रिया व्यक्ति के सम्मान के आदर्श पर आधारित है। यह व्यक्तिगत विभिन्नताओं को मानने वाली प्रक्रिया है।

3. व्यक्ति के साथ विचार करने का सिद्धान्त- परामर्श व्यक्ति के साथ सोचने पर बल देता है। 'किसके लिये सोचना' और 'क्यों सोचना'- इन दोनों बातों में भेद करना आवश्यक है। यह परामर्शदाता की भूमिका है कि वह प्रार्थी के आसपास की सभी शक्तियों के बारे में सोचे, प्रार्थी की चिन्तन प्रक्रिया में शामिल हो और उसकी समस्या के सम्बन्ध में प्रार्थी के साथ मिलजुल कर कार्य करे।
4. सीखने का सिद्धान्त - परामर्श की सभी विचारधाराऐं परामर्श पक्रिया में सीखने के तत्वों की विद्यमानता को मानते हैं।
5. व्यक्ति के सम्मान का सिद्धान्त- परामर्श ऐसा सम्बन्ध है, जिसमें कुछ आशा बँधती है तथा वातावरण व्यक्ति के अनुकूल होने लगता है। सभी विचारधाराऐं परामर्श के सापेक्ष सम्बन्ध को स्वीकार करती हैं।

7.6 परामर्श प्रक्रिया के पद (Steps in Counselling Process)

परामर्श प्रक्रिया के विलियमसन और डरले ने निम्नलिखित 6 पदों की चर्चा की है-

1. **विश्लेषण (Analysis)** - यह वह प्रक्रिया है जिससे तथ्यों का संकलन किया जाता है ताकि परामर्शप्रार्थी का अध्ययन किया जा सके।
2. **संश्लेषण (Synthesis)** - इस पद में एकत्रित की गई जानकारी को संगठित किया जाता है।
3. **निदान (Diagnosis)** - इस पद में समस्या के कारणों के बारे में निष्कर्ष निकाला जाता है।
4. **पूर्व अनुमान (Prognosis)** - निदान के उपयोग के बारे में कथन देने को पूर्व-अनुमान कहते हैं
5. **परामर्श (Counselling)** - परामर्शदाता और प्रार्थी द्वारा समायोजन के लिये उठाये गये कदमों को इस पद में रखा गया है।
6. **अनुवर्तन (Follow-up)** - परामर्शदाता की सेवाओं की प्रभावशीलता का मूल्यांकन करने या नई समस्याओं के हल में परामर्शप्रार्थी की सहायता करने के प्रयास इस पद में शामिल रहते हैं।

रोजर्स (Rozers) ने भी विभिन्न पदों का निम्नलिखित पदों में संक्षिप्तिकरण किया है-

1. व्यक्ति सहायता के लिये आता है तथा उसने एक अनुमानित कदम उठा लिया है।
2. सहायता-परिस्थिति को प्रायः परिभाषित किया जाता है। प्रार्थी को इस ख्याल से परिचित कराया जाता है कि परामर्शदाता के पास उत्तर नहीं होते हैं । प्रार्थी को स्वयं ही अपने उत्तर ढूँढने होते हैं। परामर्श का समय आना है यदि वह चाहे।

3. परामर्शदाता स्वतंत्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है। यह स्वतंत्र अभिव्यक्ति समस्या के संदर्भ में होती है। वह चिन्ता तथा अपराधी होने की भावना रोकता है। परामर्शदाता प्रार्थी को यह मानने का प्रयास नहीं करता कि वह गलती पर है या वह सही है। परामर्शदाता प्रार्थी को वैसा ही स्वीकार करता है जैसा वह है। वह केवल स्वतन्त्र अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करता है।
4. परामर्शदाता नकारात्मक भावनाओं को स्वीकार करता है, उन्हें पहचानता और स्पष्ट करता है। परामर्शदाता को प्रार्थी की भावनाओं का उत्तर देना चाहिए।
5. जब व्यक्ति की नकारात्मक भावनाओं की पूर्ण अभिव्यक्ति हो चुकी होती है उसके पश्चात् अनुमानित सकारात्मक अभिव्यक्ति हो।
6. परामर्शदाता सकारात्मक भावनाओं को पहचानता है और उन्हें स्वीकार करता है।
7. इससे स्वयं का बोध और अन्तःदृष्टि होती है।
8. सम्भावित निर्णयों और सम्भावित कार्य-दिशा का स्पष्टीकरण।
9. व्यक्ति द्वारा महत्वपूर्ण सकारात्मक क्रियाओं का प्रारम्भ।
10. आगे फिर अन्तदृष्टि तथा अधिक उपयुक्त बोध का विकास।
11. विकसित स्वतंत्रता की भावना तथा सहायता की घटती हुई आवश्यकता।

ये प्रक्रियायें आवश्यक नहीं कि इसी क्रम में हों। ये पद प्रार्थी-केन्द्रित हैं।

7.7 परामर्शप्रार्थी और परामर्शदाता में सम्बन्ध (Client-Counsellor Relationship)

परामर्श की प्रक्रिया में पारस्परिक सम्पर्क मुख्य साधन माना जाता है। अतः पारस्परिक सम्पर्क की सार्थकता हेतु परामर्शप्रार्थी व परामर्शदाता दोनों को एक-दूसरे को जानना एवं समझना आवश्यक है। दोनो को ही एक-दूसरे का आदर भी करना चाहिए। यदि परामर्शप्रार्थी एवं परामर्शदाता के मध्य समुचित सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाते हैं तो परामर्श की प्रक्रिया सफल नहीं हो सकती है।

परामर्श का महत्वपूर्ण तत्व है - परस्पर विचारों का आदान-प्रदान । यदि विचारों के आदान-प्रदान में कोई विघ्न आता है तो परामर्श अपूर्ण ही रहता है। समुचित परामर्शप्रार्थी-परामर्शदाता सम्बन्धों विकसित करने हेतु कतिपय तकनीकों का विकास किया गया है विलियमसन ने परामर्श प्रविधियों या तकनीकों को निम्नलिखित पांच शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित किया है-

1. **मधुर सम्बन्ध स्थापित करना (Establishing Rapport)** - जब पहली बार प्रार्थी परामर्शदाता के पास आता है तो परामर्शदाता का सबसे पहला कार्य होता है कि उसका स्वागत किया जाए। उसे आरामदेह स्थिति में लाकर प्रार्थी को विश्वास में लेना चाहिए।

मधुर सम्बन्ध स्थापित करने का मुख्य आधार होता है-परमर्शदाता की योग्यता की ख्याति, व्यक्तिगतता का सम्मान तथा साक्षात्कार से पहले विश्वास और विद्यार्थी के साथ सम्बन्धों को विकसित करना।

2. **स्वयं-बोध उत्पन्न करना (Cultivating Self-understanding)** - परामर्शप्रार्थी को स्वयं की योग्यताओं और उत्तरदायित्यों के प्रयोग से पहले ही हो जानी चाहिए। इसके लिये परामर्शदाता को परीक्षण-संचालन और परीक्षण अंकों की व्याख्या का अनुभव होना आवश्यक है। परीक्षण-अंक निदान और पूर्व अनुमान का परामर्श प्रक्रिया में ठोस आधार प्रदान करते हैं।
3. **क्रिया के लिये कार्यक्रम का नियोजन और सुझाव (Advising and Planning a prgoramme of Action)-** परामर्शदाता प्रार्थी के लक्ष्यों, उसकी अभिवृत्तियों या दृष्टिकोणों आदि से प्रारम्भ करता है तथा अनुकूल और प्रतिकूल आंकड़ों या तथ्यों की ओर संकेत करता है। वह साक्षियों या प्रमाणों को तौलता है और वह इस तथ्य को समझता है कि प्रार्थी को कोई विशेष सुझाव क्यों दे रहा है। विलियमसन का मानना है कि परामर्शदाता को अपने दृष्टिकोण का कथन निश्चितता से करना चाहिए। उसे अनिर्णायक की तरह नहीं देखना चाहिए।
4. **व्याख्यात्मक विधि (Explanatory Method)-** व्याख्यात्मक विधि परामर्श में सबसे अधिक वांछित विधि है। इसमें परामर्शदाता ध्यानपूर्वक लेकिन धीरे-धीरे निदानात्मक आंकड़े को समझता है और उन सम्भावित स्थितियों की ओर संकेत करता है जिनमें प्रार्थी की शक्तियों और क्षमताओं का प्रयोग किया जाता सकता है। इसमें आंकड़ों के उपयोग को सविस्तार और ध्यानपूर्वक तर्क सहित समझाया जाता है। इसके पश्चात् प्रार्थी के निर्णय या रूचि को जानकर साक्षात्कार इस निर्णय को लाकर करने के लिए प्रत्यक्ष सहायता प्रदान कर सकता है इस सहायता में उपचारात्मक कार्य और शैक्षिक या शिक्षण नियोजन का कार्य सम्मिलित होते हैं।
5. **अन्य कार्यकर्ताओं का सहयोग (Referal to other personnel Workers)-** कोई भी परामर्शदाता सभी प्रकार के प्रार्थियों की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता । उसे अपनी सीमाओं को पहचानना चाहिए तथा उसे विशिष्टीकृत सहायता के स्रोतो का ज्ञान होना चाहिए। उसे प्रार्थियों को अन्य उपयुक्त स्रोतों की सहायता प्राप्त करने की सलाह देनी चाहिए।

इन उपरोक्त प्रविधियों के अतिरिक्त परामर्श की अन्य प्रविधियां भी हैं जो निम्नलिखित है-

1. **मौन-धारण (Silence)** - कभी-कभी कई परिस्थितियों में मौन रहकर किसी की बात को सुनना बोलने से अधिक प्रभावशाली होता है। जब प्रार्थी अपनी समस्या का वर्णन कर रहा होता है तब परामर्शदाता मौन धारण कर लेता है। इससे प्रार्थी को यह विश्वास हो जाता है

कि परामर्शदाता प्रार्थी की बात को बड़े गौर से सुन रहा है तथा उस पर गम्भीरता से विचार कर रहा है।

2. **स्वीकृति (Acceptance)-** परामर्शदाता प्रार्थी की बात को अस्थाई स्वीकृति दे। कई बार परामर्शदाता कुछ शब्द इस प्रकार से कह देता है कि उनसे यह मालूम पड़ जाता है कि प्रार्थी जो कुछ कह रहा है उसे वह स्पष्टतः समझ रहा है। परन्तु इन शब्दों को परामर्शदाता इस तरह कहता है जिससे प्रार्थी के बोलने के धारा प्रवाह में कोई रूकावट नहीं आती । उदाहरणार्थ- 'ठीक है', 'बहुत अच्छा', 'हूँ' इत्यादि। कई अवसरों पर परामर्शदाता अपनी स्वीकृति प्रदान करने के लिये कोई शब्द नहीं कहता केवल स्वीकारात्मक ढंग से सिर ही हिला देता है।
3. **स्पष्टीकरण (Clarification)-** कई अवसरों पर परामर्शदाता को चाहिए कि वह प्रार्थी की बातों का या उस दिये गये वर्णन का स्पष्टीकरण करें। परामर्शदाता का यह कर्तव्य है कि वह प्रार्थी को इस बात से परिचित करा दे कि वह उसे समझ रहा है तथा स्वीकार है। परन्तु कभी-कभी परामर्शदाता को यह आवश्यक हो जाता है कि वह प्रार्थी के वर्णन का स्पष्टीकरण करते समय प्रार्थी को किसी प्रकार की जोर-जबरदस्ती का आभास न हो।
4. **पुनर्कथन (Restatement)-** स्वीकृति एवं पुनरावृत्ति दोनों से ही प्रार्थी को यह बोध होता है कि परामर्शदाता उनकी बात को समझ रहा है तथा स्वीकार करता है। पुनरावृत्ति के द्वारा परामर्शदाता उसी बात को दोहराता है जिसे प्रार्थी ने वर्णित किया है परन्तु परामर्शदाता पुनर्कथन के समय किसी प्रकार का संशोधन या स्पष्टीकरण प्रार्थी के मापन में नहीं करता है।
5. **मान्यता (Approval) -** अपनी समस्या के बारे में प्रार्थी विभिन्न प्रकार के विचार व्यक्ति करता है। परामर्शदाता इन विचारों में से कुछ को मान्यता प्रदान कर देता है तथा कुछ को नहीं। जिन विचारों को मान्यता प्रदान कर दी जाती है वे प्रार्थी को अत्यधिक प्रभावित करते हैं। प्रार्थी परामर्शदाता के ज्ञान एवं व्यक्तित्व से प्रभावित होता है। यदि परामर्शदाता बीच-बीच में प्रार्थी के विचारों को मान्यता देता रहता है तो मान्यता प्रभावहीन हो जाती है। इस ओर ध्यान दिया जाना चाहिए।
6. **प्रश्न पूछना (Asking Questions)** - प्रार्थी अपनी समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक विचार करने की प्रेरणा देने के लिये परामर्शदाता को कुछ प्रश्न पूछने चाहिए। ये प्रश्न प्रार्थी के वक्तव्य का अंश समाप्त होने के पश्चात् पूछे जाने चाहिए।
7. **हास्य रस (Humour)** - परामर्श के दौरान प्रार्थी के तनाव दूर करने के लिये तथा वार्तालाप को रूचिकर बनाने के लिये हास्य-रस का प्रयोग करना भी एक आवश्यकता सी बन जाती हैं।
8. **सारांश स्पष्टीकरण (Summary Clarification)** - प्रार्थी के वक्तव्य का कुछ भाग लाभकारी नहीं भी हो सकता। इसके कारण समस्या स्वयं ही प्रार्थी को अस्पष्ट दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में परामर्शदाता के लिये आवश्यक हो जाता है कि वह प्रार्थी के भाषण को

संक्षिप्त करे तथा उसका संगठन करे जिससे परामर्शप्रार्थी समस्या को अधिक स्पष्ट रूप से समझ सके। परामर्शदाता का प्रयास यही रहना चाहिए कि वह कभी भी अपनी ओर से विचार न जोड़े।

9. **विश्लेषण (Analysis)** - प्रार्थी की समस्या के लिये परामर्शदाता सामधान प्रस्तुत करने की पहल कर सकता है। लेकिन परामर्शदाता प्रार्थी से उस हल पर अमल नहीं करवा सकता। परामर्शदाता प्रार्थी पर ही छोड़ देता है कि वह उस समाधान को स्वीकार करे या अस्वीकार करे या उसमें कुछ संशोधन करे। इस सम्बन्ध में प्रार्थी पर किसी प्रकार का दबाव नहीं डाला जाता।
10. **व्याख्या या विवेचना (Interpretation)** - परामर्शदाता को प्रार्थी के वक्तव्य की ही विवेचना या व्याख्या करने का अधिकार होना चाहिए। उसे अपनी तरफ से कुछ नहीं जोड़ना चाहिए। परामर्शदाता व्याख्या द्वारा प्रार्थी के वक्तव्य का परिणाम निकालता है। इन निष्कर्षो को निकालने में अकेला प्रार्थी असमर्थ होता है। यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि परामर्शदाता द्वारा निकाले गये निष्कर्ष अन्य परीक्षणों द्वारा निकाले गये निष्कर्षो से मेल खा सकते हैं और नहीं भी।
11. **परित्याग (Regression)**- कई बार प्रार्थी जो कुछ सोचता या कहता है वह त्रुटिपूर्ण होता है। इस प्रकार त्रुटिपूर्ण विचारधाराओं को त्यागना चाहिए। इसका परित्याग करने के लिए परामर्शदाता को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिए ताकि प्रार्थी विद्रोही प्रवृत्ति का न हो जाये और इस परित्याग का प्रार्थी उल्टा अर्थ न निकाल ले।
12. **आश्वासन (Assurance)**- परामर्श की सबसे महत्वपूर्ण तथा मनोवैज्ञानिक पक्ष से जुड़ी प्रविधि के रूप में आश्वासन प्रदान करने से प्रार्थी की समस्या हल होने की आशा बँध जाती है। आश्वासन द्वारा परामर्शदाता प्रार्थी के कथनों को स्वीकार भी करता है और स्वीकृति के साथ-साथ अनुमोदित या समर्थन प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न

1. परामर्श एक ___________ प्रक्रिया है।
2. परमर्श के तीन प्रमुख अंग है, ___________परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी।
3. परामर्श प्रक्रिया के विलियमसन और डरले ने ___________पदों की चर्चा की है।
4. परामर्श की प्रक्रिया में___________ मुख्य साधन माना जाता है।
5. परामर्श का महत्वपूर्ण तत्व है ___________।

7.8 परामर्श के सिद्धान्त (Principles of Counselling)

सिद्धान्त की व्याख्या प्रायः किन्हीं दृष्टिगोचर घटनाओं के अन्तर्निहित नियमों अथवा दिखायी देने वाले सम्बन्धें के प्रतिपादनों के रूप में की जाती है जिनका एक निश्चित सीमा के अन्दर परीक्षण सम्भव है। परामर्श के क्षेत्र में सैद्धान्तिक ज्ञान का विशद भण्डार है। परामर्शकर्ता के लिये इन सैद्धान्तिक आधारों का परिचय आवश्यक है। अध्ययन की सुविधा हेतु, दृष्टिकोणों के आधार पर इन्हें चार मुख्य वर्गों में रखा जा सकता है-

1. प्रभाववर्ती सिद्धान्त (Affectively Oriented Theory)
2. व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviourally Oriented Theory)
3. बोधात्मक सिद्धान्त (Cognitively Oriented Theory)
4. व्यवस्थावादी प्रारूप सिद्धान्त (Systemetic Model Theory)

प्रभाववर्ती सिद्धान्त (Affectively Oriented Theory)

यह सिद्धान्त मूलतः अस्तित्वादी मानववादी दर्शन परम्परा से उत्पन्न हुआ है । इसमें परामर्शप्रार्थी को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने पर विशेष बल दिया जाता है। केम्प (1971), राजर्स (1975), बारूथ तथा हूबर (1985) जैसे विद्वान इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं। उनका मत है कि मानवीय अन्तः क्रिया ही प्रभाववर्ती परामर्शदाता के लिये ध्यान का केन्द्र है। मानवतावादी मनोविज्ञान की शेफर (1978) की प्रमुख मान्यताऐं ही इस सिद्धान्त का आधार है जिन्हें संक्षेप में निम्न रूप से व्यक्त किया जा सकता है-

i. अनुभव की विलक्षणता- वैयक्तिक अनुभव की विलक्षणता तथा वैषयिक वास्तविकता अधिक महत्वपूर्ण है।
ii. समग्रता- व्यक्ति को समग्र रूप से उसके वर्तमान अनुभवों के सन्दर्भों में ही जाना जा सकता है।
iii. सीमाबद्धता- यद्यपि जैवकीय तथा पर्यावरणजनित कारक किन्हीं विशिष्ट रूपों में व्यक्ति को सीमाबद्ध कर सकते हैं फिर भी व्यक्ति को विकसित होने व अस्तित्व निर्माण की क्षमताऐं असीमित रहती हैं। जनतन्त्रीय वातावरण में विशेषतौर पर ऐसा होता है।
iv. आत्म-परिभाषा- मनुष्यता को किसी पदार्थ या तत्व के रूप में सदैव के लिए एक सा परिभाषित नहीं किया जा सकता है। मनुष्यता तो सदैव ही आत्म-परिभाषण की प्रक्रिया में संलग्न रहती है।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि प्रभाववर्ती सिद्धान्त की तीन प्रमुख विशेषताऐं हैं- प्रथम, उनकी अस्तित्वादी धारणा, द्धितीय व्यक्तिकेन्द्रित स्वरूप , तृतीय- समग्रतावादी दृष्टिकोण।

व्यवहारवादी सिद्धान्त (Behaviourally Oriented Theory)

प्रभाववर्ती सिद्धान्तों में जहाँ एक ओर बल इस बात पर दिया जाता है कि परामर्शप्रार्थी कैसा अनुभव करता है वहीं दूसरी ओर व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्शप्रार्थी के अवलोकनीय व्यवहारों पर बल देते हैं। दूसरे शब्दों में, व्यवहारवादी परामर्शप्रार्थी के अनुभवों की अपेक्षा उसके व्यवहारों को जानने व समझने में अधिक रूचि रखते हैं। व्यवहारवादी परामर्शदाता के लिए, भावनाओं या जागरूकता के स्तरों की अन्तर्दृष्टि पर्याप्त नहीं है । वह परिवर्तन के लिए क्रिया या व्यवहार को शब्दों की अपेक्षा अधिक सार्थक स्वीकार करता है। व्यवहारवादी समस्याग्रस्त व्यक्ति के लक्षणों पर अधिक ध्यान देते हैं ये समस्याऐं अधिकांशतः परामर्शप्रार्थी द्वारा अपने व्यवहार करने के ढंग या व्यवहार करने में असफल होने से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार, व्यवहारवादी परामर्शदाता मुख्यतः क्रिया पर बल देते हैं।

ग्लेसर तथा जूनिन (1979) के अनुसार 'वास्तविकता-उपचार' पद्धति पर आधारित इस परामर्श को समझने की दृष्टि से निम्न मान्यताओं का ज्ञान होना आवश्यक है-

i. दूसरों को जानना- प्रत्येक व्यक्ति में, दूसरे व्यक्तियों को अनुभव करने , स्नेह पाने व करने तथा अपना व दूसरे का महत्व समझने की मूलभूत मनोवैज्ञानिक आवश्यकता होती है।
ii. सफलता-असफलता का बोध- व्यक्तियों में दूसरों से अपने को अलग अनुभव करने की भी आवश्यकता होती है। अन्य शब्दों में, यह सफल या असफल होने का आत्मबोध है।
iii. अनुत्तरदायी व्यवहार का कारण- अनुत्तरदायी या गैर-जिम्मेदारपूर्ण व्यवहार तब उत्पन्न होता है जबकि या तो व्यक्ति ने उत्तरदायी रूप से अपनी आवश्यकता पूर्ति के बारे में सीखा नहीं होता है अथवा वे उत्तरदायी रूप से आवश्यकता पूर्ति की क्षमता खो चुके होते हैं।
iv. समकालीन व्यवहार पर ध्यान- चूंकि कोई भी विगत व्यवहार या भूतकाल को परिवर्तित नहीं कर सकता अतः ध्यान समकालीन वर्तमान व्यवहार पर दिया जाना चाहिए।
v. व्यवहार परिवर्तन- चूंकि व्यक्ति भावनाओं, संवेगों अथवा अभिवृत्तियों की अपेक्षा व्यवहार को अधिक आसानी से नियन्त्रित कर सकते हैं अतः परामर्श का मुख्य उद्देश्य व्यवहार -परिवर्तन ही होना चाहिए।
vi. उत्तरदायी ढंग से जुड़ाव- चूंकि केन्द्र बिन्दु वर्तमान तथा अन्तर्वैयक्तिक प्रक्रिया परामर्श का लक्ष्य होती है, इसलिए परामर्शदाता का परामर्शप्रार्थी के साथ व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी ढंग से जुड़ना चाहिए।
vii. विकल्प उत्पन्न हेतु सहायता- परामर्शदाता का मूल कार्य, परामर्शप्रार्थी को परिवर्तन हेतु अनेक विकल्प उत्पन्न करने हेतु सहायता प्रदान करना है।
viii. सम्बद्धता- प्रत्येक व्यक्ति सफल, उत्तरदायी तथा लोगों से सम्बद्ध होना चाहता है, यह वृद्धि बल सभी व्यक्तियों में पाया जाता है।

ix. व्यवहार क्षमता- विशिष्ट अधिगम क्रियाओं के माध्यम से व्यक्ति में उत्तरदायी रूप से व्यवहार करने की क्षमताऐं निर्मित की जा सकती है।

इस प्रकार व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्श में मुख्य बल वर्तमान पर देते हैं अर्थात् अभी व्यक्ति क्या कर रहा है तथा उसके सफल होने के प्रयासों की दिशा क्या है? व्यक्ति में अपने व्यवहार में परिवर्तन लाने की योजना बनाने की क्षमता जाग्रत कर, उसको उत्तरादायी व्यवहार चुनने में समर्थ बनाया जा सकता है।

बोधात्मक सिद्धान्त (Cognitively Oriented Theory)

प्रभाववर्ती तथा व्यवहारवादी सिद्धान्तों से पृथक बोधात्मक सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि संज्ञान या बोध व्यक्ति के संवेगों व व्यवहारों के सबसे प्रबल निर्धारक है। व्यक्ति जो सोचता है उसी के अनुसार अनुभव व व्यवहार करता हैं। बोधात्मक सिद्धान्त की एक अन्य लोकप्रिय एवं प्रचलित विधा कार्य-सम्पादन विश्लेषण सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें व्यवहार की समझ इस मान्यता पर निर्भर करती है कि सभी व्यक्ति अपने पर विश्वास सीख सकते हैं, अपने लिए चिन्तन या विचार कर सकते हैं, अपने निर्णय ले सकते हैं तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ है। इस सिद्धान्त की सामान्य परिकल्पनाओं को हेरिस ने निम्न चार रूपों में दर्शाया है-

i. मैं ठीक हूँ , आप भी ठीक हैं - यह एक स्वस्थ मानसिक दशा है।
ii. मैं ठीक नहीं हूँ , आप भी ठीक नहीं हैं- यह जीवन में निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाले व्यक्तियों की मनोदशा है।
iii. मैं ठीक हूँ , आप ठीक नहीं हैं- यह उस व्यक्ति की मनोस्थिति है जो कि दूसरे को अपने दुखों का कारण स्वीकार करता है।
iv. मैं ठीक नहीं हूँ आप ठीक हैं- यह लोगों की सामान्य मनोस्थिति है जबकि वे अन्यों की तुलना में अपने को शक्तिहीन अनुभव करते हैं।

परामर्शदाता इसके अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी का, उसी नष्ट अहं दशा के पुननिर्माण हेतु प्रेरित करता है। समयानुकूल अहं दशा के उपयोग की प्रणाली अपनाने में सहायता करता है तथा उसे जीवन में सकारात्मक दृष्टिकोण अपनाने व विकसित करने की क्षमता दृढ़ करने में सबलता प्रदान करने में सहायता देता हे।

व्यवस्थावादी प्रारूप सिद्धान्त (Systemetic Model Theory)

व्यवस्थावादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता परामर्श का विभिन्न चरणों में संयोजित होना है। चरणों के अनुरूप इस सिद्धान्त में परामर्श की विभिन्न अवस्थाऐं स्वीकार की गयी है। सभी अवस्थाऐं एक-दूसरे से जुड़ी व अन्तः क्रियाशील मानी जाती हैं। यही व्यवस्था-प्रारूप मूलतः इस सिद्धान्त का आधार है व परामर्श की एक विशिष्ट प्रविधि का जनक है। संक्षेप में इन अवस्थाओं को इस प्रकार से जाना जा सकता है-\

i. प्रथम अवस्था- समस्या अन्वेषण (Problem Exploration)
ii. द्वितीय अवस्था- द्विआयामी समस्या परिभाषा (Two-Dimensional Problem Definition)
iii. तृतीय अवस्था- विकल्पों का अभिज्ञान करना (Identification of Alternatives)
iv. चतुर्थ अवस्था- आयोजना (Planning)
v. पंचम अवस्था- क्रिया-प्रतिबद्धता (Action Commitment)
vi. षष्ठ्म अवस्था- मूल्यांकन एवं फीडबैक (Assessment and Feedback)

इस सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि व्यक्ति जीवन में एकीकरण के उच्चतम स्तर की प्राप्ति हेतु सदैव संलग्न रहता है। इसलिए परामर्श की व्यवस्था व्यावहारिक होनी चाहिए जो कि एकीकरण की एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना में सक्षम हो जिसके द्वारा समकालीन जगत तथा उद्विकसित होने वाले व्यक्ति, दोनों के ही विषय में इस लाभदायी अभिमत का निर्माण हो सके।

अभ्यास प्रश्न

6. नप्रभाववर्ती सिद्धान्त मूलतः ________________दर्शन परम्परा से उत्पन्न हुआ है।
7. व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्शप्रार्थी के________________व्यवहारों पर बल देते हैं।
8. बोधात्मक सिद्धान्त की एक अन्य प्रचलित विधा ____________ विश्लेषण सिद्धान्त पर आधारित है।
9. व्यवस्थावादी सिद्धान्त की प्रमुख विशेषता परामर्श ________________ में संयोजित होना है।

7.9 परामर्श के विभिन्न दृष्टिकोण या विचारधाराएँ (Different School of Thoughts in Counselling)

परामर्श प्रक्रिया की प्रकृति को देखते हुए तथा परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए परामर्श की तीन प्रमुख विचारधाराएँ हैं जो कि निम्नलिखित हैं-

1. निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक परामर्श
2. अनिर्देशीय या प्रार्थी केन्द्रित या अनुमत परामर्श
3. समन्वित परामर्श

निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक परामर्श (Directive or Counsellor Centred or Prescriptive Counselling)

इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिर्निसोटा विश्वविद्यालय के ई0जी0 विलियमसन हैं इस प्रकार इस विचारधारा के अन्तर्गत परामर्शदाता प्रार्थी की समस्या को हल करने का मुख्य उत्तरादायित्व अपने ऊपर लेता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता समस्या की खोज और उसे परिभाषित करता है, निदान करता है तथा समस्या के उपचार के बारे में बताता है।

निर्देशीय परामर्श की अवधारणाएँ (Basic Assumptions of Direvtive Counselling)

एन्ड्रीयूस और विली के अनुसार निर्देशीय परामर्श की मूलभूत अवधारणाएँ निम्नलिखित हो सकती हैं-

i. सलाह देने की सक्षमता- परामर्शदाता के पास श्रेष्ठ प्रशिक्षण, अनुभव और सूचना होती है। वह समस्या के समाधान के बारे में सलाह देने के लिये अधिक सक्षम है।
ii. परामर्श एक बौद्धिक प्रक्रिया है- किसी प्रार्थी की कुसमायोजनता से उसकी बौद्धिक योग्यता पूर्णतया नष्ट नहीं होती । अतः परामर्श प्राथमिक रूप से बौद्धिक प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्षों की बजाय बौद्धिक पक्षों पर बल देता है।
iii. प्रार्थी की समस्या समाधान में अक्षमता- परामर्श की यह अवधारणा भी है कि प्रार्थी में सदा ही समस्या समाधान की क्षमता नहीं होती।

इस प्रकार हम देखेते हैं कि इसमें प्रत्यक्ष और व्याख्यात्मक विधियों की सलाह दी जाती है। इस प्रकार के परामर्श में व्यक्ति की अपेक्षा समस्या पर ध्यान हो और प्रार्थी सारी प्रक्रिया में सहयोग करे। प्रार्थी को परामर्शदाता के अधीन कार्य करना होता है न कि उसके साथ मिलकर।

निर्देशीय परामर्श के सोपान (Steps in Directive Counselling)

निर्देशीय परामर्श के निम्नलिखित छः सोपान दिए हैं-

i. **विश्लेषण (Analysis)** - विश्लेषण के अन्तर्गत परामर्श के बारे में सही जानकारी प्राप्त करने के लिए अनेक स्रोतों द्वारा आधार-सामग्री एकत्रित की जाती है।
ii. **संश्लेषण (Synthesis)-** द्वितीय सोपान में संकलित आधार सामग्रियों को क्रमबद्ध, व्यवस्थित एवं संक्षेप में प्रस्तुत किया जाता है। जिससे परामर्शप्रार्थी के गुणों, न्यूनताओं समायोजन एवं कुसमायोजन की स्थितियों का पता लगाया जा सके।
iii. **निदान (Diagnosis)** - निदान के अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी द्वारा अभिव्यक्ति समस्या के कारण तत्वों तथा उनकी प्रकृति के बारे में निष्कर्ष निकाले जाते हैं।
iv. **पूर्व अनुमान (Prognosis)** - इसमें परामर्शप्रार्थी की समस्या के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जाती है

v. **परामर्श या उपचार (Counselling or Treatment)** - पंचम सोपान में परामर्शदाता परामर्शप्रार्थी के समायोजन तथा पुनः समायोजन के बारे में वांछनीय प्रयास करता है।

vi. **अनुवर्तन (Follow-Up)** - इसमें परामर्शप्रार्थी की नयी समस्याओं के पुनः घटित होने की सम्भावनाओं से निपटने में सहायता की जाती है और परामर्शप्रार्थी को प्रदान किए गए परामर्श की प्रभावशीलता का मूल्यांकन किया जाता है।

निर्देशीय परामर्श की विशेषताएँ (Characterstics of Directive Counselling)

i. प्रक्रिया में परामर्शदाता मुख्य भूमिका निभाता है।

ii. वह प्रार्थी को सलाह प्रदान करता है।

iii. इस प्रक्रिया के केन्द्र-बिन्दु में व्यक्ति नहीं, बल्कि समस्या है।

iv. प्रार्थी परामर्शदाता के अधीन कार्य करता है न कि साथ।

v. इस परामर्श में , जिन विधियों का प्रयोग किया जाता है वे प्रत्यक्ष, प्रभावी और व्याख्यात्मक होती हैं।

vi. परामर्श व्यक्ति के व्यक्तित्व के संवेगात्मक पक्ष की बजाय बौद्धिक पक्ष पर अधिक बल देता है।

निर्देशीय परामर्श की सीमाएँ (Limitiation of Directive Counselling)

i. इस प्रक्रिया में प्रार्थी अधिक निर्भर होता है वह कुसमायोजन की नई समस्याओं का समाधान करने के भी अयोग्य होता है।

ii. क्योंकि प्रार्थी परामर्शदाता से कभी भी स्वतन्त्र नहीं हो पाता, यह उत्तम और प्रभावी निर्देशन नहीं है।

iii. जब तक व्यक्ति स्वयं के अनुभवों द्वारा कुछ दृष्टिकोणों या अभिवृत्तियों का विकास नहीं कर लेता तब तक वह स्वयं निर्णय नहीं ले सकता। इस प्रकार के अनुभव तथा दृष्टिकोणों के विकास का इस प्रकार के निर्देशन कार्यक्रम में सदा अभाव रहता है।

iv. परामर्शदाता प्रार्थी को भविष्य में गलतियों को करने से बचाने में असमर्थ रहता है।

v. परामर्शप्रार्थी के बारे में जानकारियों का अभाव रहता है जिससे गलत परामर्श सम्भव है।

अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श (Non-Directive or Client-Centered or Permissive Counselling)

निर्देशीय परामर्श के विपरीत अनिर्देशात्मक परामर्श परामर्शप्राथी-केन्द्रित होता है। इस प्रकार के परामर्श में परामर्शप्रार्थी को बिना किसी प्रत्यक्ष निर्देश के आत्मोपलब्घि एवं आत्मसिद्धि तथा

आत्मनिर्भरता की ओर उन्मुख किया जाता है। इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने तथा इसे सर्वप्रचलित करने का श्रेय कार्ल आर रोजर्स (Carl R. Rogers) को जाता है।

अनिर्देशीय परामर्श की मूलभूत अवधारणाएँ (Basic Assumptions in Non-Directive Counselling)

i. व्यक्ति की मर्यादा में विश्वास (Belief in the dignity of man) - रोजर्स व्यक्ति की मान-मर्यादा में विश्वास रखता है। वह व्यक्ति को स्वयं निर्णय लेने में सक्षम मानता है तथा ऐसे करने के उसके अधिकार को स्वीकार करता है।
ii. वास्तवीकरण की ओर प्रवृत्ति (Tendancy toward Acutualization)- रोजर्स ने इस बात पर बल दिया कि व्यक्ति की वृद्धि और विकास की क्षमता व्यक्ति की वह आवश्यक विशेषता है जिस पर परामर्श ओर मनोचिकित्सा विधियाँ निर्भर करती हैं।
iii. व्यक्ति विश्वास योग्य है (Man in Trustworthy) - रोजर्स व्यक्ति का मानना है कि व्यक्ति विश्वास योग्य है क्योंकि व्यक्ति कुछ शक्तियों के साथ पैदा होता है जिन पर नियंत्रण करना आवश्यक है यदि स्वस्थ व्यक्तित्व विकास होने देना है।
iv. व्यक्ति अपनी बुद्धि से अधिक विवकेशील है (Man is wiser than his intellect)- व्यक्ति अपनी बुद्धि का उपयोग करते हुए विवकेशील होकर समस्याओं के सम्बन्ध में सही निर्णय ले सकता है।

अनिर्देशीय परामर्श के सोपान (Steps in Non-Directive Counselling)

i. **वार्तालाप (Conversation)** - प्रथम सोपान में परामर्शदाता तथा परामर्शप्रार्थी के बीच अनेक बैठकों में अनौपचारिक रूप से विभिन्न विषयों पर बातचीत होती है। अनेक बार ये दोनों किसी उद्देश्य के मिलते हैं लेकिन प्रथम सोपान का मुख्य उद्देश्य है- परस्पर सौहार्द की स्थापना करना है जिससे परामर्शप्रार्थी बिना किसी संकोच से अपनी बात को कहने हेतु मानसिक रूप से तैयार हो सके। परामर्शप्रार्थी द्वारा यह प्रयास किया जाता है कि वह परामर्शप्रार्थी के साथ मित्र. के समान सम्बन्ध स्थापित कर ले और उसके समक्ष ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दे कि मित्र-चिकित्सा की पद्धति को प्रयुक्त किया जा सके।
ii. **जाँच-पड़ताल (Probing)-** परामर्शप्रार्थी की वैयक्तिक समस्या, परिस्थिति एवं सन्दर्भों के सम्बन्ध में सविस्तार जाँच-पड़ताल की व्यवस्था की जाती है। इसलिए परामर्शदाता विभिन्न परोक्ष प्रविधियों का प्रयोग करता है।

iii. **संवेगात्मक अभिव्यक्ति (Emotional Release)** - परामर्शप्रार्थी की व्यवस्थाओं , भावनाओं तथा मानसिक तनावों को अभिव्यक्त करने हेतु उसे अवसर प्रदान करना ही इस सोपान का मुख्य उद्देश्य है।

iv. **परोक्ष रूप से प्रदान किए गए सुझावों पर चर्चा (Discussion on Indirectly given Suggestion)**- इस सोपान में परामर्शप्रार्थी परामर्शदाता द्वारा दिए गए सुझावों को एक आलोचनात्मक दृष्टि से देखता है।

v. **योजना का प्रतिपादन (Project Formulation)**- इसमें परामर्शदाता को स्वयं की समस्या का हल प्राप्त करने हेतु एक वास्तविक योजना का निर्माण करने का अवसर प्रदान किया जाता है। इस योजना के स्वरूप , प्रभाव इत्यादि के सम्बन्ध में दोनों विचार-विमर्श करते हैं।

vi. **योजना का क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन (Project Implementation and Evaluation)**- षष्ठम् सोपान के अन्तर्गत परामर्शप्रार्थी द्वारा बनाई गई योजना को क्रियान्वित किया जाता है तथा उसकी प्रभावशीलता ज्ञात करने के लिए आत्म-मूल्यांकन की भी व्यवस्था भी इस सोपान में की जाती हैं।

अनिर्देशीय परामर्श की प्रमुख विशेषताएँ (Main Characteristics of Non-Directive Counselling)

i. यह प्रार्थी-केन्द्रित परामर्श है।
ii. यह इस सिद्धान्त पर आधारित होता है कि व्यक्ति में इतनी क्षमता और शक्ति होती है जिससे कि उसकी वृद्धि और विकास हो सके ताकि वह व्यक्ति वास्तविकता में परिस्थितियों का सामना कर सके।
iii. इस परामर्श विचारधारा में परामर्शदाता सबसे अधिक निष्क्रिय होता है।
iv. व्यक्ति जैसा है वैसा ही स्वीकार किया जाता है और वह अपने किसी भी दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करने में स्वतंत्र है।
v. इसके द्वारा मनोवैज्ञानिक समायोजन में सुधार होता है।
vi. इसके प्रयोग से मनोवैज्ञानिक तनाव कम होते है
vii. इस प्रकार के परामर्श में सुरक्षात्मकता में कमी आती है।
viii. इस प्रकार के परामर्श में प्रार्थी स्वयं के चित्र में और स्वयं के बारे में वांछित या आदर्श चित्र में बहुत अधिक निकटता होती है।
ix. प्रार्थी का व्यवहार संवेगात्मक रूप से अधिक परिपक्व माना जाता है।
x. प्रार्थी-केन्द्रित परामर्श में परामर्शदाता का सामान्य लक्ष्य होता है- प्रार्थी के स्वयं के संगठन और कार्यशीलता में परिवर्तन लाना है।
xi. इस परामर्श में सम्पूर्ण उत्तरदायित्व प्रार्थी या व्यक्ति पर ही रहता है।

अनिर्देशीय परामर्श की सीमाएँ (Limitation of Non-Directive Counselling)

i. यह परामर्श मनोविश्लेषण की तरह गहरा नहीं होता।

ii. प्रार्थी को अपने वर्तमान दृष्टिकोणों की स्वतंत्र अभिव्यक्ति की आज्ञा होती है, लेकिन इसमें यह बताने का प्रयास नहीं किया जाता कि ये वर्तमान दृष्टिकोण क्यों होते हैं। इसमें भूतकाल के बारे में कोई खोज नहीं, कोई सुझाव नहीं, पुनः शिक्षा का कोई प्रयास नहीं होता।

iii. परामर्शदाता को लचीलेपन की आज्ञा का अभाव भी इस परामर्श की एक कमी है।

iv. प्रार्थी-केन्द्रित सिद्धान्त की मूलभूत कमी यह है कि इसमें इस बात की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता कि उद्दीपक स्थिति और वातावरण की प्रकृति व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करती है।

v. प्रार्थी -केन्द्रित परामर्श सिद्धान्त के अन्तर्गत बहुत सी परामर्श-परिस्थितियाँ सफलतापूर्वक नहीं आती।

vi. यह अधिक समय खर्च करने वाली प्रक्रिया है। एक बार शुरू करने के पश्चात् प्रार्थी अपना संवाद समाप्त हीं नहीं करता। इससे कई अन्य व्यक्ति परामर्श लेने से वंचित रह जाते हैं।

vii. प्रार्थी के साधनों, निर्णयों और बुद्धिमता पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

viii. कई बार परामर्शदाता की निष्क्रियता से प्रार्थी अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में हिचकिचाहट अनुभव करता है।

समन्वित या संकलक या समाहारक परामर्श (Eclectic Counselling)

जो परामर्शदाता निर्देशीय अथवा अनिर्देशीय विचारधाराओं से सहमत नहीं है उन्होंने परामर्श के एक अन्य प्रारूप का विकास किया है जिसे संग्रही या समन्वित परामर्श कहा जाता है। संग्रही परामर्श में निर्देशीय एवं अनिर्देशीय दोनों प्रारूपों की अच्छी बातों को ग्रहण किया गया है। एक प्रकार से यह दोनों के बीच का परामर्श प्रारूप है जिसे मध्यमार्गीय कहा जा सकता है।

इस प्रकार के परामर्श में परामर्शदाता न तो अधिक सक्रिय होता है और न ही अधिक निष्क्रिय हें इस प्रकार के परामर्श के मुख्य प्रवर्तक एफ0 सी0 थोर्न हैं इस प्रकार के परामर्श में व्यक्ति की आवश्यकताओं और उसके व्यक्तित्व का अध्ययन परामर्शदाता द्वारा ही किया जाता है। इसके पश्चात् परामर्शदाता उन प्रविधियों का चयन करता है जो व्यक्ति के लिये अधिक उपयोगी या सहायक है।

इस प्रकार के परामर्श -प्रक्रिया में परामर्शदाता पहले निर्देशीय परामर्श विधि के अनुसार शुरू कर सकता है तथा कुछ समय बाद अनिर्देशीय परामर्श विधि का अनुसरण कर सकता है। या इसके विपरीत जैसी स्थिति चाहे। इस प्रकार समन्वित परामर्श में दोनों परामर्शदाता और प्रार्थी सक्रिय और सहयोगात्मक होते हैं। दोनो बारी-बारी से वार्तालाप करते हैं और संयुक्त रूप से समस्या का समाधान करते हैं।

इस प्रकार के परामर्श में जो प्रविधियां प्रयोग की जाती हैं- वे है पुनः विश्वास, सूचना प्रदान करना, केस-हिस्ट्री, परीक्षण आदि।

समन्वित परामर्श के सोपान (Steps in Eclectic Counselling)

समन्वित परामर्श के सोपान निम्नलिखित हैं-

i. प्रार्थी की आवश्यकताओं और व्यक्तित्व की विशेषताओं का अध्ययन (Study of the needs and personality characteristics of the client)- इस विचारधारा के अन्तर्गत परामर्शदाता पहले-पहल प्रार्थी की आवश्यकताओं के बारे में छानबीन करता है। इसी सोपान के अन्तर्गत वह व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं के बारे में जानकारी एकत्रित करता है।

ii. प्रविधियों का चयन (Selection of Techniques)- इस सोपान के अन्तर्गत आवश्यकतानुसार प्रविधियों का चयन किया जाता है तथा उनका प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों का प्रयोग व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार ही किया जाता है।

iii. प्रविधियों का प्रयोग (Application of Techniques)& - चयन की गई प्रविधियों का प्रयोग विशिष्ट परिस्थितिों में ही किया जाता है। जिन प्रविधियों को चुना जाता है उनकी उपयोगिता प्रार्थी की परिस्थिति के अनुसार ही देखी जाती है।

iv. प्रभावशीलता का मूल्यांकन (Evaluation of Effectiveness) - इस सोपान के अन्तर्गत प्रभावशीलता का मूल्यांकन विभिन्न विधियों से किया जाता है।

v. परामर्श की तैयारी (Preparations for Counselling) - इस सोपान के अन्तर्गत पथ-पदर्शन के लिये आवश्यक तैयारी की जाती है।

vi. प्रार्थी और अन्य व्यक्ति की राय प्राप्त करना (Seeking the opnion of the Client and other related people) - परामर्श सम्बन्धी कार्यक्रम एवं अन्य उद्देश्यों तथा विषयों के बारे में प्रार्थी तथा उससे सम्बन्धित अन्य व्यक्तियों से राय प्राप्त की जाती है।

समन्वित परामर्श की विशेषताएँ (Characteristics of Eclectic Counselling)

थार्न (Thorne) के अनुसार समन्वित परामर्श की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं-

i. इसमें वस्तुनिष्ठ एवं समन्वयपरक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

ii. परामर्श के प्रारम्भ में प्रार्थी की सक्रियता वाली प्रविधियों का प्रयोग अधिक होता है और इसमें परमर्शदाता निष्क्रिय होता है।

iii. इसमें कार्य-कुशलता एवं उपचार प्राप्त करने को विशेष महत्व प्रदान किया जाता हैं।

iv. इसके प्रयोग में अल्पव्यय के सिद्धान्त को ध्यान में रखा जाता है।

v. इस प्रकार के परामर्श में समस्त विधियों और प्रविधियों के प्रयोग के लिये परामर्शदाता में व्यावसायिक कुशलता एवं दक्षता का होना अनिवार्य होता है।
vi. प्रार्थी की आवश्यकता को ध्यान में रखकर ही यह निर्णय लिया जाता है कि कब निर्देशीय विधि का प्रयोग किया जाए और कब अनिर्देशीय विधि का।
vii. प्रार्थी को अवसर उपलब्ध कराने पर बल दिया जाता है ताकि वह स्वयं समस्या का हल खोज सके।

समन्वित परामर्श की सीमाएँ (Limitation of Eclectic Counselling)

i. परामर्श का यह प्रकार अस्पष्ट और अवसरवादी है।
ii. दोनों निर्देशीय और अनिर्देशीय परामर्शों को मिश्रित नहीं किया जा सकता।
iii. इसमें यह प्रश्न उठता है कि प्रार्थी को कितनी स्वतन्त्रता प्रदान की जाये। इसके बारे में कोई निश्चित नियम नहीं हो सकता।

अभ्यास प्रश्न

10. परामर्श प्रक्रिया की _____________ प्रमुख विचारधाराएँ हैं ।
11. निर्देशीय परामर्श विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिर्निसोटा विश्वविद्यालय के _____________ हैं।
12. निर्देशीय परामर्श प्रक्रिया में _____________ मुख्य भूमिका निभाता है।
13. अनिर्देशात्मक परामर्श _____________ केन्द्रित होता है।
14. अनिर्देशीय सिद्धान्त को प्रतिपादित करने श्रेय _____________ को जाता है।
15. अनिर्देशात्मक परामर्श विचारधारा में परामर्शदाता सबसे अधिक _____________ होता है।
16. समन्वित परामर्श को _____________ कहा जा सकता है।
17. समन्वित परामर्श मुख्य प्रवर्तक _____________ हैं।
18. समन्वित परामर्श में _____________ एवं समन्वयपरक विधियों का प्रयोग किया जाता है।

7.10 सारांश

परामर्श एक त्रिध्रुवीय प्रक्रिया है। जिसके तीन प्रमुख अंग है। लक्ष्य, परामर्शदाता एवं परामर्शप्रार्थी। परामर्श की सफलता के लिए उसमें निम्न चार आधारभूत मान्यताओं का होना आवश्यक है- (1) इच्छा जानना (2) परामर्शदाता का अनुभवी होना (3) उचित वातावरण (4) आवश्यकता की पूर्ति- परामर्श की प्रक्रिया के तीन मुख्य अंग हैं-परामर्श का लक्ष्य, परामर्शप्रार्थी एवं परामर्शदाता। परामर्श

की प्रक्रिया का सबसे महत्वूपर्ण घटक लक्ष्य निर्धारण है। एक प्रकार से परामर्श का लक्ष्य परामर्शप्रार्थी को मूल्यों के पुनरान्वेषण में सहायता देना है। मैकडैनियल और शैफ्टल के अनुसार परामर्श प्रक्रिया निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित है- (1) स्वीकृति का सिद्धान्त (2) व्यक्ति के सम्मान का सिद्धान्त (3) व्यक्ति के साथ विचार करने का सिद्धान्त (4) लोकतन्त्रीय आदर्शों के साथ निरन्तरता का सिद्धान्त (5) सीखने का सिद्धान्त परामर्श प्रक्रिया के विलियमसन और डरले ने निम्नलिखित 6 पदों की चर्चा की है- (1) विश्लेषण (2) संश्लेषण (3) निदान (4) पूर्व अनुमान (5) परामर्श (6) अनुवर्तन। परामर्श का महत्वपूर्ण तत्व है - परस्पर विचारों का आदान-प्रदान । यदि विचारों के आदान-प्रदान में कोई विघ्न आता है तो परामर्श अपूर्ण ही रहता है। समुचित परामर्शप्रार्थी-परामर्शदाता सम्बन्धों विकसित करने हेतु कतिपय तकनीकों का विकास किया गया है विलियमसन ने परामर्श प्रविधियों या तकनीकों को निम्नलिखित पांच शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णित किया है- ;1 मधुर सम्बन्ध स्थापित करना ;2 स्वयं-बोध उत्पन्न करना ;3 क्रिया के लिये कार्यक्रम का नियोजन और सुझाव ;4 व्याख्यात्मक विधि ;5 अन्य कार्यकर्ताओं का सहयोग। इन उपरोक्त प्रविधियों के अतिरिक्त परामर्श की अन्य प्रविधियां भी हैं जो निम्नलिखित है- (1) मौन-धारण (2) स्वीकृति (3) स्पष्टीकरण (4) पुनर्कथन (5) मान्यता (6) प्रश्न पूछना (7) हास्य रस (8) सारांश स्पष्टीकरण (9) विश्लेषण (10) व्याख्या या विवेचना (11) परित्याग (12) आश्वासन।

परामर्शकर्ता के लिये सैद्धान्तिक आधारों का परिचय आवश्यक है। अध्ययन की सुविधा हेतु, दृष्टिकोणों के आधार पर इन्हें चार मुख्य वर्गों में रखा जा सकता है-

1. प्रभाववर्ती सिद्धान्त -यह सिद्धान्त मूलतः अस्तित्वादी मानववादी दर्शन परम्परा से उत्पन्न हुआ है । इसमें परामर्शप्रार्थी को प्रभावपूर्ण ढंग से समझने पर विशेष बल दिया जाता है। केम्प (1971), राजर्स (1975), बारूथ तथा हूबर (1985) जैसे विद्वान इस सिद्धान्त के प्रमुख समर्थक हैं। उनका मत है कि मानवीय अन्तः क्रिया ही प्रभाववर्ती परामर्शदाता के लिये ध्यान का केन्द्र है। मानवतावादी मनोविज्ञान की शेफर (1978) की प्रमुख मान्यताऐं ही इस सिद्धान्त का आधार है।
2. व्यवहारवादी सि़द्धान्त -प्रभाववर्ती सिद्धान्तों में जहाँ एक ओर बल इस बात पर दिया जाता है कि परामर्शप्रार्थी कैसा अनुभव करता है वहीं दूसरी ओर व्यवहारवादी सिद्धान्त परामर्शप्रार्थी के अवलोकनीय व्यवहारों पर बल देते हैं। दूसरे शब्दों में, व्यवहारवादी परामर्शप्रार्थी के अनुभवों की अपेक्षा उसके व्यवहारों को जानने व समझने में अधिक रूचि रखते हैं। व्यवहारवादी परामर्शदाता के लिए, भावनाओं या जागरूकता के स्तरों की अन्तर्दृष्टि पर्याप्त नहीं है । वह परिवर्तन के लिए क्रिया या व्यवहार को शब्दों की अपेक्षा अधिक सार्थक स्वीकार करता है। व्यवहारवादी समस्याग्रस्त व्यक्ति के लक्षणों पर अधिक ध्यान देते हैं ये समस्याऐं अधिकांशतः परामर्शप्रार्थी द्वारा अपने व्यवहार करने के ढंग या

व्यवहार करने में असफल होने से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार, व्यवहारवादी परामर्शदाता मुख्यतः क्रिया पर बल देते हैं।

3. बोधात्मक सिद्धान्त-प्रभाववर्ती तथा व्यवहारवादी सिद्धान्तों से पृथक बोधात्मक सिद्धान्त में यह स्वीकार किया जाता है कि संज्ञान या बोध व्यक्ति के संवेगों व व्यवहारों के सबसे प्रबल निर्धारक है। व्यक्ति जो सोचता है उसी के अनुसार अनुभव व व्यवहार करता हैं। बोधात्मक सिद्धान्त की एक अन्य लोकप्रिय एवं प्रचलित विधा कार्य-सम्पादन विश्लेषण सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें व्यवहार की समझ इस मान्यता पर निर्भर करती है कि सभी व्यक्ति अपने पर विश्वास सीख सकते हैं, अपने लिए चिन्तन या विचार कर सकते हैं, अपने निर्णय ले सकते हैं तथा अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त करने में समर्थ है।
4. व्यवस्थावादी प्रारूप सिद्धान्त -इस सिद्धान्त की प्रमुख मान्यता यह है कि व्यक्ति जीवन में एकीकरण के उच्चतम स्तर की प्राप्ति हेतु सदैव संलग्न रहता है। इसलिए परामर्श की व्यवस्था व्यावहारिक होनी चाहिए जो कि एकीकरण की एक ऐसी व्यवस्था की कल्पना में सक्षम हो जिसके द्वारा समकालीन जगत तथा उद्विकसित होने वाले व्यक्ति, दोनों के ही विषय में इस लाभदायी अभिमत का निर्माण हो सके।

परामर्श प्रक्रिया की प्रकृति को देखते हुए तथा परामर्शदाता की भूमिका को देखते हुए परामर्श की तीन प्रमुख विचारधाराएँ हैं जो कि निम्नलिखित हैं-

1. निर्देशीय या परामर्शदाता-केन्द्रित या नियोजक परामर्श -इस विचारधारा के मुख्य प्रवर्तक मिर्निसोटा विश्वविद्यालय के ई0जी0 विलियमसन हैं इस प्रकार इस विचारधारा के अन्तर्गत परामर्शदाता प्रार्थी की समस्या को हल करने का मुख्य उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेता है। इस प्रक्रिया में परामर्शदाता समस्या की खोज और उसे परिभाषित करता है, निदान करता है तथा समस्या के उपचार के बारे में बताता है।
2. अनिर्देशीय परामर्श या प्रार्थी-केन्द्रित या अनुमत परामर्श -निर्देशात्मक परामर्श के विपरीत अनिर्देशात्मक परामर्श परामर्शप्राथी-केन्द्रित होता होता है। इस प्रकार के परामर्श में परामर्शप्रार्थी को बिना किसी प्रत्यक्ष निर्देश के आत्मोपलब्धि एवं आत्मसिद्धि तथा आत्मनिर्भरता की ओर उन्मुख किया जाता है। इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करने तथा इसे सर्वप्रचलित करने का श्रेय कार्ल आर रोजर्स (Carl R. Rogers) को जाता है।
3. समन्वित या संकलक या समाहारक परामर्श -जो परामर्शदाता निर्देशात्मक अथवा अनिर्देशात्मक विचारधाराओं से सहमत नहीं है उन्होंने परामर्श के एक अन्य प्रारूप का विकास किया है जिसे संग्रही या समन्वित परामर्श कहा जाता है। संग्रही परामर्श में निर्देशात्मक एवं अनिर्देशात्मक दोनों प्रारूपों की अच्छी बातों को ग्रहण किया गया है। एक प्रकार से यह दोनों के बीच का परामर्श प्रारूप है जिसे मध्यमार्गीय कहा जा सकता है।

7.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. त्रिधुवी
2. समस्या
3. 6
4. पारस्परिक सम्पर्क
5. परस्पर विचारों का आदान-प्रदान
6. अस्तित्ववादी मानववादी
7. अवलोकनीय
8. कार्य-सम्पादन
9. विभिन्न चरणों
10. तीन
11. ई0जी0 विलियमसलन
12. परामर्शदाता
13. परामर्शप्रार्थी
14. कार्ल रोजर्स
15. निष्क्रिय
16. मध्यवर्गीय
17. एफ0 सी0 थोर्न
18. वस्तुनिष्ठ

7.12 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डॉ0 आशा रावत- वृतिक निर्देशन तथा रोजगार सूचना, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, 2012
2. एम0एल0 मित्तल- कैरियर निर्देशन एवं रोजगार सूचना, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2010
3. डॉ0 एस0सी0 ओबराय- शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन एवम् परामर्श, इण्टरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2010
4. डॉ0 सीताराम जायसवाल- शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, 2012
5. डॉ0 रामपाल सिंह; डॉ0 राधाबल्लभ उपाध्याय- शैक्षिक एवं व्यावसायिक निर्देशन-विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा, 2004
6. डॉ0 आर0 ए0 शर्मा- निर्देशन एवं परामर्श के मूल तत्व, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ, 2009

7.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परामर्श की प्रक्रिया की अवधारणा और पदों का विवरण दें।
2. परामर्शदाता और परामर्शप्राथी के मध्य सम्बन्धों की चर्चा कीजिए।
3. परामर्श के सिद्धान्तों की व्याख्या करें।
4. परामर्श की प्रमुख विशेषतायें बताएँ। निर्देशात्मक परामर्श अनिर्देशात्मक परामर्श से किस प्रकार भिन्न है?
5. परामर्श के क्षेत्र में प्रचलित किन्हीं दो सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।
6. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें-
   i. निर्देशात्मक परामर्श
   ii. अनिर्देशात्मक परामर्श
   iii. समन्वित परामर्श

इकाई 8: समूह परामर्श बनाम व्यक्तिगत परामर्श , एक अच्छे परामर्श की विशेषताएँ, समायोजन हेतु परामर्श

8.1 प्रस्तावना
8.2 उदेश्य
8.3 समूह परामर्श बनाम व्यक्तिगत परामर्श
8.3.1 समूह परामर्श अर्थ, अवधारणाएँ, उदेश्य, चरण, अवस्थाएँ
8.3.2 समूह परामर्श के लाभ और सीमाएँ
8.3.3 व्यक्तिगत परामर्श अर्थ, उदेश्य, चरण
8.3.4 व्यक्तिगत परामर्श के लाभ एवं सीमाएँ
8.3.5 समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श का तुलनात्मक अध्ययन
8.4 एक अच्छे परामर्श की विशेषताएँ
8.4.1 अच्छे परामर्श हेतु उपबोधक की भूमिका
8.4.2 अच्छे परामर्श हेतु उपबोध्य की भूमिका
8.5 समायोजन के लिए परामर्श
8.5.1 समायोजन का अर्थ
8.5.2 समायोजन की आवश्यकता
8.5.3 समायोजन के लिए परामर्श की भूमिका
8.6 सारांश
8.7 शब्दावली
8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
8.9 संदर्भ ग्रन्थ
8.10 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना

आप अब तक परामर्श की अवधारणा को भली भाँति समझ चुके हैं। यह जान चुके हैं कि परामर्श की प्रक्रिया में उपबोधक द्वारा परामर्श सेवा प्रदान कर उपबोध्य में आत्मसमझ के विकास, अन्तःदृष्टि के विकास व समायोजन की क्षमता के विकास में सहायता किया जाता है।

अब आपको यह समझना है कि सहायता प्रदान करने की यह प्रक्रिया दो विधियों द्वारा सम्पन्न की जाती है। प्रथम विधि में, उपबोधक केवल एक व्यक्ति को सहायता प्रदान करने के लिए परामर्श कार्य सम्पन्न करता है, इसे व्यक्तिगत परामर्श कहते है व द्वितीय विधि में, उपबोधक परामर्श की क्रिया को समूह में सम्पन्न करता है जिसे समूह परामर्श कहते हैं। वास्तव में परामर्श की क्रिया को सदैव से व्यक्ति या उपबोध्य केन्द्रित माना जाता रहा है। परन्तु बदलते समय व परिस्थितियों के अनुसार परामर्श में भी नवीन तरीकों का प्रयोग बढ़ा हैं इस क्रम में परामर्श के क्षेत्र में समूह परामर्श की अवधारणा का प्रयोग भी बढ़ चला है। अतः इस इकाई में आपको समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श को स्पष्ट रूप से समझाने का प्रयास कराया जाएगा। पुनः आपको यह समझना भी आवश्यक है कि परामर्श के लक्ष्यों को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब परामर्श अच्छे व प्रभावशाली ढ़ंग से सम्पन्न हो। अतः इस इकाई में आपको एक अच्छे परामर्श की विशेषताओं से परिचित कराया जाएगा। इसके अतिरिक्त इस इकाई में समायोजन के लिए परामर्श की आवश्यकता को भी समझाने का प्रयास भी किया जाएगा।

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप समूह परामर्श एवं व्यक्तिगत परामर्श के महत्त्व को समझा सकेंगे। प्रभावशाली परामर्श के प्रमुख विशेषताओं को समझा सकेंगे व समायोजन के लिए परामर्श की भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे।

8.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. समूह परामर्श की अवधारणाएँ, आवश्यकता एवं उदेश्यों को व्यक्त कर सकेंगे।
2. व्यक्तिगत परामर्श की अवधारणा, आवश्यकता एवं उदेश्यों को व्यक्त कर सकेंगे।
3. व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श की तुलना कर सकेंगे।
4. प्रभावी उपबोधक की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे।
5. ऐसे मामलों की पहचान कर सकेंगे जहाँ व्यक्ति को समायोजन क्षमता के विकास हेतु परामर्श के माध्यम से सहायता की आवश्यकता है।

8.3 समूह परामर्श बनाम व्यक्तिगत परामर्श

हम पहले ही समझ चुके हैं कि परामर्श की प्रक्रिया दो प्रकार की विधियों के द्वारा सम्पन्न की जाती है जिन्हे हम क्रमशः समूह परामर्श एवं व्यक्तिगत परामर्श कहते हैं। अब हम समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श के संबंध में विस्तृत ज्ञान प्राप्त करने के लिए दोनों का क्रमशः अलग-अलग व बारीकी से अध्ययन करेंगे।

8.3.1 समूह परामर्श अर्थ, अवधारणाएँ, उदेश्य, चरण, अवस्थाएँ

परामर्श के क्षेत्र में समूह परामर्श की अवधारणा नवीनतम है। वर्त्तमान समय में समाज के सभी सेवा क्षेत्रों में, जिसमें विद्यालय, महाविद्यालय, मानसिक स्वास्थ्य संस्थान और दूसरे मानव सेवा एजेंसीयां सम्मिलित हैं, समूह परामर्श की प्रक्रिया का उपयोग बढ़ता जा रहा है।

संबंधित अध्ययन के क्रम में आगे बढ़ने से पूर्व हम यह समझ लेने का प्रयास करेंगे कि समूह परामर्श की आवश्यकता क्यों महसुस की जा रही है। वास्तव में मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है तथा वह अपनी समस्याओं का समाधान समूह की मदद से अधिक बेहतर ढ़ंग से कर सकता है। मनुष्य सबसे अधिक प्रेम व जुड़ाव का भुखा होता है। मनुष्य की इस आवश्यकता की संतुष्टि समूह में होती है। व्यक्ति जब खुद की पहचान को खोने लगता है तब समूह व्यक्ति के चिंतन करने की प्रक्रिया को पुर्नव्यवस्थित करता है। समूह व्यक्ति के आत्म चेतना के विकास में सहायता करता है। इनके अतिरिक्त समूह परामर्श के बढ़ रहे उपयोग के पीछे एक सोंच यह भी है कि वैसे उपबोध्य जो व्यक्तिगत रूप से परामर्श में खुद को सहज नहीं पाते हैं उनके लिए समूह परामर्श विशेष रूप से लाभदायक है। समूह में बैठने से उपबोध्य की निजी पहचान छिप जाती है और वह इसी वजह से अधिक स्वाभाविक रूप से अनुक्रिया करता है। आर्थिक दृष्टिकोण से भी देखा जाए तो यह कम खर्चीली है, क्योंकि धन के रूप में संसाधनों और प्रशिक्षित कार्मिकों की सदैव कमी रहती है। इसलिए यदि एक ही समय में व्यक्तियों के पूरे समूह को परामर्श प्रदान किया जाए तो यह अत्यंत लाभदायक सिद्ध होगा। इनके अतिरिक्त एक तथ्य यह भी है कि समूह परामर्श कुछ विशेष अभिवृत्तियों, धारणाओं, भावनाओं, आवश्यकताओं आदि में बदलाव लाने में सहायक होती है। ऐसे व्यक्तियों के लिए समूह परामर्श बड़े स्तर पर लाभदायक है जो अंतःव्यक्ति अंतःक्रियाओं में शर्मीले या आक्रामक है, समूहों में उत्तेजित या असुविधा अनुभव करते हैं या सामाजिक अपेक्षाओं के प्रति अनिच्छुक है। समूह परामर्श से किशोरों को भी अधिक लाभ पहुँचता है जिनके लिए मित्र समूह का विशेष महत्त्व है। पुनः समूह परामर्श से समाज के कुछ विशेष वर्ग जैसे नशा करने वाले, उत्पीड़ित वर्ग या ऐसे कुछ अन्य वर्ग अधिक फायदा उठा सकते हैं।

समूह परामर्श का अर्थ

समूह परामर्श में एक छोटे समूह के सदस्य सम्मिलित होते हैं जो अपने विशिष्ट लक्ष्यों को लेकर एकत्रित होते हैं, आपस में अपनी समस्याओं को बाँटते हैं, तदनुभूति पूर्ण व्यवहार का अदान-प्रदान करते हैं। एक दूसरे को सहारा देते हैं और अपने व्यवहार के परिवर्त्तन हेतु व अंतर्वैयक्तिक समस्याओं के समाधान हेतु उपयोगी कौशलों के विकास करने में सहायता प्राप्त करते हैं।

इस प्रकार समूह परामर्श वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों का समूह उपबोधक के साथ मिलजूल कर वैयक्तिक और अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को दूर करने की कला सीखते हैं। इस प्रक्रिया

में कुछ उपबोध्य अपनी समस्याओं की मिलजुल कर खोजबीन करते हैं और उनका विश्लेषण भी करते हैं जिससे समस्याओं को वे बेहतर तरीके से समझ सकें; समस्याओं का सामना करना सीख सकें और उपलब्ध विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कर सकें और अंतिम निर्णय भी ले सकें। समूह परामर्श उपबोघ्यों को एक-दूसरे के निकट लाने में सहायता प्रदान करता है और उन्हें संवेगात्मक सहयोग प्रदान करता है, ताकि वे अपने-आप को और अन्य व्यक्तियों को समझ सकें। जैसे-जैसे समूह संबंध सुदृढ़ बनते हैं, समान निर्देश के अंतर्गत सामूहिक उदेश्यों की प्राप्ति पर आधारित भावना विकसित होती चली जाती है।

इस क्रम में **डिंकमायर एवं काल्डवेल** के विचार भी उल्लेखनीय हैं जो समूह परामर्श को छात्र के स्वाभाविक विकास की प्रक्रिया को तीव्र व प्रभावशाली बनाने का साधन मानते हैं। उनके अनुसार ''यह प्रत्येक छात्र को ऐसी अन्तर्वैयक्तिक प्रक्रिया में सम्मिलित होने का अवसर देता है जिसके द्वारा वह अपने सम-समूह के साथ कार्य करते हुए, अपनी विकासात्मक समस्याओं से अधिक सामर्थ्य से समाधान हेतु तैयार होता है।''

समूह परामर्श की अवधारणाएँ

समूह परामर्श कुछ विशेष अवधारणाओं पर आधारित है-

1. व्यक्तियों में समूह के सदस्यों में परस्पर विश्वास रखने और उनके विश्वास को प्राप्त करने की आवश्यक प्रतिभा क्षमता होनी चाहिए।
2. सदस्यों का एक-दूसरे के साथ सरोकार होना चाहिए।
3. प्रत्येक व्यक्ति में यह स्वाभाविक क्षमता होनी चाहिए कि वह आत्म परिवर्त्तन का उत्तरदायित्व ले सके।
4. समूह के सदस्यों में समूह गतिशीलता को समझने व ग्रहण करने की योग्यता होनी चाहिए।
5. सदस्यों में समस्या के स्व-समाधान करने की योग्यता का विकास होना चाहिए।
6. समूह परामर्श में कुछ नैतिक मूल्यों का भी विशेष रूप से धन रखा जाना चाहिए। जैसे-

समूह परामर्श में अधिक गोपनीय व अत्यंत व्यक्तिगत समस्याओं को नहीं रखा जाना चाहिए। समूह में केवल उन्हीं समस्याओं पर विचार विमर्श होना चाहिए जो प्रकृति में कम संवेदनशील व सामाजिक रूप में स्वीकृति योग्य हों।

समूह के सदस्यों में नैतिक जिम्मेवारियां होनी चाहिए जैसे सदस्यों के प्रति ईमानदारी व सम्मानपूर्ण भावना, नियमितता, समयबद्धता, विचारों की स्पष्टता, दूसरों को पृष्ठपोषण देना, गोपनीयता को बनाए रखना आदि।

समूह का कोई सदस्य बिना पूर्व सूचना दिए व समूह छोड़ने का वैद्य कारण दिए बिना समूह नहीं छोड़ सकता है।

समूह परामर्श का उदेश्य

समूह परामर्श की प्रक्रिया के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं जिनकी प्राप्ति हेतु उपबोधक प्रयासरत रहते हैं। ये उद्देश्य निम्नलिखित हैं-

1. व्यक्ति में सामूहिक निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।
2. आत्म निर्देशन द्वारा सीखने के अवसर प्रदान करना।
3. व्यक्ति में आवश्यकताओं एवं समस्याओं को पहचानने की शक्ति का विकास करना।
4. व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों एवं उनकी समस्याओं को समझने हेतु तैयार करना।
5. व्यक्ति में सामाजिक कौशलों का विकास करना।
6. संसाधनों के मितव्ययी एवं कुशलता पूर्वक उपयोग करने की क्षमता को प्रोत्साहित करना।
7. व्यक्ति में सहयोग व सद्भाव की भावना का विकास करना।
8. एक समय में एक साथ अधिक-से-अधिक छात्रों को लाभ पहुँचाना।
9. विद्यार्थियों के अनैतिक व्यवहारों, दृष्टियों एवं प्रवृत्तियों में परिष्करण कर उन्हें वांछनीय मान्यताओं एवं मानकों की ओर अग्रसरित करना।
10. व्यक्ति को सामाजिक समायोजन हेतु सहायता प्रदान करना।
11. व्यक्ति को शैक्षिक व व्यावसायिक चयन संबंधी निर्णय लेने में सहायता प्रदान करना।
12. व्यक्ति में आत्मविश्वास, विचारों को अभिव्यक्त करने व श्रवण की कला का विकास करना।
13. वैयक्तिक व अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को सामूहिक प्रयास से दूर करने की क्षमता का विकास करना।

समूह परामर्श के चरण

समूह परामर्श की क्रिया को क्रमिक चरणों में सम्पन्न करने पर यह अधिक उपयोगी व सफल साबित होती है। ये चरण निम्नलिखित हैं-

- समय व स्थान का निर्धारण
- सदस्यों को आपस में परिचित कराना
- उद्देष्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्टीकरण
- उपबोधक द्वारा वार्त्तालाप के शीर्षक की प्रस्तावना
- सदस्यों द्वारा अपने-अपने विचारों को रखना
- विचार-विमर्ष करना
- निष्कर्ष
- अगली सभा के संबंध में निर्णय

1. समय व स्थान का निर्धारण-इस चरण में उपबोधक परामर्श हेतु समय व स्थान का निर्धारण करता है और सभी सदस्यों को इसकी सूचना प्रदान करता है।
2. सदस्यों का परिचय- इस चरण में उपबोधक मुख्य रूप से दो कार्य करता है-
   - सभी सदस्यों का स्वागत करना
   - सभी सदस्यों का परिचय करवाना
   - उद्देश्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्टीकरण-
3. इस चरण में उपबोधक परामर्श के उदेश्यों एवं लक्ष्यों के संबंध में सभी सदस्यों से स्पष्ट रूप से बातचीत करता है।
4. वार्त्तालाप के शीर्षक की प्रस्तावना-इस चरण में उपबोधक वार्त्तालाप के शीर्षक की प्रस्तावना देता है।
5. समूह सहभागिता- इस चरण में सदस्यगण अपने-अपने विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। सभी सदस्यों के सक्रिय सहभागिता हेतु समूह का आकार अपेक्षाकृत छोटा होना चाहिए। लगभग छह से दस सदस्यों को ही किसी एक समूह में शामिल करना चाहिए। बड़े समूहों को नियंत्रित करना कठिन होता है।
6. विचार-विमर्ष- इस चरण में समूह के सभी सदस्यों को अपनी-अपनी शंकाओं के निवारण हेतु संबंधित विषय पर वाद-विवाद कराया जाता है तथा यह अवसर प्रदान कराया जाता है कि वे अपने संदेहों को दूर करें।
7. निष्कर्ष-अंत में अपबोधक बातचीत का सारांशीकरण करता है एवं संभावित नतीजे पर पहुँचता है। यह निष्कर्ष अगले बातचीत (आवश्यकता महसुस किए जाने पर) के लिए आधार का काम करता है।
8. अगले सभा के संबंध में निर्णय- इस चरण में समूह परामर्श हेतु अगले मुलाकात के संबंध में निर्णय लिया जाता है तथा इसके लिए समय एवं स्थान का भी चयन कर लिया जाता है।

समूह परामर्श की अवस्थाएँ

समूह परामर्श प्रक्रिया को विभिन्न अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है। ये अवस्थाएँ हैः

निर्माण की अवस्था- इस अवस्था में निम्नलिखित कार्य सम्पन्न किए जाते हैं-

- सूचना, विज्ञापन व पोस्टर आदि का प्रयोग कर व्यक्तियों को समूह के बारे में जागरूक बनाना व सदस्य बनने हेतु तैयार करना।
- उपबोधक द्वारा उपयुक्त समूह का चयन करना
- समूह के सदस्यों को एक दूसरे से परिचित करवाना

- समूह क्रियाशीलता के उदेश्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्टीकरण करना
- क्रियाशीलता हेतु समय सारणी की रूपरेखा तैयार करना व स्थान तय करना

प्रारंभिक अन्वेषण अवस्था- इस अवस्था में उपबोधक समूह के सदस्यों को जो अभी तक एक दूसरे से अपरिचित होते है, आपस में खुलकर घुलने-मिलने के लिए तैयार करने हेतु अनुकूल वातावरण का निर्माण करता है। उपबोधक अपनी भूमिका की व्याख्या के साथ-साथ समूह के सदस्यों की भूमिका का वर्णन करता है। सौहार्द पूर्ण वातावरण का निर्माण कर व सदस्यों के विश्वास को जीतकर उन्हें खुलकर अभिव्यक्त करने हेतु प्रेरित करता है। सदस्यों के अपेक्षाओं के बारे में पता लगाता हैं

अवस्थान अवस्था- इस अवस्था को अपेक्षाकृत कठिन माना जाता है। इस अवस्था में उपबोध्य समूह के प्रति व उपबोधक के प्रति अपने नकारात्मक सोचों व प्रवृत्तियों का खुलकर प्रदर्शन करते हैं। ऐसी अवस्था में उपबोधक अपने परामर्श कौशल का परिचय देते हुए बुद्धिमतापूर्ण ढंग से सदस्यों को अपने द्वंद्वों का समाधान करने हेतु प्रेरित करता हैं

कार्यकारी अवस्था-इस अवस्था में सदस्य समूह से घनिष्ठ रूप से जुड़ जाते हैं। दूसरे सदस्यों की समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक हो जाते हैं। इस अवस्था में समूह उत्पादक रूप धारण कर लेता है और महत्त्वपूर्ण समस्याओं के गूढ़ अध्ययन के प्रति वचनबद्ध हो जाता है और समूह में होने वाली अंतःपरिवर्त्तनों पर पूरा ध्यान देता है। इस अवस्था में सदस्य उपबोधक पर कम निर्भर करते हैं और विशिष्ट व्यक्तिगत लक्ष्यों व समूह लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए ध्यान केंद्रित करना शुरू कर देते हैं। समूह व सदस्य एक दूसरे से आसानी से तर्क-विर्तक कर सकते हैं और चुनौतियों को बदलाव लाने के ठोस साधनों के रूप में स्वीकार करना पसंद करते हैं।

समेकन और समाप्ति की अवस्था- यह अवस्था सारांशीकरण व समूह अनुभवों के समन्वयीकरण का होता है। इस अवस्था में सदस्यगण अपने-अपने अनुभवों को आपस में बाँटते हैं। समूह परामर्श के द्वारा प्राप्त अधिगम व स्वयं में विकसित अंतःदुष्टि के बारे में दूसरों को सूचना प्रदान करते हैं। साथ ही इनका प्रयोग वे अपने व्यावहारिक जीवन में किस प्रकार करेंगे, इनकी जानकारी प्रदान करते हैं। सदस्य समूह परामर्श के दौरान प्राप्त अनुभव व अधिगम का प्रयोग अपने-अपने क्षेत्रों में कार्य, करने के अवधारणात्मक रूपरेखा को विकसित करने में किस प्रकार करेंगे, इसके लिए उपबोधक उन्हें सहायता प्रदान करता हैं

अनुगमन सत्र- परामर्श सत्र के समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् उपबोधक उपबोध्यों का अनुगमन कर यह जाँच करने का प्रयास करता है कि उपबोध्यों के व्यवहार में वांछनीय परिवर्त्तन हुआ है या नहीं अर्थात् परामर्श प्रदान करने में उसे सफलता प्राप्त हुई है या नहीं।

8.3.2 समूह परामर्श के लाभ और सीमाएँ

लाभ

i. यह विविध रूपों से कम खर्चीला है क्योंकि समूह परामर्श के अन्तर्गत एक साथ व्यक्तियों की बड़ी संख्या को उपबोधक द्वारा लाभान्वित किया जा सकता है। इससे समय की भी बचत होती है।
ii. इससे व्यक्तियों को अपनी अभिवृत्तियों, आदतों तथा निर्णयन को समाजीकृत करने में सहायता मिलती है।
iii. इसमें दूसरे सदस्यों के साथ अधिगम व अनुभव को बाँटने हेतु स्वस्थ वातावरण प्राप्त होता है जिससे कि छात्रों में आत्मविश्वास बढ़ता है।
iv. समूह परामर्श में व्यक्ति को हर कार्य एवं व्यवहार को ऐसे सीखने की प्रेरणा मिलती है जैसे वह वास्तविक जीवन में कोई कार्य कर रहा है।
v. इसमें अच्छे मानवीय संबंध स्थापित करने व सामूहिक निर्णय लेने की भावना का विकास होता है।

सीमाएँ

i. समूह परामर्श में अत्यंत व्यक्तिगत और निजी समस्याओं को उजागर नहीं किया जा सकता है।
ii. समूह परामर्श के दौरान स्थिति को नियंत्रित करना उपबोधक के लिए कठिन कार्य है।
iii. इसमें सदस्यों के अवधान को प्राप्त करने हेतु सृजनात्मक तकनीकों का उपयोग नहीं किया जाता है।
iv. समूह परामर्श सभी के लिए उपयुक्त नहीं है। कुछ व्यक्ति समूह में भय महसूस करते हैं व कुछ व्यक्तियों में सहनशक्ति का स्तर अत्यंत निम्न होता है और वे समूह की मांगों के अनुरूप व्यवहार बदलने में सक्षम नहीं होते।

कुछ बिन्दुओं को नजरअंदाज कर दिया जाए तो समूह परामर्श वास्तव में अधिगम अनुभव प्राप्त करने का प्रभावशाली रूप है जो व्यक्तियों कोई महत्त्वपूर्ण मानवीय गुणों का विकास करता है। इसमें सदस्य अपने अनुभवों को बाँटते है व दूसरों से सीख सकते हैं। व्यक्ति यह जान पाता है कि बहुत सारे लोग हैं जो समान समस्याओं का सामना कर रहे हैं, वह ही अकेला संघर्ष नहीं कर रहा है। समूह परामर्श विशेषकर विद्यालय एवं महाविद्यालय के वातावरण में अधिक सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता है जहाँ छात्र समूह में सीखने में सहजता व आनंद की अनुभूति करते हैं।

8.3.3 व्यक्तिगत उपबोधनः अर्थ, उदेश्य व चरण

समूह परामर्श की अवधारणा को हम भली-भाँति समझ चुके हैं। हम यह भी समझ चुके हैं कि कुछ परिस्थितियों में समूह परामर्श का उपयोग फलदायी नहीं होता है। बहुत सारी परिस्थितियाँ ऐसी होती

है जहाँ परामर्श व्यक्तिगत रूप में देना अधिक श्रेयस्कर है। व्यक्ति की कुछ समस्याएँ अत्यंत निजी होती है। इसके समाधान के लिए उसे व्यक्तिगत परामर्श की आवश्यकता होती है। जैसे- शारीरिक स्वास्थ्य रोग (संबंधी) की समस्याएं, मानसिक एवं सांवेगिक समस्याएँ (चिंता, अवसाद, क्रोध आदि संबंधी), घरेलु समस्याएँ (घरेलु हिंसा, पति-पत्नी के बीच मतभेद) वैवाहिक व पूर्व वैवाहिक समस्याएँ, आर्थिक व व्यावसायिक समस्याएँ, शिक्षा संबंधी समस्याएँ (विषय चयन, समायोजन आदि से संबंधी समस्याएँ) आदि।

व्यक्तिगत परामर्श का अर्थ

व्यक्तिगत परामर्श वह प्रक्रिया है जिसमें उपबोधक उपबोध्य के साथ आमने-सामने बैठकर अधिक सक्रिय, प्रत्यक्ष, वैयक्तिक व फोकस होकर उपबोध्य में स्वयं को पहचानने व स्वयं को समझने की शक्ति व समायोजन करने की क्षमता के विकास में सहायता प्रदान करता है।

यह एक परस्पर साझी प्रक्रिया है जिसमें उपबोधक व इच्छित उपबोध्य के बीच अनूठा व गोपनीय सहायतार्थ संबंध का विकास होता है। व्यक्तिगत परामर्श की प्रक्रिया में परामर्श की शुरूआत उपबोधक सहायता की ईच्छा रखने वाले उपबोध्य की समस्याओं को समझने व उन समस्याओं का उपबोध्य के जीवन पर पड़ने वाले भावी प्रभावों को पहचानने से करता है। तत्पश्चात् उपबोधक व उपबोध्य मिलकर लक्ष्यों को निर्धारित करते हैं तथा लक्ष्यों को प्राप्त करने की दिशा में कार्य प्रारम्भ करते हैं। इस क्रम में उपबोधक प्रयासरत रहता है कि उपबोध्य में अंतःदृष्टि का विकास हो और वह अपनी समस्या का समाधान स्वयं बंहतर ढंग से कर सके। परामर्श सत्र समाप्त होने के कुछ समय पश्चात् उपबोधक अनुगमन द्वारा परामर्श की सफलता व असफलता की भी जाँच करता है।

व्यक्तिगत परामर्श के उदेश्य

i. व्यक्ति में आत्म समझ का विकास करना।
ii. व्यक्ति में समायोजन की योग्यता का विकास करना।
iii. व्यक्तिगत जीवन से संबंधित समस्याओं के सन्दर्भ में निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।
iv. व्यक्ति को अपने अंतःद्वन्दों व नकारात्मक भावनाओं पर विजय प्राप्त करने हेतु तैयार करना।
v. व्यक्ति में सकारात्मक मनोवृत्ति का विकास करना।
vi. व्यक्ति में समाजिक, सांवेगिक व आध्यात्मिक लब्धि का विकास करना।

व्यक्तिगत परामर्श के चरण

1. उपबोधक सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण करता है, जिसमें उपबोध्य अपने विचारों को खुलकर अभिव्यक्त करता है।
2. उपबोधक समस्याजन्य दशाओं को परिभाषित करता है।
3. उपबोध्य को अपने विचारों व भावनाओं की अभिव्यक्ति हेतु स्वतंत्रता प्रदान करता है।

4. उपबोधक उपबोध्य के सकारात्मक व नकारात्मक भावों का वर्गीकरण करता है।
5. उपबोधक तकनीकों की सहायता से आँकड़ों का संग्रहण करता है।
6. आँकड़ों के संग्रहण के पश्चात् उपबोधक संबंधित समस्याओं का अध्ययन एवं मूल्यांकन करता है।
7. अध्ययन एवं मूल्यांकन के उपरान्त वास्तविक समस्या के समाधान की दिशा में व्यक्ति को परामर्श प्रदान करता है।
8. उपबोध्य में अन्तःदृष्टि का विकास होता है।
9. उपबोधक अनुगमन का कार्य करता है।

8.3.4 व्यक्तिगत परामर्श के लाभ एवं सीमाएँ

लाभ-

1. इसमें उपबोधक को सिर्फ एक उपबोध्य को सहायता देनी होती है अतः उपबोध्य, अधिक सरोकार व अवधान प्राप्त करता है।
2. उपबोधक को सूचना एकत्रित करने में आसानी होता है तथा वह अधिक प्रभावी ढंग से उपबोध्य को सहायता प्रदान करता है।
3. निजी व अधिक संवेदनशील समस्याओं का समाधान हो पाता है।
4. उपबोध्य के विचारों एवं व्यवहारों को उपबोधक अधिक बंहतर ढंग से समझ पाता है।
5. इसमें उपबोध्य अपने पसंद के अनुसार अपनी जीवन में परिवर्त्तन लाने की शक्ति को प्राप्त कर पाता है।
6. इसमें उपबोधक को अनुगमन एक उपबोध्य का करना होता है तो यह कार्य भी उपबोधक अधिक आसानी से व प्रभावपूर्ण ढंग से करता है।

सीमाएँ-

1. व्यक्तिगत परामर्श में उपबोध्य बहुत सारे अधिगम अनुभवों को प्राप्त करने से वंचित रह जाता है जो वह समूह में वह बेहतर ढंग से करता हैं
2. इसमें उपबोध्य में बहुत सारे सामाजिक कौशलों एवं मानवीय गुणों का विकास नहीं हो पाता है।
3. इसमें संसाधन, समय व शक्ति अधिक व्यय होता हैं
4. इसमें उपबोध्य अंतर्व्यक्तिगत संबंधों को बेहतर ढंग से नहीं समझ पाते हैं।

8.3.5 समूह परामर्श और व्यक्तिग परामर्श का तुलनात्मक अध्ययन

समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श का तुलनात्मक अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि दोनों प्रकार के परामर्श के मध्य कुछ समानताएँ व कुछ विभिन्नताएँ हैं।

समानताएँ

1. दोनों का उद्देश्य समान है अर्थात् उपबोध्य में स्वयं को पहचानने व स्वयं को समझने की क्षमता का विकास करना है।
2. दोनों में परामर्श हेतु बहुत सारे समान तकनीकों का प्रयोग होता है।
3. दोनों में गोपनीयता को बनाए रखने की नैतिक जिम्मेवारी होती है।
4. दोनों प्रकार के परामर्श में उपबोधक को सौहार्दपूर्ण वातावरण का निर्माण करना आवश्यक होता है।
5. दोनों माध्यमों से परामर्श प्राप्त करने वाले व्यक्ति सामान्य हैं जो तनाव, मायूसी, कुंठा, उत्तेजना या अन्य विकासपरक समस्याओं से संघर्ष करने की चेष्टा कर रहे हैं।

विभिन्नताएँ

1. व्यक्तिगत परामर्श एकैकी तथा मुखाभिमुख संबंध को दर्शाता है जिसमें उपबोधक केवल एक उपबोध्य के साथ आमने-सामने बैठकर परामर्श देता है। लेकिन समूह परामर्श में उपबोधक उपबोध्यों की बड़ी संख्या को एक साथ परामर्श प्रदान करता है।
2. व्यक्तिगत परामर्श में उपबोध्य सिर्फ सहायता की प्राप्ति करता है जबकि समूह परामर्श में उपबोध्य दूसरों को भी सहायता भी प्रदान करता है।
3. समूह परामर्श में समूह गतिकी के सिद्धांत के काफी अनुप्रयोग शामिल होते हैं, जबकि व्यक्तिगत परामर्श में उपबोधक और उपबोध्य का आपसी संबंध अत्यंत महत्त्वपूर्ण होता हैं
4. व्यक्तिगत परामर्श में अधिक संवेदनशील निजी व गोपनीय समस्याओं को रखा जाता है जबकि समूह में प्रकृति में कम संवेदनशील व सामाजिक रूप से स्वीकृत योग्य समस्याओं को रखा जाता है।

इस प्रकार हम स्पष्ट रूप से समझ चुके हैं कि व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श की अपने-अपने लाभ व अपनी-अपनी सीमाएँ हैं। दोनों में कुछ समानताएँ व कुछ विभिन्नताएँ हैं। यह कहना अत्यंत कठिन है कि दोनों में अधिक श्रेष्ठ व उपयोगी कौन है। वास्तव में दोनों के अपने-अपने महत्त्व है। कुछ परिस्थितियों में समूह परामर्श अधिक प्रभावशाली होता है वहीं कुछ परिस्थितियों में व्यक्तिगत परामर्श अधिक उपयोगी माना जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. समूह परामर्श से क्या अभिप्राय है?
2. समूह परामर्श प्रक्रिया के कौन-कौन से चरण हैं?
3. समूह परामर्श के दो लाभ बताइए?
4. व्यक्तिगत परामर्श के क्या-क्या उद्देश्य हैं?
5. व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श के मध्य दो अंतर बताइए?

6. समूह परामर्श में कौन-कौन से दो नैतिक मूल्यों का ध्यान रखा जाना चाहिए?
7. समूह परामर्श की सीमाएँ कौन सी हैं।
8. परामर्श केवल एकैकी स्थिति में ही दिया जा सकता है।(सत्य/असत्य)
9. समूह परामर्श में उपबोध्य की सहायतार्थ व्यावसायिक विशेषज्ञों का समूह होता है।(सत्य/असत्य)
10. समूह परामर्श मदिरापान करने वालों के लिए उपयुक्त हैं। (सत्य/असत्य)
11. समूह परामर्श में समूह के सदस्य एक दूसरे के प्रति सरोकार नहीं रखते हैं।(सत्य/असत्य)
12. व्यक्तिगत परामर्श में एक उपबोध्य उपबोधक के साथ आमने-सामने बैठकर परामर्श प्राप्त करता है।(सत्य/असत्य)
13. व्यक्तिगत परामर्श में धन व समय की बचत होती है। (सत्य/असत्य)

8.4 एक अच्छे परामर्श की विषेषताएँ

अब आप यह भली-भाँति समझ चुके हैं कि परामर्श चाहे व्यक्तिगत विधि द्वारा प्रदान किया जाए या समूह विधि द्वारा, इसका अंतिम उद्देश्य होता है व्यक्ति के संज्ञानात्मक, भावात्मक व क्रियात्मक तीनों पक्षों का विकास कर उनके व्यवहार में अपेक्षित परिवर्त्तन लाना। इस उद्देश्य की पूर्त्ति सफलतापूर्वक तभी हो सकती है जब परामर्श की प्रक्रिया प्रभावशाली हो। परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने में दो व्यक्तियों की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रथम स्वयं उपबोधक जो परामर्श की प्रक्रिया का प्रथम आधार बिन्दु है तथा द्वितीय उपबोध्य जो परामर्श की प्रक्रिया का द्वितीय महत्त्वपूर्ण आधार बिन्दु है। इस इकाई में हम एक अच्छे परामर्श हेतु भूमिका का निर्वाह करने वाले दोनों महत्त्वपूर्ण आधार बिन्दुओं के बारे में विस्तार से चर्चा करेंगे।

8.4.1 एक अच्छे परामर्श हेतु उपबोधक की भूमिका

परामर्श की प्रक्रिया का एक बड़ा भार उपबोधक के कंधों पर होता है। उपबोधक कुशल, योग्य, निपुण एवं प्रभावशाली होता है तभी वह पूर्ण रूप से नकारात्मकता से घिर चुके उपबोध्य में सकारात्मक मनोवृत्ति का विकास करता है। उपबोधक ही अपने पहचान को लगभग खो चुके उपबोध्य को उसमें मौजुद योग्यताओं एवं शक्तियों का बोध करवाता है व उन्हे जीवन के विभिन्न विपरित परिस्थितियों से जुझने के लिए पुनः तैयार करता है।

इस प्रकार देखा जाए तो उपबोधक परामर्श रूपी गाड़ी को सही दिशा में ले जाते हुए सही गंतव्य तक पहुंचाने में कुशल चालक की भूमिका का निर्वाह करता है। यहां हमें यह समझना भी आवश्यक है कि परामर्श रूपी गाड़ी को सही गंतव्य तक पहुंचाने हेतु चालक रूपी उपबोधक में व्यक्तित्व के कुछ विशिष्ट गुणों, योग्यता, उत्तरदायित्वों का बोध व परामर्श भी निपुणता जैसी विशेषताओं का

होना आवश्यक है। आइए अब हम अच्छे उपबोधक के उपयुक्त विशेषताओं के बारे में विस्तृत से जानने का प्रयास करेंगे।

उपबोधक के व्यक्तित्व की विषेषताएँ

एक अच्छे उपबोधक में व्यक्तित्व संबंधी किन-किन विशेषताओं का होना आवश्यक है, इस संबंध में पूर्व में कई अध्ययन हो चुके है। इस क्रम में अमेरिका के नेशनल वोकेशनल गाइडैन्स एसोसिएशन के अनुसार एक अच्छे उपबोधक में आम व्यक्तियों की समस्याओं में रूचि रखना, सहनशक्ति व संवेदनशीलता का होना, संवेगात्मक स्थिरता और वस्तुनिष्ठता का होना जैसी विशेषताएं होनी चाहिए। इसी प्रकार हरमिन और पालसेन (1950) द्वारा बताई गई विशेषताएं हैं; उपबोध्य को समझना, उससे सहानुभूति भरा और दोस्ताना व्यवहार करना, विनोदशील होना स्थिरता, सहनशक्ति, वस्तुनिष्ठता, सत्यनिष्ठ, चतुराई, निष्पक्षता, सफाई, शांतचित्त रहना, खुले विचारों का होना, दयालु, खुशमिजाज, सामाजिक चातुर्य और मनःसंतुलन। पुनः उपबोधक शिक्षा और पर्यवेक्षण संघ द्वारा बताई गई विशेषताएं हैं-

प्रत्येक व्यक्ति में विश्वास रखना, व्यक्तिगत मानव मूल्यों के प्रति वचनबद्धता, विश्व की ओर जागरूकता, उदार मानसिकता, स्वयं को समझना, वृत्तिक वचनबद्धता। इसी प्रकार वाइट्स (1957) सिंडरे एवं सिंडरे (1961) और स्टाइलर (1961) के अनुसार अच्छे उपबोधक में व्यक्तित्व संबंधी विशेषताएं हैं- व्यक्तियों की सहाता करने में रूचि रखना, प्रातक्षिक संवेदनशीलता, वैयक्तिक समंजन, वैयक्तिक सुरक्षा, अकृत्रिमता।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि एक अच्छे उपबोधक में व्यक्तित्व संबंधी निम्नलिखित विशेषताएँ होनी चाहिए-

1. संवेदनशीलता-एक अच्छे उपबोधक को उपबोध्य के समस्याओं के प्रति संवेदनशील होना चाहिए।
2. अवबोध-एक अच्छे उपबोधक में उपबोध्य की भावनाओं को भावात्मक रूप से समझने का गुण होना चाहिए। दूसरे शब्दों में एक अच्छा उपबोधक उपबोध्य से भावनात्मक रूप से जुड़ जाता है।
3. धैर्य- एक अच्छे उपबोधक को धैर्यवान होना चाहिए। उपबोध्य से पूरी सूचना प्राप्त करने से लेकर स्वयं द्वारा प्रदान की गई सूचनाओं को उपबोध्य द्वारा स्पष्ट रूप से समझ लेने तक उपबोधक को अत्यंत धैर्यता का परिचय देना चाहिए।
4. रूचि एंव तत्परता-एक अच्छे उपबोधक में व्यक्तियों की सहायता करने में रूचि व तत्परता होनी चाहिए।
5. सुसमायोजित व्यक्तित्व-एक अच्छे उपबोधक को सुसमायोजित व्यक्ति होना चाहिए। उसका संवेगात्मक व्यवहार संतुलित होना चाहिए। अलग-अलग परिस्थितियों के

अनुसार उसे अपने स्वभाव तथा कार्यशैली में परिवर्त्तन लाने की पर्याप्त क्षमता होनी चाहिए।

6. स्वीकरण- एक अच्छे उपबोधक को उपबोध्य के कथनों, भावनाओं व व्यवहार को बिना अच्छा या बुरा मूल्यांकित किए स्वीकार करना चाहिए।
7. नैतिक मूल्य- उपबोधक में नैतिकता का भी समावेश होना आवश्यक है जिससे कि वह उपबोध्य द्वारा दिए गए गुप्त सूचनाअइों को बिना उसकी सहमति के किसी के समझ प्रकट ना करे।
8. अकृत्रिमता- उपबोधक को उपबोध्य के साथ वास्तविक संबंध स्थापित करने में सक्षम होना चाहिए। उसके व्यवहार में कहीं से भी मिलावट या कृत्रिमता का बोध नहीं होना चाहिए।

उपबोधक की योग्यता एवं अभ्यास

एक अच्छे उपबोधक को उपयुक्त योग्यताधारी व प्रशिक्षित होना चाहिए। जहां तक योग्यता का प्रश्न है तो उपबोधक को परामर्श में विशिष्टीकरण के साथ मनोविज्ञान से स्नातकोत्तर और परामर्श अभ्यास एवं कौशलों में डिप्लोमाधारी होना चाहिए। एक अच्छे उपबोधक को आत्मविकास, व्यक्तिगत विभिन्नता, अभिप्रेरण, संवेग, प्रत्यक्षीकरण, संज्ञानात्मक प्रक्रिया आदि संप्रत्ययों का गहन ज्ञान होना चाहिए। उपर्युक्त योग्यता के अतिरिक्त उपयुक्त प्रशिक्षण व नियमित अभ्यास एक अच्छे उपबोधक का निर्माण करती है। उपबोधक को कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त करना आवश्यक है जैसे- शैक्षिक परामर्श , व्यावसायिक परामर्श , पूर्व वैवाहिक व वैवाहिक परामर्श , मनोवैज्ञानिक वातावरण में समायोजन, पारिवारिक परामर्श , मादक द्रव्य व्यसनिकों व मद्य व्यसनिकों का परामर्श विशिष्ट बालकों का परामर्श आदि।

उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों का बोध

एक अच्छे उपबोधक को अपने उत्तरदायित्वों एवं कर्त्तव्यों का भली-भाँति ज्ञान होना चाहिए, तभी वह अपने व्यवहार को सही दिशा में निर्देशित करते हुए परामर्श के लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेगा। एक अच्छे विद्यालय उपबोधक को साक्षात्कार, परामर्श सत्र का संचालन, रूचि व अभिक्षमता परीक्षण और मूल्यांकन के अन्य विधियों का समय-समय पर उपयोग कर छात्रों को शैक्षिक व वृत्तिक लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायता प्रदान करने हेतु सदैव प्रयासरत रहना चाहिए।

इस दिशा में उपबोधक को कुछ महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का आश्यक रूप से बोध होना चाहिए जैसे-

छात्रों के शैक्षिक विकास से संबंधी कर्त्तव्य

i. उपबोधक को अधिगम प्रक्रियाएँ और शैक्षिक वातावरण व विकास कार्यक्रमों का बोध होना।

ii. छात्रों को सीखने व उपलब्धि प्राप्त करने हेतु प्रेरित करना।
iii. छात्रों को विद्यालय व मित्र समूह से समायोजन में सहायता प्रदान करना।
iv. विद्यालय के सभी मुख्य पक्षों पर विद्यार्थी के बारे में जानकारी एकत्रित करना।
v. छात्रों के शैक्षिक प्रगति को बढ़ाने वाले विधियों एवं प्रविधियों का समय-समय पर प्रयोग करना।
vi. छात्रों को उनकी योग्यताओं, रूझानों तथा रूचियों के अनुसार पाठ्यक्रम के चुनाव में सहायता करना।

छात्रों के वृत्तिक विकास से संबंधी कर्त्तव्य

i. उपबोधक को वृत्तिक विकास सिद्धांतों व वृत्तिक विकास कार्यक्रम का नियोजन, व्यवस्थापन, क्रियान्वयन, प्रशासन, मूल्यांकन का बोध होना।
ii. छात्रों को व्यवसाय चयन, व्यावसायिक प्रशिक्षण व्यावसायिक अवसरों, व्यावसायिक नियुक्तियों के बारे में सूचना प्रदान करना।
iii. वृत्तिक परामर्श प्रक्रिया, तकनीकों, संसाधनों व उपकरणों का विधिवत प्रयोग करना।
iv. वृत्तिक विकास के विभिन्न चरणों एवं अवस्थाओं का बोध होना।

छात्रों के व्यक्तिगत एवं सामाजिक विकास से संबंधी कर्तव्य

i. छात्रों में स्वस्थ व सकारात्मक मनोवृत्ति व अन्तर्वैयक्तिक संबंधों को सुदृढ़ बनाने वाले कौशलों का विकास करना।
ii. छात्रों में प्रभावशाली संप्रेषण हेतु आवश्यक कौशलों के विकास में सहायता करना।
iii. छात्रों को स्वयं को पहचानने, स्वयं निर्णय लेने व समस्या का स्वयं समाधान करने की क्षमता का विकास करना।
iv. छात्रों को व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन में सहायता करना।
v. छात्रों में सांवेगिक, सामाजिक व आध्यात्मिक लब्धि के विकास हेतु सहायता प्रदान करना।

उपर्युक्त दायित्वों के अलावा एक अच्छे उपबोधक को परामर्श के क्षेत्र में नित्य हो रहे नए-नए शोधों से अवगत रहना चाहिए तथा समय-समय पर उनका अनुप्रयोग अपने कार्य करने के तरीके में सुधार करने हेतु करना चाहिए।

परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने हेतु उपबोधक में कुछ महत्त्वपूर्ण कौशलों का होना आवश्यक है। इन आवश्यक कौशलों का वर्गीकरण तीन प्रमुख श्रेणियों में किया गया है-

संज्ञानात्मक पक्ष से संबंधी कौशल- इसके अन्तर्गत ध्यान देकर सुनने का कौशल, नेतृत्व कौशल, परावर्त्तन कौशल, सारांशीकरण, कौशल आमना-सामना करने का कौशल, अर्थापन कौशल, सूचना प्रदान करने का कौशल आदि सम्मिलित है।

भावात्मक पक्ष से संबंधी कौशल- इसके अन्तर्गत भावात्मक सहारा प्रदान करने का कौशल, तदनुभूति, पूर्ण व्यवहार का कौशल, सौहार्दपूर्ण वातावरण के निर्माण का कौशल, मित्रवत व्यवहार का कौशल, प्रोत्साहित करने का कौशल, केन्द्रीकरण का कौशल आदि कौशल सम्मिलित हैं।

क्रियात्मक पक्ष से संबंधी कौशल- इसके अन्तर्गत समस्या समाधान कौशल, निर्णय लेने का कौशल नियोजित कार्य करने का कौशल व्यवहार परिवर्त्तन कौशल, विसंवेदनीकरण का कौशल आदि सम्मिलित है।

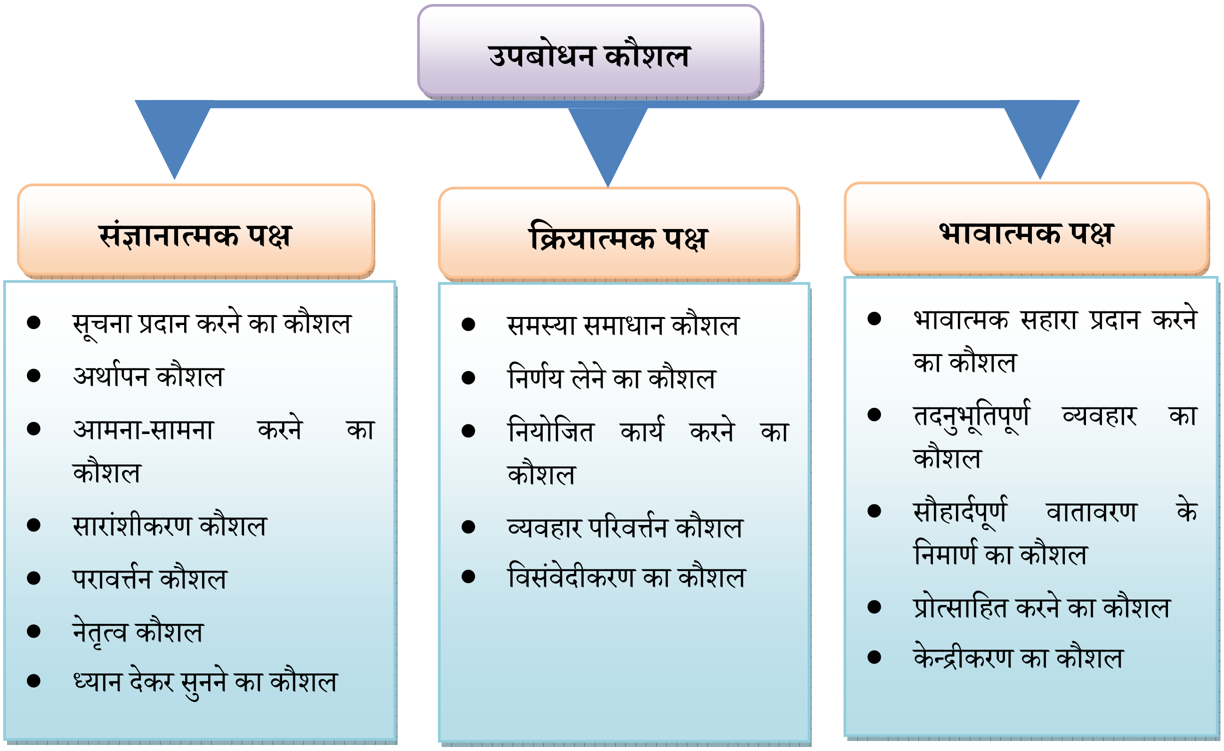

उपर्युक्त कौशलों में से कुछ महत्त्वपूर्ण कौशलों का वर्णन नीचे किया जा रहा है।

1. **सौहार्दपूर्ण वातावरण के निर्माण का कौशल-** इससे तात्पर्य ऐसे वातावरण से है जो परामर्श प्रक्रिया के प्रारंभिक चरण के दौरान उपबोधक द्वारा बनाया जाता है। जिसके माध्यम से उपबोध्य सहज महसुस करता है और उपबोधक से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित होता है।
2. **अवधान/सर्तकता कौशल-**सौहार्द स्थापित करने के लिए उपबोधक को उपबोध्य की आवश्यकताओं, मिजाज, भावनाओं को समझने के लिए ध्यान को पूरी तरह से उपबोध्य के क्रियाओं पर केन्द्रित किए रहना होता हैं
3. **श्रवण कौशल-**उपबोधक को उपबोध्य द्वारा कहीं जा रही बातों को अत्यंत सतर्कतापूर्वक, सक्रिय होकर व रूचि व धैर्य के साथ सुनना चाहिए।

4. **अभिव्यक्ति कौशल**-उपबोधक में अपने विचारों को प्रभावपूर्ण ढंग से अभिव्यक्त करने का कौशल होना चाहिए जिससे कि उपबोध्य उसकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनें। उपबोधक को बोलते वक्त शरीर संचालन, आवाज में उतार-चढ़ाव, भाव मुद्रा व मुखमुद्रा आदि का प्रभावशाली उपयोग करना आना चाहिए।
5. **तदनुभूति**-तदनुभूति से तात्पर्य होता है किसी की अनुभूति प्राप्त करना। डायमंड (1949) तदनुभूति को व्यक्त करते हैं कि दूसरे की सोच, भावना और कार्यण को अपनी कल्पना में उतारना और इसी प्रकार के संसार की संरचना करना जैसा कि वह करता है। यह परामर्श प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण कौशल है। एक अच्छे उपबोधक में यह कौशल होना चाहिए कि वह उपबोध्य की भावनाओं को स्वयं महसुस करने लगे
6. **वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का कौशल**-उपबोधक में वस्तुनिष्ठता से निरीक्षण करने का कौशल होना चाहिए। परामर्श के क्रम में उपबोधक को पक्षपाती नहीं होना चाहिए।
7. **आमना-सामना या सम्मुखीकरण का कौशल** -एक अच्छे उपबोधक में यह कौशल होना चाहिए कि वह उपबोध्य को जीवन के सच से सामना करने हेतु तैयार कर सके।
8. **परामर्श के तकनीकों एवं उपकरणों के प्रयोग का कौशल**-एक अच्छे उपबोधक में परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावशाली बनाने हेतु आवश्यकतानुसार उपयुक्त उपकरण के प्रयोग करने का कौशल होना चाहिए। उपबोधक को वस्तुनिष्ठ, विषयनिष्ठ प्रक्षेपी तीनों प्रकार के उपकरणों के प्रयोग में कुशल होना चाहिए।

8.4.2 एक अच्छे परामर्श हेतु उपबोध्य की भूमिका

परामर्श परस्पर साझी प्रक्रिया है तथा यह प्रभावशाली तभी होती है जब उपबोधक एवं उपबोध्य के बीच पारस्परिक समझ हो। तभी वे आपस में सूचनाओं को बाँटते हैं व विचारों का आदान-प्रदान करते हैं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि चूंकि परामर्श प्रक्रिया से संबंधित समस्त व्यवस्था उपबोध्य के चारों ओर ही केन्द्रित होती है। अतः उपबोधक की समस्त योग्यताएँ एवं कौशल, अध्ययन एवं प्रशिक्षण केवल उसी दशा में सार्थक सिद्ध होते है ज बवह उपबोध्य को इस योग्य बना सके कि वह अपनी समस्याओं का समाधान स्वयं कर सके। इसी प्रकार उपबोध्य से संबंधित सूचनाओं के संकलन से संबंधित समस्त विधियाँ भी उपबोध्य के विभिन्न पक्षों से ही संबंधित होती है। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि उपबोध्य की आवश्यकताओं मानसिक, शारीरिक, संवेगात्मक स्थितियों, सामाजिक समायोजन पर आधारित संबंधों आदि के बारे में जितनी ही अधिक जानकारी प्राप्त होगी उतनी ही अधिक सफलता परामर्श की प्रक्रिया को सम्पन्न करने में प्राप्त हो सकेगी। इस क्रम में रूथ-स्ट्रेग के विचार के अनुसार उपबोध्य की अवधारणा, कार्य हेतु उसकी तत्परता, उसका अन्तर्द्वन्द, दबी ईच्छाएँ, अनिश्चित अपराध भावना, उसके आचरण के अन्तः स्रोत इत्यादि बातों की समझ सफल परामर्श का आधार है। उपबोध्य की शारीरिक स्थिति एवं उपबोधक की भूमिका के प्रति उसका प्रत्यय भी महत्त्वपूर्ण घटक है।

इस प्रकार सारांश के रूप में, यह कहा जा सकता है कि एक अच्छे परामर्श की दो प्रमुख विशेषताएं हैं- प्रथम प्रभावशाली उपबोधक व द्वितीय सहयोगी व तत्पर उपबोध्य। जब उपबोधक एवं उपबोध्य परस्पर संबंधों की समुचित पृष्ठभूमि बनाने में सफल हो जाते हैं और उदेश्यों एवं लक्ष्यों के अनुरूप परामर्श का उपयोग करते हैं। तभी परामर्श की प्रक्रिया सार्थन व सफल मानी जा सकती है।

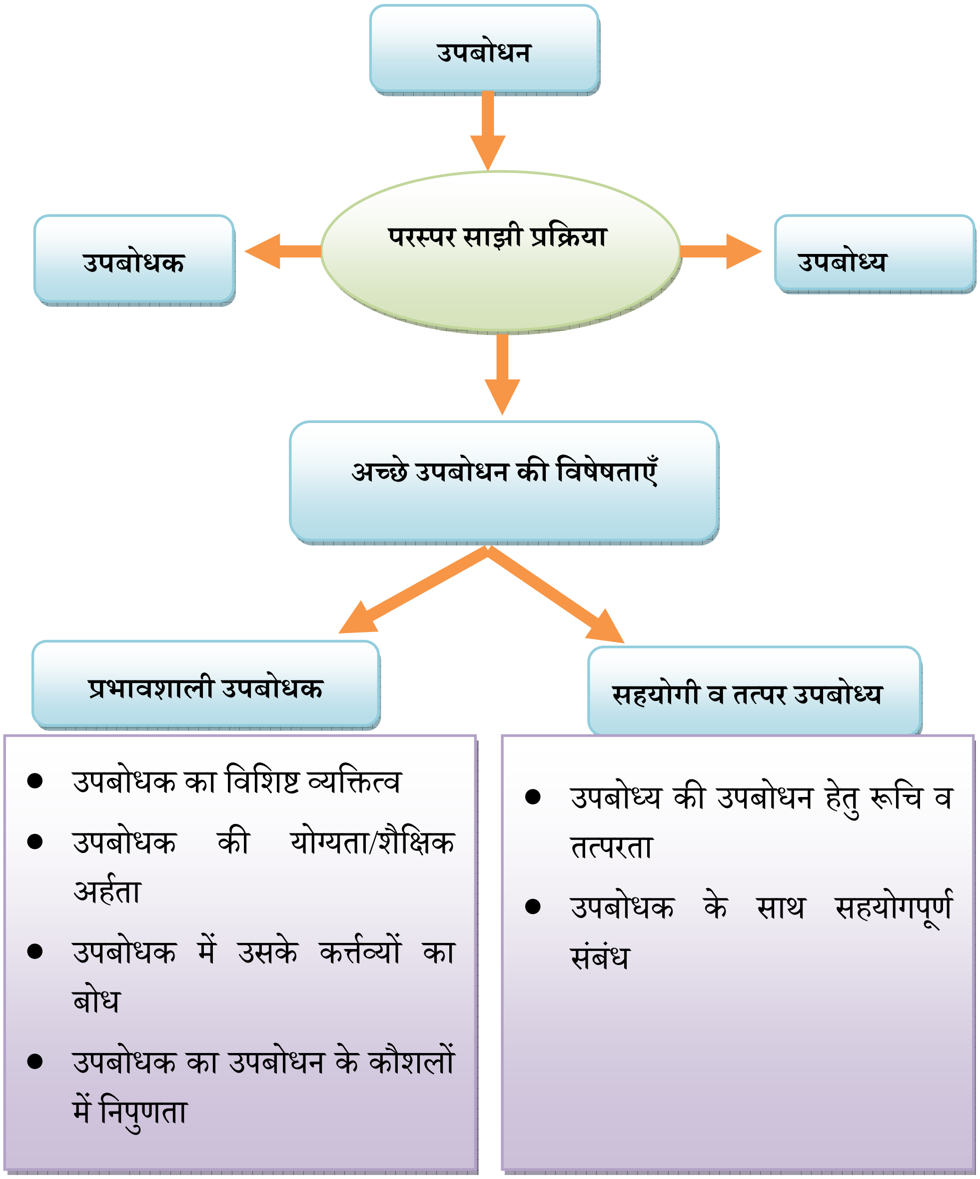

अभ्यास प्रश्न

14. अच्छे उपबोधक को किन्ही पाँच व्यक्तित्व संबंधी विशेषताओं का उल्लेख किजिए।
15. अच्छे परामर्श के किन्ही पाँच कौशलों का उल्लेख किजिए।
16. सौहार्दपूर्ण वातावरण से आप क्या समझते हैं?
17. तदनुभूति से क्या अभिप्राय है?
18. अच्छे परामर्श में उपबोध्य किस प्रकार मदद देते हैं?
19.

8.5 समायोजन के लिए परामर्श

अब तक आप भली-भाँति जान चुकें है कि निर्देशन एवं परामर्श के क्षेत्र में 'समायोजन' शब्द अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। वास्तव में परामर्श व्यक्ति को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बेहतर ढंग से समायोजन करने में सहायता करने की प्रक्रिया है। हम समायोजन के अर्थ, समायोजन की आवश्यकता व व्यक्ति को समायोजित बनाने में परामर्श की भूमिका को विस्तार से समझने का प्रयास करेंगे।

8.5.1 समायोजन: अर्थ

हमारा जीवन समस्याओं का गढ़ है। पग-पग पर हमें समस्याओं का सामना करना पड़ता है। जो व्यक्ति जितने अच्छे ढंग से समस्या का सामना करते हुए आगे बढ़ता जाता है वह उतने ही अच्छे रूप से सफलता से प्रगति करते हुए आगे बढ़ता चला जाता है मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्त्ति के अतिरिक्त जीवन में हम बहुत कुछ चाहते हैं और यही चाह हमें पल-पल संघर्ष करने को प्रेरित करती है। परन्तु बहुत बार ऐसा भी होता है कि जो हम चाहते हैं जिसके लिए हम दिन-रात परिश्रम करते हैं उस उद्देश्य की प्राप्ति हम नहीं कर पाते हैं। उदाहरण के लिए एक बालक मेडिकल कॉलेज में प्रवेश पाने के लिए तरह-तरह की परीक्षाएं देता है। परन्तु अथक परिश्रम के बाद भी उसे सफलता नहीं मिलती। इस हालत में वह अपने लक्ष्य को ही परिवर्त्तित कर देता है तथा बी0 एससी0 में प्रवेश लेकर आगे एम0 एससी0 तथा प्राध्यापक बनने की बात को पूरा करने के लिए जुट जाता है। एक क्षेत्र में असफलता के बाद दूसरे किसी क्षेत्र का चुनाव करना, अपने लक्ष्य की ऊँचाई को अपनी योग्यता एवं परिस्थितियों के अनुसार घटा देना, इस प्रकार के संशाधित एवं परिवर्त्तित व्यवहार को ही समायोजन की संज्ञा दी जाती है। नीचे के चित्र द्वारा आप इसे भली भाँति समझ सकते हैं-

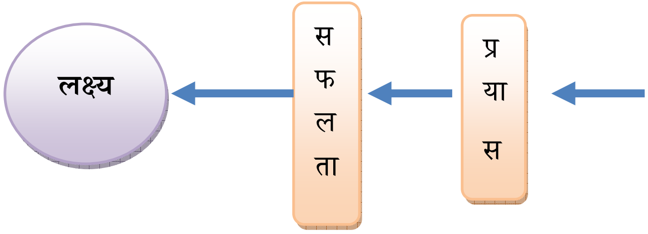

चित्र-1

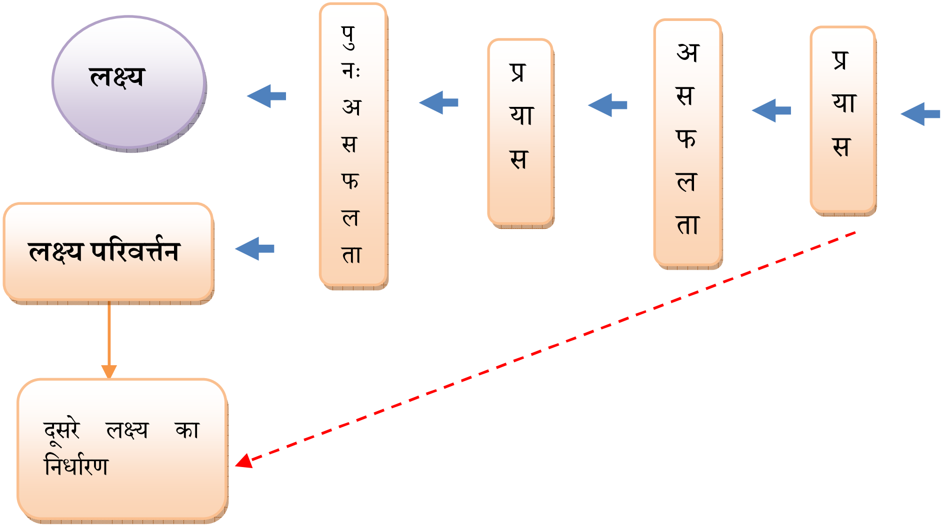

चित्र-2

चित्र- 2 में यह दर्शाया गया है कि व्यक्ति द्वारा बार-बार प्रयास किए जाने पर भी जब वह पूर्व निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पाता है तब वह लक्ष्य को परिवर्त्तित कर तथा दूसरे लक्ष्य का निर्धारण कर जीवन क्षेत्र में आगे बढ़ने का प्रयास प्रारम्भ कर देता है। इसप्रकार परिस्थिति के अनुसार अपने व्यवहार को निर्देशित करने की कला को समायोजन कहते हैं।

समायोजन के अर्थ को और स्पष्ट रूप से समझने के लिए हम विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई निम्न परिभाषाओं का अध्ययन कर सकते हैं-

एल. एस. शेफर- ''समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई जीवधारी अपनी आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं की संतुष्टि से संबंधित परिस्थितियों में संतुलन बनाए रखता है।''

गेट्स, जेरसील्ड एवं अन्य-''समायोजन एक ऐसी सतत् प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपने व्यवहार में इस प्रकार से परिवर्त्तन करता है कि उसे स्वयं तथा अपने वातावरण के बीच और अधिक मधुर संबंध स्थापित करने में मदद मिल सके।''

वोनहेलर-'' हम समायोजन शब्द का अपने आपको मनोवैज्ञानिक रूप से जीवित रखने के लिए वैसे ही प्रयोग में ला सकते हैं जैसे कि जीवशास्त्री अनुकूलन शब्द का प्रयोग किसी जीव को शारीरिक या भौतिक दृष्टि से जीवित रखने के लिए करते हैं।''

उपर्युक्त परिभाषाएँ समायोजन के अर्थ को स्पष्ट कर हमे बताती है कि-

i. समायोजन आवश्यकता एवं संतुष्टि के मध्य संतुलन बनाए रखने की प्रक्रिया है।
ii. समायोजन परिस्थिति के अनुसार अपने व्यवहार को निर्देशित करने की प्रक्रिया है।
iii. व्यक्ति में जितनी अधिक समायोजन क्षमता होती है वह मनोवैज्ञानिक रूप से उतना स्वस्थ एवं सबल पाया जाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जीवन में संतुष्ट एवं सुखी रहने की कुंजी समायोजन की प्रक्रिया के हाथों में है और समायोजन की यह प्रक्रिया बालक और उसकी परिस्थितियों के बीच झूलती रहती है। कभी बालक की योग्यता, क्षमताएँ तथा उसे मिलने वाला परामर्श परिस्थितियों पर हावी हो जाता है तो कभी परस्थितियों के आगे घुटने भी टेकने पड़ते हैं। समायोजन ऐसी ही प्रक्रिया और क्षमता का भाव है जो बालक को उसकी अपनी योग्यता और क्षमताओं के संदर्भ में उसकी अपनी परिस्थितियों के अनुसार उसे आगे प्रगति के मार्ग पर ले जाने में सहायता करती है। बालक के जीवन में यह प्रक्रिया कभी रूकने का नाम नहीं लेती है क्योंकि जीवन कभी रूकता नहीं है और परिवर्त्तनों के साथ-साथ ही समायोजन की प्रक्रिया को भी बदलते रहना पड़ता है। इसी बदलाव और अनुकूलन क्षमता में बालक का सर्वांगीण विकास उसकी प्रगति, संतुष्टि तथा खुशी का दारोमदार होता है।

8.5.2 समायोजन की आवश्यकता

व्यक्ति को जीवन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में समायोजन की आवश्यकता होती है। मुख्य रूप से निम्नलिखित क्षेत्रों में समायोजन आवश्यक है-

1. व्यक्तिगत आवश्यकता ओं की संतुष्टि- मनुष्य के व्यक्तिगत आवश्यक्ताओं में शारीरिक आवश्यकताएं (भूख, प्यास, नींद, विश्राम आदि), भौतिक आवश्यकताएं (सुख, सुविधा पहुंचाने वाले वस्तु), सामाजिक व मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएं (स्नेह व प्यार पाने और देने, आदर व सम्मान प्राप्त करने आदि संबंधी) आती हैं। इन सभी प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के मध्य संतुलन बनाकर रखे। इसके लिए उसे समायोजित होना आवश्यक है।
2. आकर्षक व्यक्तित्व के विकास हेतु- एक सुसमायोजित व्यक्ति ही आकर्षक व प्रभावशाली व्यक्तित्व का स्वामी होता है। आकर्षक व्यक्तित्व के विकास हेतु व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक व सांवेगिक विकास होना आवश्यक है। यहां उल्लेखनीय है कि सुसमायोजित व्यक्ति ही उचित समय पर उचित रूप से उचित संवेगों की अभिव्यक्ति करण है। इसी प्रकार व्यक्ति में जितनी अधिक समायोजन क्षमता होती है व मनोवैज्ञानिक रूप से उतना ही स्वस्थ एवं सबल होता है।
3. शैक्षिक विकास हेतु-छात्रों के शैक्षिक विकास हेतु उनका विद्यालय, शिक्षकों, सहपाठियों व पाठ्यक्रम के साथ उचित समायोजन बनाना आवश्यक है। जो छात्र ऐसा कर लेते हैं वे शैक्षिक प्रगति की राह में आगे बढ़ते चले जाते हैं।

4. समाजिक जीवन को समृद्ध बनाने हेतु-सामाजिक जीवन को समृद्ध बनाने हेतु व्यक्ति का दूसरे व्यक्तियों के साथ संबंध अच्छे व मधुर होने चाहिए। फिर चाहे परिवार के विभिन्न सदस्यों के साथ संबंध की बात हो या मित्र और संबंधियों के साथ संबंध की बात हो या पड़ोसियों तथा समुदाय के अन्य सदस्यों के साथ संबंध की बात हो, प्रत्येक संबंधों में व्यक्ति को मधुरता लानी चाहिए। सुखी व मधुर संबंध हेतु समायोजन आवश्यक है। दूसरे शब्दों में सुखी पारिवारिक व सामाजिक जीवन का मूलमंत्र समायोजन है। क्योंकि कभी-कभी कुछ लोग हमारी तरह के नहीं होते हैं। हमसे विपरित होते हैं। परन्तु हमें अपने अपने दैनिक जीवन में उनसे भी मेल मिलाप करना होता है। कहीं-न-कहीं उनसे मदद की आवश्यकता पड़ सकती है। अतः ऐसे व्यक्तियों के साथ भी हमें अच्छे संबंध बनाए रखने की आवश्यकता होती हे। यह कार्य हम तभी कर पाते हैं जब हमें समायोजन की कला आती हो।इस प्रकार व्यक्ति भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न अवसरों पर समायोजन कर सुखी पारिवारिक व सामाजिक जीवन बिता सकता है।
5. व्यावसायिक जीवन को समृद्ध बनाने हेतु-व्यक्ति अपने प्रयत्नों तथा मिलने वाले अवसरों के फलस्वरूप तरह-तरह के व्यवसाय अपनाते हैं। एक व्यक्ति अपने काम में बहुत अच्छा हो सकता है। लेकिन यदि वह अपने कार्य क्षेत्र के सामाजिक आबोहवा के साथ समायोजित नहीं है तो वह कभी अच्छी उपलब्धि प्राप्त नहीं रह सकता है। अतः व्यावसायिक प्रगति हेतु आवश्यक है कि व्यक्ति का कार्य करने की परिस्थितियों, समय, वेतन आदि से संतुष्टि तथा सहकर्मियों के साथ मधुर संबंध हो। इसके लिए व्यक्ति को अपने व्यावसायिक परिस्थितियों के साथ समायोजित होना आवश्यक है।

8.5.3 समायोजन के लिए परामर्श की भूमिका

एक व्यक्ति उस समय तक या उतनी ही सीमा तक पूरी तरह समायोजित रहता है जब तक कि उसकी मूलभूत आवश्यकताओं की उसकी अपनी दृष्टि से पूर्त्ति होती रहे अथवा उसे उनके पूरे होने की आशा बनी रहे। जैसे ही उसे यह आभास होने लगता है कि उसकी इन आवश्यकताओं की पूर्त्ति में बाधा आ रही है वह निराश होकर कुसमायोजन का शिकार बन जाता है। एक कुसमायोजित व्यक्ति विभिन्न प्रकार की व्यवहार तथा समायोजन संबंधी समस्याओं से ग्रस्त होकर अपने तथा दूसरों के विकास या प्रगति में बाधा बनने लगता है।

जीवन संघर्ष और समस्याओं का दूसरा नाम है। लेकिन कभी-कभी व्यक्ति इसे समझ नहीं पाते हैं और घबरा जाते हैं। अतः आवश्यकता होती है कि व्यक्ति में परिस्थितियों का सामना करने के लिए आवश्यक सहायक समझ विकसित की जानी चाहिए ताकि वे समस्याओं का सामना कर उनका उचित समाधान ढूंढते हुए वे ठीक प्रकार से समायोजित रह सकें। कोशिश यही होनी चाहिए कि व्यक्ति अपनी समस्याओं से अपने आप ही निपटे। व्यक्ति में ऐसी कार्यकुशलता विकसित करने के लिए परामर्श आवश्यक होता है। अतः व्यक्ति में समायोजन की क्षमता के विकास हेतु आवश्यक

सहयता प्रदान करने के लिए शैक्षिक, व्यक्तिगत तथा व्यावसायिक परामर्श की व्यवस्था की जानी चाहिए।

व्यक्तिगत जीवन में समायोजन हेतु परामर्श की भूमिका

1. शारीरिक कमी, अस्वस्थता या दुर्बलता के कारण हीनता व निराशा से ग्रस्त होकर कुसमायोजन की ओर बढ़ते जा रहे व्यक्ति में उपबोधक सकारात्मक ऊर्जा का संचार करके उसे समायोजित बनाने में सहायता प्रदान करता है।
2. चिंता, क्लेश, निराशा, कुण्ठा जैसे नकारात्मक सोचों से ग्रस्त व्यक्तियों में सकारात्मक सोचों का विकास करता है।
3. व्यक्ति के वैवाहिक संबंधों, अन्य पारिवारिक संबंधों व सामाजिक संबंधों को सुदृढ़ व मधुर बनाने में उपबोधक सहायता प्रदान करता है।
4. संवेगात्मक रूप से समायोजित बनाने में उपबोधक व्यक्ति की सहायता करता है।
5. व्यक्ति को उसकी अच्छाइयों तथा कमयों के बारे में जानकारी देकर उसके योग्यता के स्तर से परिचित करवाता है।

शैक्षिक जीवन में समायोजन हेतु परामर्श की भूमिका

1. उपबोधक छात्रों को उनकी योग्यताओं, अभिक्षमताओं, अभिरूचिों, कमियों के बारे में अधिक जानकारी प्रदान करके उन्हें स्वयं को समझने में सहायता प्रदान करता है।
2. छात्रों को उनकी आवश्यकताओं व योग्यताओं के अनुसार सर्वाधिक उपयुक्त पाठ्यक्रमों का चयन करने में सहायता प्रदान करता है।
3. छात्रों में वांछनीय अभिवृत्तियों व व्यवहार-विन्यासों को विकसित करने में सहायता प्रदान करता है।
4. अन्य लोगों से बेहतर संबंध बनाने में व उस परिवेश जिसमें वे रहते हैं, को समझने में सहायता करता है।
5. प्रतिभाशाली, मंदबुद्धि तथा विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की पहचान करने व उनमें उचित समायोजन की क्षमता का विकास करने में सहायता करता है।

व्यावसायिक जीवन में समायोजन हेतु परामर्श की भूमिका

1. उपबोधक व्यक्ति को उनके योग्यता रूचि, क्षमता के अनुसार उपयुक्त रोजगार के चयन में सहायता करता है।
2. व्यावसायिक साथियों, अधिकारियों के साथ सुदृढ़ व मधुर संबंधों के निर्माण में व्यक्ति की सहायता करता है।
3. व्यक्ति को उसकी शक्तियों व कमजोरियों का ज्ञान प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है।

4. व्यक्ति को दिन-ब-दिन बदलती परिस्थितियों व नवीन परिवर्त्तनों से परिचित करवाने व उसके अनुसार स्वयं को परिवर्तित करने में सहायता प्रदान करता है।

सरांश के रूप में हम कह सकते हैं कि परामर्श व्यक्ति में उत्तम समायोजन की क्षमता को विकसित करने हेतु सहायता प्रदान करने की प्रक्रिया है। उपबोधक व्यक्ति को व्यक्तिगत कमियों का उपचार करने, जीवन की यर्थाथता को पहचानने व उनके अनुकुल व्यवहार को निर्देशित करने हेतु सहायता प्रदान करता है।

अभ्यास प्रश्न

20. परिस्थिति के अनुसार अपने व्यवहार को परिवर्त्तित एवं संशोधित कर लेने की प्रक्रिया को ....कहते हैं।
21. आवश्यकताओं के पूर्ण ना होने पर व्यक्ति निराश होकर .... का शिकार हो जाता है।
22. व्यक्ति को जीवन में समायोजन करना क्यों आवश्यक है?
23. व्यक्ति को व्यावसायिक रूप से समायोजित बनाने में उपबोधक कैसे सहायता प्रदान करता है।
24. शैक्षिक क्षेत्र में समायोजन स्थापित करने में उपबोधक छात्रों को किस प्रकार सहायता प्रदान करता है?

8.6 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुकें हैं कि समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श की दो महत्त्वपूर्ण विधियाँ हैं। परामर्श को सदैव से 'उपबोध्य केन्द्रित' प्रक्रिया माना जाता रहा है। व्यक्तिगत परामर्श इसी अवधारणा पर आधारित है। इसमें उपबोध्य उपबोधक के सामने बैठकर अधिक सक्रिय होकर अपने व्यक्तिगत जीवन से संबंधित निजी समस्याओं के समाधान हेतु सहायता प्राप्त करता है। समूह परामर्श एक नवीन अवधारणा है, जिसमें व्यक्तियों का समूह उपबोधक के साथ मिलकर अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को दूर करने की कला सीखते हैं। व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श के अपने-अपने लाभ व सीमाएँ हैं। दोनों में कुछ समानताएँ व कुछ विभिन्नताएँ हैं। वास्तव में कुछ परिस्थितियों में समूह परामर्श अधिक प्रभावशाली होता है, वहीं कुछ परिस्थितियों में व्यक्तिगत परामर्श अधिक उपयोगी माना जाता है। उपबोध्य के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए उपबोधक का अच्छा व प्रभावशाली होना आवश्यक है। परामर्श की प्रभाविता, बड़ी सीमा तक उपबोधक के व्यक्तित्व और अन्य विशेषताओं तथा उपबोध्य के तत्परता व सहयोगपूर्ण व्यवहार संबंधी विशेषताओं पर आधारित रहती है। व्यक्ति द्वारा परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यवहार को परिवर्त्तित व संशोधित करने की प्रक्रिया को समायोजन कहते हैं। व्यक्ति के सर्वांगीण विकास हेतु समायोजन एक अनिवार्य प्रक्रिया है। परामर्श व्यक्ति को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में बेहतर ढंग से

समायोजन करने में सहायता प्रदान करती है। इस इकाई के अध्ययन से आप परिस्थितिनुसार समूह परामर्श व व्यक्तिगत परामर्श के प्रयोग के महत्त्व को अभिव्यक्त कर सकेंगे। आप प्रभावशाली परामर्श हेतु उपबोधक व उपबोध्य की भूमिका को व्यक्त कर सकेंगे तथा आप समायोजन की आवश्यकता को समझते हुए इस दिशा में परामर्श की भूमिका का बखान कर सकेंगे।

8.7 शब्दावली

8 **समूह परामर्श :** परामर्श की वह विधि जिसमें व्यक्तियों का एक छोटा समूह उपबोधक के साथ मिलकर समस्या का समाधान करना सीखता है, समूह परामर्श कहते हैं।

9 **समूह गतिकी:** समूह के सदस्यों के द्वारा परस्पर एक दूसरे से अन्तःक्रिया के फलस्वरूप उनके व्यवहार में होने वाले परिवर्त्तन को समूह गतिकी कहते हैं।

10 **व्यक्तिगत उबोधन:** परामर्श की वह विधि जिसमें उपबोधक केवल एक उपबोध्य को परामर्श प्रदान करता है, व्यक्तिगत परामर्श कहते हैं।

11 **परामर्श कौशल:** परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावषाली व सक्रिय बनाने के लिए उपबोधक द्वारा परामर्श प्रदान करने के क्रम में प्रयोग किए जाने वाले क्रियाओं, प्रक्रियाओं एवं व्यवहारों के समूह को परामर्श कौशल कहते हैं।

12 **संज्ञानात्मक कौशल**: परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावषाली बनाने के लिए उपबोधक द्वारा प्रयोग किए जाने वाले मस्तिष्क की क्रियाओं से संबंधित कौशल को संज्ञानात्मक कौशल कहते हैं।

13 **भावात्मक कौशल:** परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावषाली बनाने के लिए उपबोधक द्वारा प्रयोग किए जाने वाले उसके भावनाओं से संबंधित क्रियाओं एवं व्यवहारों के समूह को भावात्मक कौशल कहते हैं।

14 **क्रियात्मक कौशल**: परामर्श की प्रक्रिया को प्रभावषाली बनाने के लिए उपबोधक द्वारा प्रयोग किए जाने वाले कार्यों एवं कलाओं को क्रियात्मक कौशल कहते हैं।

15 **परावर्त्तित चिन्तन:** पूर्व अनुभवों का पुनर्गठन करके किसी समस्या के समाधान करने हेतु नवीन विधि की खोज के लिए किए गए चिंतन को परावर्त्तित चिंतन कहते हैं।

16 **सारांशीकरण:** मुख्य मुद्दों को संक्षेप में लाने की प्रक्रिया को सारांषीकरण कहते हैं।

17 **तदनुभूति:** किसी व्यक्ति के सांवेगिक भावों को दूसरे व्यक्ति द्वारा दिल से महसुस करने लगने की प्रक्रिया को तदनुभूति कहते हैं।

18 **समस्या समाधान:** लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक प्रतीत होनेवाली कठिनाईयों पर विजय प्राप्त करने की प्रक्रिया को समस्या समाधान कहते हैं।

19 **समायोजन**: व्यक्ति द्वारा अपनी योग्यता एवं परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यवहार को संषोधित परिवर्त्तित करने की प्रक्रिया को समायोजन कहते हैं।

8.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. समूह परामर्श वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत व्यक्तियों का एक छोटा समूह उपबोधक के साथ मिलकर वैयक्तिक और अंतर्वैयक्तिक समस्याओं को दूर करने की कला सीखते हैं।
2. समूह परामर्श प्रक्रिया के चरण हैं-
   i. समय व स्थान का निर्धारण
   ii. सदस्यों को आपस में परिचित कराना
   iii. उदेश्यों एवं लक्ष्यों का स्पष्टीकरण
   iv. उपबोधक द्वारा वार्त्तालाप के शीर्षक की प्रस्तावना
   v. सदस्यों द्वारा अपने-अपने विचारों को रखना।
   vi. विचार-विमर्श करना
   vii. निष्कर्ष
   viii. अगले सभा के संबंध में निर्णय लेना
3. समूह परामर्श के दो लाभ-
   i. यह मिव्ययी है
   ii. इससे व्यक्तियों को अपनी अभवृत्तियों, आदतों तथा निर्णयन को समानीकृत करने में सहायता मिलती है।
4. व्यक्तिगत परामर्श के उद्देश्य हैं-
   i. व्यक्ति में आत्म समझ का विकास करना।
   ii. व्यक्ति में समायोजन की योग्यता का विकास करना।
   iii. व्यक्तिगत जीवन से संबंधित समस्याओं के संदर्भ में निर्णय लेने की क्षमता का विकास करना।
   iv. व्यक्ति को अपने अंतःद्वन्दों व नकारात्मक भावनाओं पर विजय प्राप्त करने हेतु तैयार करना।
   v. व्यक्ति में सकारात्मक मनोवृत्ति का विकास करना।
   vi. व्यक्ति में सामाजिक, सांवेगिक व आध्यात्मिक लब्धि का विकास करना।
5. व्यक्तिगत परामर्श व समूह परामर्श के मध्य दो अंतर-
   i. व्यक्तिगत परामर्श में उपबोधक केवल एक उपबोधक के साथ आमने-सामने बैठकर परामर्श देता है। लेकिन समूह परामर्श में उपबोध्य उपबोध्यों के छोटे समूह (6-10 उपबोध्यों) को एक साथ परामर्श प्रदान करता है।

ii. व्यक्तिगत परामर्श में उपबोध्य केवल सहायता की प्राप्ति करता है जबकि समूह परामर्श में उपबोध्य दूसरों को सहायता भी प्रदान करता है।

6. समूह परामर्श में निम्न दो नैतिक मूल्यों का ध्यान रखा जाना चाहिए-
   i. समूह के सदस्यों में नैतिक जिम्मेवारियां होनी चाहिए जैसे सदस्यों के प्रति ईमानदारी, बोपनीयता को बनाए रखना, समय बद्धता आदि।
   ii. समूह का कोई सदस्य बिना पूर्व सूचना दिए समूह को नहीं छोड़ सकता है।
7. समूह परामर्श की सीमाएँ हैं-
   i. समूह परामर्श में व्यक्तिगत और निजी समस्याओं को उजागर नहीं किया जा सकता है।
   ii. समूह परामर्श के दौरान स्थिति को नियंत्रित करना उपबोधक के लिए कठिन कार्य है।
   iii. इसमें सदस्यों के अवधान को प्राप्त करने हेतु सृजनात्मक तकनीकों का उपयोग नहीं किया जाता है।
8. गलत
9. गलत
10. सही
11. गलत
12. सही
13. गलत
14. अच्छे उपबोधक की पाँच व्यक्तित्व संबंधी विशेषताऐं
   i. संवेदनशीलता
   ii. अवबोध
   iii. धैर्य
   iv. रूचि व तत्परता
   v. सुसमायोजित व्यक्तित्व
15. अच्छे परामर्श के पाँच कौशल
   i. सौहार्दपूर्ण वातावरण के निर्माण का कौशल
   ii. तदनुभूति
   iii. अभिव्यक्ति कौशल
   iv. श्रवण कौशल
   v. वस्तुनिष्ठ निरीक्षण का कौशल
16. इससे तात्पर्य ऐसे वातावरण से है जो परामर्श प्रक्रिया के प्रारंम्भिक चरण के दौरान उपबोधक द्वारा बनाया जाता है जिसके माध्यम से उपबोध्य सहज समहुस करता है और उपबोधक से मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित होता है।

17. तदनुभूति से तात्पर्य होता है किसी की अनुभूति प्राप्त करना। डायमंड (1949) तदनुभूति को व्यक्त करते हैं कि दूसरे की सोच, भावना, कार्यण को अपनी कल्पना में उतारना और इसी प्रकार के संसार की संरचना करना जैसा कि वह करता है।
18. रूथ-स्टेंग के विचार के अनुसार उपबोध्य की अवधारणा, कार्य हेतु उसकी तत्परता, उसका अन्तर्द्वन्द, दबी इच्छाएँ, अनश्चित अपराध भावना, उसके आचरण के अन्तःस्रोत इत्यादि बातों की समझ सफल परामर्श के आधार है।
19. समायोजन
20. कुसमायोजन
21. व्यक्ति को जीवन में समायोजन करना आवश्यक है –
    i. व्यक्तिगत आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए
    ii. आकर्षक व्यक्तित्व के विकास के लिए
    iii. शैक्षिक विकास के लिए
    iv. समाजिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए
    v. व्यावसायिक जीवन को समृद्ध बनाने के लिए
22. व्यक्ति को व्यावसायिक रूप से समायोजित बनाने में उपबोधक निम्न प्रकार से सहायता प्रदान करता है-
    i. उपबोधक व्यक्ति को उनके योग्यता, रूचि, क्षमता के अनुसार उपयुक्त रोजगार के चयन में सहायता करता है।
    ii. व्यावसायिक साथियों, अधिकारियों के साथ सृदृढ़ व मधुर संबंधों के निर्माण में व्यक्ति की सहायता करता है।
    iii. व्यक्ति को उसकी शक्तियों व कमजोरियों का ज्ञान प्रदान करने में सहायता प्रदान करता है।
23. शैक्षिक क्षेत्र में समायोजन स्थापित करने में उपबोधक छात्रों को निम्न प्रकार से सहायता प्रदान करता है-
    i. उपबोधक छात्रों को उनकी योग्यताओं, अभिक्षमताओं, अभिरूचियों, कमियों के बारे में अधिक जानकारी प्रदान करके उन्हें स्वयं को समझने में यहायता प्रदान करता हैं
    ii. छात्रों को उनकी आवश्यकताओं व योग्यताओं के अनुसार सर्वाधिक उपयुक्त पाठ्क्रमों का चयन करने में सहायता प्रदान करता है।
    iii. प्रतिभाशाली, मंदबुद्धि तथा विशेष आवश्यकता वाले विद्यार्थियों की पहचान करने व उनमें उचित समायोजन की क्षमता का विकास करने में सहायता करता है।

8.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. शर्मा, आर0ए0 तथा षिखा चतुर्वेदी (2010) “शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देषन तथा परामर्श”, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
2. मिश्रा, मंजू (2007) “शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देषन’’, ओमेगा पब्लिकेशन्स, न्यू देलही।
3. अग्रवाल, जे0सी0 (1989) “एजूकेषन वुकेशनल गाइडैन्स एण्ड कॉन्सिलिंग”, देलही दुआवा हाउस।
4. जायसवाल, सीताराम (1887) “शिक्षा में निर्देशन और परामर्श”, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
5. नायक, ए0के0 एण्ड भी0 के राव (2004) “गाइडेन्स एण्ड कैरियर कॉन्सिलिंग”, ए0पी0 एच पब्लिषिंग कॉरपरेषन, न्यू देलही।
6. मंगल, एस0 के (2011) “शिक्षा मनोविज्ञान” पी एच एल लरनिंग प्राइवेट लिमिटेड, न्यू देलही।
7. बंगाली, एम. (1984) “गाइडेन्स एण्ड कॉन्सिलिंग”, सेठ पब्लिशर्स, बॉम्बे।
8. क्रो एण्ड क्रो “इंट्रोडक्सन टु गाइडेन्स’’, सेकेण्ड, एडीषन, युरेषिया पब्लिषिंग को., न्यू देलही।
9. जयसवाल, मोनिका (1968) “गाइडेन्स एण्ड कॉन्सिलिंग”, प्रकाशन केन्द्र, लखनऊ।
10. राव. एस. एन. (1992) “कॉन्सिलिंग एण्ड गाइडेन्स”, टाटा मेकग्राहिल, न्यू देलही।
11. “इंट्रोडक्सन टु गाइडेन्स एण्ड कॉन्सिलिंग”(2009) बी0एड0 के छात्रों के लिए स्व अध्ययन सामग्री, स्कूल ऑफ एजूकेषन, इंदिरा गांधी नेशनल ओपेन यूनीवर्सिटी, न्यू देलही।
12. “निर्देशनः विधियाँ एवं तकनीक”(2010) एम0एड0 के छात्रों के लिए स्वअध्ययन सामग्री, स्कूल ऑफ एजूकेषन, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, न्यू दिल्ली।
13. गुप्ता, एस0पी0 एवं अल्का गुप्ता (2012) “उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान”, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

8.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. समूह परामर्श एवं व्यक्तिगत उपबोधक का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. समूह परामर्श के अर्थ एवं उद्देष्यों को स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न चरणों एवं अवस्थाओं का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. व्यक्तिगत परामर्श से आप क्या समझते हैं। समूह परामर्श से तुलना करते हुए इसके महत्त्व एवं उद्देश्यों पर दृष्टिपात कीजिए।
4. प्रभावशाली परामर्श की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
5. समायोजन से आप क्या समझते हैं? समायोजन की आवश्यकता एवं समायोजन की क्षमता के विकास में परामर्श की भूमिका का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 9- शिक्षा के विभिन्न स्तर पर सूचना, यथास्थिति परिचायक, स्थानन एवं अनुवर्तन सेवाएँ तथा निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 सूचना सेवा
 9.3.1 शैक्षिक सूचना में प्रदत्त सामग्री
 9.3.2 व्यावसायिक या रोजगार सम्बन्धी सूचना सामग्री
 9.3.3 व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन सम्बन्धी सूचना सामग्री
 9.3.4 सूचना सेवा की कार्यविधि
 9.3.5 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सूचना सेवा
9.4 यथा स्थिति परिचायक(ओरिएंटेशन) सेवा
 9.4.1 ओरिएंटेशन सेवा कैसे प्रदान की जाए
 9.4.2 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर ओरिएंटेशन सेवा
9.5 स्थानन सेवा
 9.5.1 स्थानन सेवा का संगठन
 9.5.2 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर स्थानन सेवा
9.6 अनुवर्ती सेवा या अनुवर्तन सेवा
 9.6.1 अनुवर्ती सेवा की कार्यविधि
 9.6.2 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अनुवर्ती सेवा
9.7 निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन
9.8 शब्दावली
9.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
9.11 सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री
9.12 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में जीवन की जटिलताएं जितनी अधिक होती जा रही हैं, निर्देशन अथवा मार्गदर्शन की आवश्यकताएँ उतनी ही बढ़ती जा रही हैं। आदिकाल से आज तक हमेशा ही अधिक अनुभव वाले व्यक्ति अन्य कम अनुभव वाले व्यक्तियों का पथ प्रदर्शन करते आये हैं, उदाहरणस्वरुप यदि हम घर के वातावरण में देखे तो प्रारम्भ से ही बालक को अपने घरेलू वातावरण, माता-पिता एवं घर के अनुभवी व्यक्ति से कुछ न कुछ जीवन पर्यन्त सीखने को मिलता है। इस सीखने की प्रक्रिया में किसी न किसी रुप में मार्ग-दर्शन की आवश्यकता प्रत्येक बालक या व्यक्ति को रहती है। अतः इस आवश्यकता की पूर्ति हेतू निर्देशन या मार्गदर्शन को एक सुनियोजित और वैज्ञानिक विषय के रुप में विकसित किया गया।

प्रत्येक मनुष्य अपने उद्देश्य की पूर्ति हेतु अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास कर योजनायें बनाता है। परन्तु कभी ऐसा समय भी आ जाता है जब उसे अपना मार्ग स्पष्ट नहीं दिखाई देता है। वह अपने प्रयासों से वांछित उद्देश्यों को प्राप्त नहीं कर सकता है, तब उसे ऐसे अनुभवी व्यक्ति की आवश्यकता पड़ती है जो उसको मार्ग दिखाने और उसकी योग्यताओं के विकास में उसकी सहायता करें। अतः ’मार्गदर्शन’ एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमे एक व्यक्ति से किसी व्यक्ति को सहायता प्रदान किया जाता है। मार्गदर्शन अंग्रेजी शब्द ’गाइडेन्स (Guidance)’ का हिन्दी रुपान्तर है जिसका अर्थ होता है ’मार्ग दिखाना’। इसे ’निर्देशन’ भी कहा जाता है परन्तु निर्देशन शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द डाइरेक्शन (Direction) के लिए ही बहुधा काम में लाया जाता है।

’मार्गदर्शन’ अथवा निर्देशन चर्तुमुखी विकास-प्रक्रिया है। अतः हम कह सकते है कि निर्देशन वह प्रक्रिया है जो किसी व्यक्ति को उसकी ’प्राकृतिक शक्तियों’ से अवगत कराने के उपायों का बोध कराती है।

बालकों के चर्तुमुखी विकास एवं समायोजन हेतु प्रारम्भ से ही उचित मार्गदर्शन की आवश्यकता रहती है। स्कूल इस दिशा में सबसे प्रभावशाली एवं सशक्त भूमिका निभा सकते हैं। अतः स्कूल में औपचारिक शिक्षण एवं व्यक्तित्व विकास की विभिन्न गतिविधियों के साथ-साथ में मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं की भी समुचित व्यवस्था करनी चाहिए। इस कार्य हेतु शिक्षण को यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि वे अपने स्कूल में किस-किस प्रकार की मार्गदर्शन सेवायें उपलब्ध करा सकते है। मार्गदर्शन सेवाओं को स्कूल में आयोजित करते समय मुख्य बिन्दुओं पर ध्यान देना आवश्यक है-

- स्कूल में मार्गदर्शन सेवाओं के प्रकार तथा रुप।
- स्कूल की मार्गदर्शन सेवाओं में सहायक अभिलेखों का रख-रखाव।
- स्कूल में परामर्शदाताओं की भूमिका।

एक शिक्षक अपने स्कूल में बालकों के सम्पूर्ण मार्गदर्शन हेतु सूचना, यथास्थिति परिचायक, स्थानन एवं अनुवर्तन सेवाओं का आयोजन विभिन्न स्तर पर आयोजित कराना चाहिए। इस प्रकार

की मार्गदर्शन सेवाओं को आयोजित करने से बालकों को नये वातावरण में समायोजन करने में सहायता प्राप्त होती हैं। इन मार्गदर्शन सेवाओं की सहायता से हम बालकों के विषय में पूरी जानकारी प्राप्त कर उचित मार्गदर्शन दे सकते हैं जिसकी सहायता से उसे अपने व्यवसाय अथवा नये कार्य करने में सहायता तथा उद्देश्य स्पष्ट समझने में मदद मिलती है। विद्यालयों में मार्गदर्शन सेवाओं के आयोजन के पश्चात् उसका मूल्यांकन करना आवश्यक है। इसकी सहायता से शिक्षक को अनुमान लग जायेगा कि आयोजित मार्गदर्शन सेवा कार्यक्रम सफल रहा या नही। स्कूल के बालकों से चर्चा करके शिक्षक यह अनुमान लगाता है कि मार्गदर्शन सेवा कार्यक्रम आयोजन का लाभ बालक को अपनी चतुर्मुखी विकास में मिला है या नहीं।

9.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात आप-

1. मार्गदर्शन सेवाओं को स्कूल के विभिन्न शिक्षा स्तर पर आयोजित करने की शर्ते बता सकेंगे।
2. मार्गदर्शन सेवाओं के प्रकार तथा मार्गदर्शन सेवाओं के विषय में बता सकेंगे।
3. आप समझ सकेंगे की मूल्यांकन करने से मार्गदर्शन कार्यक्रम के आयोजन की कमियां एवं अच्छाईयों का पता लगता है।
4. निष्कर्ष निकाल सकेंगे कि मार्गदर्शन सेवाओं का प्रत्येक मनुष्य के जीवन में साकारात्मक प्रभाव है।
5. अलग-अलग मार्गदर्शन सेवाओं के मध्य अन्र्तसंबंध स्थापित कर सकेंगे।
6. कम से कम एक क्रिया का आयोजन विभिन्न मार्गदर्शन सेवाओं के लिए कर सकेंगें
7. स्कूल में मार्गदर्शन सेवाओं के महत्व को विस्तार से बता सकेंगे।
8. आप यह व्याख्या कर सकेंगे कि किस प्रकार मार्गदर्शन सेवाऐं आयोजित की जाए।
9. आप मार्गदर्शन सेवाओं के अर्थ को स्पष्ट कर उसकी व्याख्या भी कर सकेंगे।
10. आप मार्गदर्शन कार्यक्रम से होने वाले लाभ को सूचीबद्ध कर सकेंगे।

9.3 सूचना सेवा (Information Service)

आप सभी जानते होंगे कि बालकों को अपने आपको समायोजित करने, अपने व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करने तथा आने वाले दिनों में ठीक तरह से अपना जीवनयापन करने में समर्थ होने हेतु विभिन्न प्रकार की सूचनाओं से अवगत होते रहने की आवश्यकता रहती है। यदि बालकों को स्कूल में भी अच्छे ढ़ंग से सुविधानुसार सूचनाओं की प्राप्ति सुनिश्चित की जाए तो वह प्रगति की राह

पर आसानी से अग्रसर हो सकता है। बालकों की सूचना संबंधी इन आवश्यकताओं के मुख्य रुप से तीन प्रमुख श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है जैसे-

1. शैक्षिक विकास करने संबंधी आवश्यक यतायें
2. रोजगार पाने में समर्थ होने संबंधी आवश्यकतायें
3. व्यक्तिगत तथा सामाजिक संबंधी आवश्यकतायें

9.3.1 शैक्षिक सूचना में प्रदत्त सूचना सामग्री

निम्न प्रकार की सूचनायें एक स्कूल अपने बालकों को दे सकता हैं-

- बालकों को विभिन्न स्कूलों एवं कॉलेज, व्यावसायिक संस्थानों, इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग संस्थानों, ललितकला स्कूलों तथा संस्थानों, आदि की विवरणिकाओं पत्रिकाओं की प्रतियों के माध्यम से इनमें चलायें जा रहे निर्धारित योग्यताओं तथा शर्तों से परिचित कराना, प्रवेश परीक्षा के प्रारुप तथा विवरणिका मिलने की तिथियों से परिचित कराना, निर्धारित पाठ्यक्रमों हेतु आवश्यक शुल्क तथा अन्य खर्चों से परिचित कराना तथा उनमें मिलने वाले वजीफे, अन्य सुविधाओं की शर्तों तथा राशि से परिचित कराना।
- किस प्रकार की शैक्षिक पढ़ाई तथा प्रगति के लिए किस तरह की सुविधाएँ आपसपास के जिले, प्रान्त तथा देश में प्राप्त है। इस बात से बालकों को अवगत कराना।
- जिस स्कूलों में पढ़ रहे है, उससे उन्हें इस समय अपनी शैक्षिक प्रगति हेतु किस रुप में अधिक लाभ पहुँच सकता है, इस प्रकार की सूचनायें प्रदान करना।
- स्कूल की शैक्षिक सूचना सेवा से उन बालकों को जो किसी कारणवश भविष्य में नियमित तथा औपचारिक शिक्षा जारी नहीं रख सकते उनके लिए सतत शिक्षा तथा पत्राचार पाठ्यक्रम शिक्षा के स्रोतो से अवगत कराने का कार्य किया जा सकता है।

9.3.2 व्यावसायिक या रोजगार संबंधी सूचना सामग्री

आप समझ गये होंगे कि शैक्षिक सूचना बालकों को उचित पाठ्यक्रम शिक्षा संस्थान के चयन हेतु कितनी उपयोगी है। जीवन में हर व्यक्ति को जीविकोपार्जन हेतु किसी न किसी रोजगार या व्यवसाय को अपनाना पड़ता है। इस दृष्टि से स्कूल शिक्षा को रोजगार या व्यवसाय से जोड़ना आवश्यक होता है। रोजगार की संभावनाओं के संदर्भ में निम्नलिखित सूचनायें स्कूलों में बालकों को प्रदान की जा सकती हैं-

- किस प्रकार के व्यवसाय हेतु किस प्रकार की न्यूनतम योग्यताओं, अभिक्षमताओं, रुचियों आदि की आवश्यकता पड़ती है इससे संबंधित सूचनाऐं प्रदान करना।

- रोजगार तथा व्यवसायों की जानकारी प्राप्त कराने वाली सामग्री जैसे मोनोग्राफ, व्यवसाय संबंधी संक्षिप्त विवरण पत्र, व्यवसाय संबंधी मैनुअल तथा गाइड, स्लाइड, फिल्म, पुस्तकें आदि का स्कूल में रखना तथा इसे बालकों को उपलब्ध कराना।
- स्थान विशेष में, या जिले, प्रांत तथा देश में किस-किस प्रकार के रोजगारी (स्व0 रोजगार तथा नौकरियों) की संभावनाएं आगामी भविष्य में अधिक हैं इस प्रकार की जानकारी प्रदान करना।
- रोजगार कार्यालयों तथा समाचार पत्रों की रिक्तियों संबंधी विज्ञप्तियों को अच्छी तरह बुलेटिन या प्रदर्शन बोर्डो पर प्रदर्शित करना।
- विभिन्न व्यवसायों सफल व्यक्तियों के लेक्चर, पैनलचर्चा, विचारगोष्ठी, कार्यशालाओं का आयोजन भी स्कूल में करते रहना चाहिए।

9.3.3 व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन संबंधी सूचना सामग्री

आप अवगत होंगे कि समायोजन तथा दूसरों के साथ स्वस्थ एवं बेहतर संबंध बनाने में सभी को परेशानी होती है। निम्नलिखित सूचनाऐं बेहतर समायोजन तथा स्वस्थ संबंध निर्माण में सहायक होती हैं-

- बालकों को स्वच्छता की आवश्यकता क्यों है? संबंधी सूचना तथा पर्यावरण की स्वच्छता हेतु क्या करना चाहिए? इससे संबंधित सूचना।
- बालकों को स्वस्थ, निरोग एवं सबल बनने संबंधी सूचनायें।
- मानसिक स्वास्थ्य बनाए रखने संबंधी सूचनायें।
- व्यक्ति के पारिवारिक जीवन के संबंध में सूचनाऐं।
- दूसरों की समस्याओं तथा आवश्यकताओं के संदर्भ में अपने आपको समायोजित करने में अपेक्षित सूचनाऐं,
- अधिकार तथा कर्तव्य से संबंधित सूचनाऐं।
- बालकों को अपने समय, साधन तथा शक्तियों का सही उपयोग करने संबंधी आावश्यक सूचनाऐं।

9.3.4 सूचना सेवा की कार्यविधि

आप जान गए होंगे कि कितने प्रकार की सूचना सामग्री सूचना सेवा के अन्तर्गत समाहित होती है। आइए अब हम जानेंगे कि सूचना सेवा की कार्यविधि क्या है? सूचना सेवा की कार्यविधि के तीन प्रमुख चरण है-

- **सूचनाएं इकट्ठी करना**:- इसके अन्तर्गत विभिन्न प्राथमिक एवं दितीयक श्रोतों से विविध प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित किया जाता है। यह सभी प्रकार की सूचनाएँ बालकों हेतु महत्वपूर्ण होनी चाहिए।
- **सूचनाएं वर्गीकृत करना**:-इस चरण में एकत्रित सूचनाओं का मूल्यांकन करते हैं अधूरी, अपर्याप्त, अविश्वसनीय सूचनाओं को छाँटकर सूचनाओं को उनकी प्रकृति एवं उपयोग के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में वर्गीकृत कर दिया जाता है।
- **सूचनाओं को बालकों तक पहुँचाना**:- इस चरण में वर्गीकृत की गयी सूचनाओं को विभिन्न माध्यमों व तरीकों से व्यक्तिगत या सामूहिक रुप से बालकों तक पहुंचाने का कार्य किया जाता है। इन सूचनाओं को बुलेटिन बोर्ड, कम्प्यूटर मुद्रित मोनोग्राफ को बालकों से पहुंचाया जाता है।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को एकत्रित करके सूचना सेवा से किस प्रकार बालकों का मार्गदर्शन किया जाता है।

9.3.5 शिक्षा के विभिन्न स्रोतों पर सूचना सेवा

प्राथमिक स्तर की शिक्षा में सूचना सेवा से बालकों को व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन संबंधी सूचनाओं जैसे- स्वच्छता क्यों आवश्यक है? स्वस्थ रहने हेतु अच्छी आदतें, समायोजन संबंधी सूचनाओं से बालकों का मार्गदर्शन किया जाता है तथा व्यक्तिगत समस्याओं के हल में सहायक सूचनायें प्रदान की जाती हैं।

माध्यमिक स्तर की शिक्षा में व्यक्तिगत एवं सामाजिक समायोजन संबंधी सूचनाओं के अलावा शैक्षिक सूचनाओं की जानकारी आवश्यक है क्योंकि आप सभी जानते होंगे कि इस स्तर पर विषयों के चयन, पाठ्यक्रम् के चयन, विभिन्न छात्रवृतियों, अच्छी शिक्षण संस्थाओं में दाखिला हेतु आवश्यक सूचनाओं के अभाव में तमाम परेशानियों का सामना करना पड़ता है उच्च माध्यमिक स्तर की शिक्षा में भी व्यक्तिगत, शैक्षिक के साथ-साथ व्यावसायिक या रोजगार संबंधी सूचना सूचना सेवा से प्रदान किया जाना अत्यन्त ही जरुरी होता है क्योंकि यही वह समय काल होता है जब बालक भविष्य में जीविकोपार्जन हेतु उचित व्यवसाय या रोजगार के चयन हेतु सोचता है।

इस प्रकार आप समझ गए होंगे कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर बालकों की आवश्यकताओं के अनुरुप सूचनाओं का प्रबन्ध सूचना सेवा से किया जाता है। शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर सूचना सेवा की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अभ्यास प्रश्न

1. प्राथमिक स्तर के बालकों हेतु सूचना सेवा किस प्रकार सहायक है?

2. व्यवसाय या रोजगार संबंधी सूचनना की किस स्तर के बालकों को आवश्यकता पड़ती है?
3. सूचना सेवा के कितने चरण हैं?
4. सूचना सेवा क्यों महत्वपूर्ण है?

9.4 यथास्थिति परिचायक सेवा(Orientation Service)

उन बालकों को जिन्होंने पहली बार स्कूल में प्रवेश लिया है उन्हें स्कूल के भौतिक एवम् मानवीय संसाधनों के बारे में, स्कूल में संचालित विभिन्न गतिविधियों के बारे मे, मार्गदर्शन करना बहुत आवश्यक होता है। इस तथ्य से आप भी सहमत होंगे कि इस प्रकार की सहायता ऐसे नये बालकों को स्कूल के परिवेश से परिचित होने में मदद मिलती है, स्कूल के इतिहास, परम्पराओं, नियमों एवं सुविधाओं तथा कमियों से परिचित होने में सहायता मिलती है, तथा स्कूल के प्रधानाचार्य, अध्यापकों, लिपिको तथा अन्य संबंधित कर्मचारियों से परिचित होने का अवसर मिलता है। इसके अलावा अन्य प्रकार के लाभ इस मार्गदर्शन सेवा से प्राप्त हो सकते हैं जो निम्न प्रकार है-

- बालकों का सामाजिक समायोजन आसानी से व बेहतर तरीके से हो जाता है।
- स्कूल के सत्रीय तथा वार्षिक कैलेन्डर से परिचित होने का अवसर मिलता है।
- बालक यह जान पाते है कि किन कक्षाओं में किस विषय का अध्ययन होता है, पुस्तकालय, खेल मैदान, प्रयोगशाला, जिम्नेज़ियम आदि कहाँ स्थित हैं।

9.4.1 यथास्थिति परिचायक सेवा कैसे प्रदान की जाए

आप सभी अवगत होंगे कि किसी नए स्कूल में प्रवेश के बाद वहाँ समायोजन करने में कितनी समस्याओं का सामना करना पड़ता है। आइए अब हम जानेंगे कि स्कूलों में किस प्रकार यथास्थिति परिचायक सेवा प्रदान की जा सकती है-

9.4.1.1 विवरणिका या अन्य मुद्रित सामग्री का उपयोग करना

यदि स्कूल के परिवेश, इतिहास, उद्देश्य, कार्यप्रणाली तथा भौतिक व मानवीय संसाधनों से बालकों को परिचित होने का मौका मिले तो यह निश्चित रुप से बालकों हेतु लाभकारी होगा। प्रत्येक स्कूल को अपनी परिचय पुस्तिका तथा हैण्डबुक के नाम से मुद्रित सामग्री सभी बालकों को उपलब्ध कराना चाहिए जिसमें निम्न बातों का समावेश हो।

- स्कूल के मार्गो तथा भवनों को प्रदर्शित करता हुआ मानचित्र।
- प्रधानाध्यापक, अध्यापक तथा अन्य कर्मचारी वर्ग का परिचय विवरण।
- स्कूल में पढ़ाये जाने वाले विषय ।
- ली जाने वाली समस्त शुल्कों का विवरण।

– सत्रपर्यंत संचालित होने वाली क्रियाओं/गतिविधियों का विवरण।

– स्कूल के सफल पुरातन छात्रों का विवरण।

– स्कूल से दी जाने वाली सुविधाओं का विवरण।

9.4.1.2 ओरिएण्टेशन दिवस या सप्ताह मनाना

स्कूलों में नए सत्र की शुरुआत के साथ ही ओरिएण्टेशन दिवस या सप्ताह मनाये जाने चाहिए। सत्र के शुरु के दिनों में किसी दिन सभी नये बालकों को एक जगह एकत्रित किया जा सकता है। प्रधानाध्यापक व अन्य शिक्षकों से उन्हें स्कूल के इतिहास, उद्देश्य, नियम, कार्यक्रमों से अवगत कराया जा सकता है। अपने शिक्षकों, कर्मचारियों से भी परिचय कराया जा सकता है। स्कूल में संचालित विभिन्न गतिविषयों जैसे एन0 सी0 सी0 स्काउट व अन्य सांस्कृतिक गतिविधियों से परिचित कराया जा सकता है।

यह कार्यक्रम तीन-चार दिन या आवश्यकता पड़ने पर सप्ताह भर इस प्रकार नियोजित करके चलाया जा सकता है कि नवप्रवेशी बालकों को सभी प्रकार का ओरिएण्टेशन भली भाँति प्रदान किया जा सके। स्कूल से संबंधित सभी आवश्यक जानकारी उसे मिल सकें।

9.4.1.3 गैट टू गैदर समारोह आयोजित करना

गैट टू गैदर समारोह का आयोजन पुराने बालकों की सहायता से कराकर नये बालकों को पुराने बालकों से, स्कूल के शिक्षकों तथा कर्मचारियों से भलीभाँति परिचित कराया जा सकता है। इस अवसर पर नये बालक विभिन्न सांस्कृतिक एवं अन्य कार्यक्रमों के माध्यम से अपनी क्षमता तथा योग्यता का प्रदर्शन भी कर सकते हैं पुराने बालकों से नेतृत्व करने से उनकी झिझक खुलती है। इस अवसर पर नए बालकों के माता-पिता को भी बुलाया जा सकता है। नए बालक में पुराने बालक के प्रति सम्मान की भावना का भी विकास होता है। जलपान, खेलकूद गतिविधियों के आयोजन से इस समारोह को और बेहतर तरीके से आयोजित किया जा सकता है। आप भी इस बात से सहमत होंगे कि अनौपचारिकता सौहार्दपूर्ण वातावरण में नए बालकों को स्कूल में परिवेश के साथ तालमेल बिठाने की शुरुआत अच्छी प्रकार हो जाती है। इस प्रकार के गैट टू गैदर समारोह का आयोजन स्कूल प्रशासन तथा शिक्षकों से भी किया जा सकता है।

9.4.1.4 ओरियेन्टेशन काउण्टर खोलना

स्कूल में प्रवेश से या स्कूल कार्यालय के साथ ही एक ओरियेन्टेशन काउण्टर खोल देना चाहिए। यह काउण्टर अगर सारे सत्र ही खुला रहे तो इससे किसी भी समय नये आने वाले बालकों तथा समय-समय पर आवश्यकता पड़ने पर पुराने बालकों को भली-भाँति आवश्यक ओरियेन्टेशन संबंधी मार्गदर्शन सेवायें उपलब्ध होती रह सकती हैं। सत्र के प्रारम्भ में यह काउण्टर खोलना बहुत ही आवश्यक हो सकता है। यह काउण्टर किसी भी अनुभवी अध्यापक की देख-रेख में योग्य

कर्मचारियों से ही चलाया जाना चाहिए। सीनियर बालकों की सहायता भी इस काउण्टर को बेहतर बनाने में ली जा सकती है। पुराने बालक इस काउण्टर के माध्यम से नए बालकों से आसानी से घुल भिन्न जाते हैं तथा नए बालकों की समस्याओं को पुराने बालक पहले ही देख चुके होते है इसलिए वे उन्हें उचित ओरिएण्टेशन संबंधी बातें आसानी से समझा देते हैं। ओरिएण्टेशन काउण्टर को आकर्षक बनाना चाहिए तथा इस पर कुछ बोर्ड जैसे "स्वागतम स्कूल परिवार आपका हार्दिक स्वागत करता है" तथा "बताइए हम आपकी क्या सहायता करें" लगवाने चाहिए ताकि नये बालकों को प्रथम दृष्टतया अच्छा महसूस हो। इस काउण्टर के माध्यम से विवरण पुस्तिका, बुलेटिन, पत्रिकाओं तथा अन्य आवश्यक मुद्रित सामग्री का वितरण अच्छी प्रकार से किया जा सकता है।

9.4.2 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर ओरिएण्टेशन सेवा

आप सभी समझ गए होंगे कि ओरियेण्टेशन सेवा किस प्रकार नए बालकों के लिए लाभदायक है। माता-पिता या संरक्षकों के स्थानान्तरण के फलस्वरुप या किसी अन्य कारण से जब बालक नये स्कूल में प्रवेश करते है (ऐसे बालक किसी भी कक्षा में अध्ययनरत हो सकते हैं) तब उन्हें ओरियेन्टिशन सेवा की आवश्यकता पड़ती है। कुछ ओरियेन्टेशन क्रियाये या गतिविधियाँ शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर हेतु उपयुक्त हो सकती हैं तथा कुछ अन्य माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर हेतु सार्थक एवं उपयोगी हो सकती हैं। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ओरियेन्टेशन सेवा शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर आवश्यक है।

अभ्यास प्रश्न

5. ओरिएण्टेशन सेवा बालकों को किस प्रकार से प्रदान की जा सकती है?
6. स्कूल की विवरणिका की विषयवस्तु ओरिएंटेशन सेवा हेतु क्या होनी चाहिए?
7. ओरियेण्टेशन काउण्टर के माध्यम से ओरियेण्टेशन सेवा किस प्रकार प्रदान की जा सकती है?
8. ओरियेण्टेशन सेवा बालकों हेतु क्यों आवश्यक है?

9.5 स्थानन सेवा (Placement Service)

स्थानन सेवा के माध्यम से बालक को किसी व्यवसाय में स्थापित करने में मदद मिलती है। इस सेवा से किसी व्यक्ति को प्रशिक्षण में किसी व्यावसायिक पारिस्थिति में या किसी अलग पाठ्यक्रम को चुनने में सहायता प्राप्त होती है।

स्थानन सेवा से बालक को निम्नलिखित क्रियाएं करवाई जाती हैं-

- बालक को व्यक्तिगत रुप से जानकारी देना। बालकों को उनके इच्छानुसार व्यवसाय में प्रवेश करने या नये पाठ्यक्रम में प्रवेश करने की विधियों की जानकारी देना चाहिए।
- नौकरियों के लिए रिक्तियों, छात्रवृतियो के लिए फार्म एवं प्रतियोगिताओं, कालेज में रजिस्ट्रेशन की प्रक्रिया आदि के बारे में सूचनाएं अर्जित करना, उन्हें संचित करना तथा ठीक ढ़ंग से रखना।

9.5.1 स्थानन या स्थानापन सेवा का संगठन

स्थानन सेवा दो प्रकार की होती है।

1. शैक्षिक स्थानन सेवा
2. व्यावसायिक स्थानन सेवा

शैक्षिक स्थानन सेवा व्यक्ति के एक शैक्षिक अनुभव में सन्ताषेजनक विकास करने के लिए सहायता करने के कार्यक्रम को कहते हैं। किसी व्यक्ति को व्यवसाय के क्षेत्र में उचित स्थान दिलाने में सहायता करने की प्रक्रिया को व्यवसायिक की स्थानन सेवा कहते हैं।

व्यवसायिक एवं शैक्षिक स्थानन सेवा में बालकों की रुचियों, योग्यताओं, अभिरुचियों और अभिक्षमताओं का विशेष रुप से ध्यान रखा जाता हैं।

9.5.1.1 शैक्षिक स्थानन सेवा का संगठन

शैक्षिक स्थानन का संबंध बालकों को उनके शैक्षिक अनुभवों के लिए विवेकपूर्ण चयन में सहायता करने से है। शैक्षिक स्थानन की प्रक्रिया निम्नलिखित क्रियाओं से करके इस सेवा का संगठन किया जाता हैः-

- निर्देशन/मार्गदर्शन प्रदान करने वाले व्यक्ति को पाठ्यक्रमों तथा कोर्स की नवीनतम सूचनाएं रखना अनिवार्य होता है ताकि नवीनतम सूचनाऐं बालकों को शीघ्रता से उपलब्ध कराई जा सकें।
- स्कूल में सभी स्टाफ सदस्यों के साथ अच्छे संबंध स्थापित किये जाने चाहिए तथा इन अच्छे संबंधों का उपयोग स्थानन की सभी अवस्थाओं में करने से सफलता मिलती है।
- बालक के बारे में जानने के लिए उसकी रुचियों तथा आवश्यकताओं को समझने के लिए निजी साक्षात्कार आयोजित किया जाता है। इससे निर्देशन अधिकारी के लिए उस बालक की किसी कोर्स या पाठ्यक्रम के प्रति भावनाओं का अनुमान लगाना आसान हो जाता है।
- सभी बालकों की एक फाइल तैयार की जाती है।
- बालकों के लिए परामर्श सत्र को आयोजित किया जाता है जिससे बालकों को विभिन्न अवसरों का ज्ञान होता है तथा इनके आधार पर ही भावी योजनाएँ बनाना संभव होता है।

9.5.1.2 व्यावसायिक स्थानन सेवा का संगठन

व्यावसायिक स्थानन सेवा का संबंध व्यक्ति के लिए अंशकालिक या पूर्ण कालिक नौकरी प्राप्तत करने से होता है। व्यावसायिक स्थानन सेवा के संगठन हेतु निम्नलिखित क्रियाओं का आयोजन किया जाता है-

- उपलब्ध नौकरियों का वर्गीकरण किया जाता है और उनके लिए फाइलिंग प्रणाली का प्रयोग किया जाता है।
- स्थानन अधिकारी नियोक्ताओं के साथ सहकारी संबंध स्थापित करता है इस हेतु वह पत्र व्यवहार करता है, टेलीफोन पर वार्तालाप करता है, उनके पास जाकर वार्तालाप करता है। नियोक्ता को व्यक्तिगत रुप से जानने से स्थानन कर्मचारी ठीक ढंग से कार्य कर पाता है।
- स्थानन अधिकारी नियोक्ताओं से नौकरियों के विज्ञापन प्राप्त करते हैं तथा उसे बालकों हेतु उपलब्ध करवाता है।
- नौकरी के इच्छुक बालकों से साक्षात्कार कर उनकी रुचियों, शैक्षिक योग्यताओं का पता लगाकर उनका नाम, जन्मतिथि, जन्मस्थान दर्ज किया जाता है।
- बालक का नाम रजिस्टर करने हेतु फाइलिंग प्रणाली का ज्ञान होना चाहिए इस प्रणाली में एक रजिस्ट्रेशन कार्य का फोल्डर होना चाहिए। इस फोल्डर में उम्मीदवार की सूचनाएँ दर्ज होनी चाहिए।
- उम्मीदवार से संबंधित निश्चित विवरण स्पष्ट एवं साफ-साफ लिखे होने चाहिए।
- प्रत्येक व्यक्ति से संबंधित सारी सूचनाओं को एकत्रित करने के उपरान्त उसकी जाँच अवश्यक कर लेनी चाहिए।
- नियुक्तिचर्चा की ओर से विज्ञाप्ति की गई नौकरियों के लिये रजिस्टर किये गये व्यक्तियों में से नौकरी दिलाने वाले कर्मचारी केवल उसी उम्मीदवार की सिफारिश करे जिसका चयन किया हो स्थानन कर्मचारी सभी उम्मीदवारों की छानबीन भली-भाँति करने के उपरान्त उपयुक्त उम्मीदवार की सिफारिश करें।

9.5.2 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर स्थानन सेवा

स्थानन सेवा का आयोजन मख्य रुप से माध्यमिक स्तर, उच्च माध्यमिक स्तर तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में किया जाना आवश्यक है। क्योंकि इन्हीं स्तर के बालकों को उपयुक्त शैक्षिक अनुभवों, उपयुक्त व्यवसायों के चयन में समस्या का अनुभव होता है। इस सेवा के आयोजन से बालक अपने योग्यता एवं रुचि के अनुरुप पाठ्यक्रम एवं व्यवसाय का चयन सरलता से कर सकता है।

स्कूलों में माध्यमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों का बोयाडाटा तैयार कराना आवेदन पत्र लिखना तथा साक्षात्कार की तैयारी, प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी कराना, आदि सिखाया जाता है।

उच्च शिक्षा संस्थानों में इस सेवा के अन्तर्गत विभिन्न व्यवसायों के नियोक्ता से कैम्पस साक्षात्कार का आयोजन करके बालकों को व्यवसाय या प्रशिक्षण में सम्मिलित होने का अवसर प्रदान किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

9. स्थानन सेवा का क्या महत्व है?
10. स्थानन सेवा मुख्यतः कितने प्रकार की होती है?
11. उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों को इस सेवा से किस प्रकार की सेवा प्रदान की जा सकती है?
12. उच्च शिक्षा स्तर के बालकों का स्थानन सेवा से क्या मदद मिलता है?

9.6 अनुवर्ती सेवा या अनुवर्तन सेवा (Follow-up Service)

अनुवर्तन सेवा से अभिप्राय निर्देशन के अन्र्तगत किसी भी शैक्षिक पाठ्यक्रम या व्यवसाय में प्रवेश पाने के पश्चात् उस पाठ्यक्रम या व्यवसाय में व्यक्ति के समायोजन की सीमा या समायोजन की गति का अनुमान सुव्यवस्थित एवं वस्तुनिष्ठ तरिकों से प्राप्त करने की प्रक्रिया से हैं। अनुवर्ती सेवा मार्गदर्शन करने वाले को उसके कार्य की प्रभावशीलता के संबंध में पृष्ठपोषण प्रदान करती है। अनुवर्ती सेवा के अन्तर्गत विविध मूल्यांकन तकनीकों जैसे- प्रश्नावली का प्रयोग टेलीफोनिक साक्षात्कार तथा व्यक्तिगत सम्पर्क आदि का प्रयोग किया जाता है। तकनीकों का चयन इस बात पर निर्भर करता है कि बालक पृष्ठपोषण देने हेतु किस रुप में उपलब्ध है- टेलीफोन पर या व्यक्तिगत रुप से साक्षात्कार हेतु या प्रश्नावली के माध्यम से। इन विभिन्न तकनीकों के माध्यम से सूचना एकत्रित करने के बाद मार्गदर्शन करने वाले का स्वयं की प्रभावशीलता, कार्यक्रम के प्रशासन संबंधी, छात्र प्रतिक्रियाओं आदि का मूल्यांकन समग्र निर्देशन कार्यक्रम में सुधार की भावना से करता है।

9.6.1अनवुर्ती सेवा की कार्यविधियाँ

अनुवर्ती सेवा का स्वरुप मुख्यतः निदानात्मक तथा मूल्यांकन युक्त माना जाता है। इस सेवा का मुख्य लक्ष्य व्यक्ति की किसी व्यवसाय में समायोजन संबंधी आवश्यकताओं का निदान, उस व्यक्ति की सफलता एवं प्रभावशीलता की जानकारी तथा बालक को दिए गए निर्देशन का मूल्यांकन करना होता है।

अनुवर्ती सेवा के लिए कुछ मुख्य कार्यविधियाँ निम्नलिखित हैं-

- स्कूल जा रहे बालक का सर्वेक्षण किया जाना चाहिए एवं उनका शैक्षिक स्तर देखा जाना चाहिए। सर्वेक्षण में ये भी देखा जाना चाहिए की बालक के लिए कौन-कौन से कोर्स सहायक हो सकते है।

- किसी कारणवश स्कूल छोड़ने वाले बालकों का साक्षात्कार करा के ये पता लगाना चाहिए कि उन्होंने स्कूल क्यों छोड़ा तथा इनकी क्या मदद की जा सकती है।
- शिक्षा पूरी करके स्कूल छोड़ने वाले बालक का भी सर्वेक्षण कर यह पता लगाना चाहिए की स्कूल छोड़ने के उपरान्त वे क्या कर रहे हैं तथा उन्हें समायोजन संबंधी किस प्रकार की परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है।
- बालकों हेतु समूह सम्मेलनों का प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इसमें बालकों को भविष्य की योजना बनाने में सहायता प्रदान की जानी चाहिए। अध्यापकों, कर्मचारियों तथा सलाहकारों के लिए विभिन्न कार्यशालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए। इस प्रकार की कार्यशालाओं में विचारों तथा सुझावों के अवसर प्रदान किए जा सकते हैं।
- जिस संस्थान में किसी व्यक्ति की नियुक्ति की गई है। उस संस्थान में जा कर एक समूह अथवा व्यक्ति से किए गए अवलोकन के आधार पर नवनियुक्त किए गए व्यक्ति के विषय में समायोजन संबंधी आवश्यक जानकारी प्राप्त की जानी चाहिए।

9.6.2 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अनुवर्ती सेवाएँ

यह सेवा मुख्यतः उच्चतर माध्यमिक स्तर के बालकों, उच्च शिक्षा पूरी कर चुके बालकों के किसी व्यवसाय में समायोजन सं संबंधित होती है। इस सेवा से किसी व्यवसाय में व्यक्ति की सफलता एवं प्रभावशीलता की जानकारी प्राप्त की जाती है। यह सेवा प्राथमिक स्तर के ऐसे बालकों हेतु भी सहायक हो सकती है जिन्होंने किसी कारणवश स्कूल छोड़ दिया है। उनके स्कूल छोड़ने के कारण को पता लगाकर उचित सहायता का प्रबंध अनवर्ती सेवा से किया जा सकता है। अब आप समझ गये होंगे की अनुवर्ती सेवा से अप्रत्यक्ष रुप से मार्गदर्शनकर्त्ता के कार्य का मूल्यांकन हो जाता है।

अभ्यास प्रश्न

13. अनुवर्ती सेवा का मार्गदर्शन में क्या महत्व है?
14. अनुवर्ती सेवा हेतु सूचना एकत्रित करने के कौन-कौन से साधन हैं?
15. अनुवर्ती सेवा का मुख्य लक्ष्य क्या है?

9.7 निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन

निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन निर्देशन कार्यक्रम में सुधार तथा उसे अधिक प्रभावी बनाने हेतु अत्यन्त आवश्यक है। मूल्यांकन प्रविधि से निर्देशन कार्यक्रम के विभिन्न क्रियाविधि, आव्यूहरचना तथा तकनीकी के कमियों एवं गुणों की पहचान कर सुधार कर सकते हैं। प्रभावी निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन करने हेतु सभी प्रकार के रिकार्ड का रखरखाव बेहतर तरीके से होना आवश्यक है।

मूल्यांकन हम प्रत्येक व्यक्ति अर्थात बालक या परामर्शदाता का भी कर सकते हैं। बालक का शैक्षिक मूल्यांकन निश्चित ही उसके स्कूल अनुभव का एक अभिन्न अंग हैं। जबकि मानसिक स्वास्थ, व्यवहारिक तथा कौशल मूल्यांकन समय-समय पर किया जाना चाहिए। हम देख सकते है कि सम्पूर्ण शैक्षिक तथा गैरशैक्षिक मूल्यांकन परामर्श सेवाओं में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। समय-समय पर परामर्शदाताओं को अपना आत्म मूल्यांकन करना चाहिए जिससे वे अपने व्यवसायिक क्षमताओं का सुधार कर विकास कर सकें। स्कूल प्रबन्धन के प्रधानाचार्य या कार्यक्रम आयोजक स्टाफ को इस आत्ममूल्यांकन में हिस्सा लेने की सहमती देनी चाहिए। सामान्यतः नये शोध कार्यों के माध्यम से मार्गदर्शन तथा परामर्श के नये-नये विचार उभर कर सामने आये हैं तथा इन विचारों को विद्यालयों में समाहित किया जा रहा है। परामर्शदाता अपनी क्षमताओं को सदैव सुधार कर अच्छी से अच्छी निर्देशन सेवा स्कूलों में देगें।

अतः शोध तथा मूल्यांकन से स्व-आत्मनिरीक्षण किया जा सकता है। तथा इसकी सहायता से हम एक प्रभावी तथा अत्यधिक सफल निर्देशन सेवाओं का आयोजन स्कूलों में कर सकते हैं।

9.8 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि बालकों को शैक्षिक विकास करने रोजगार पाने में समर्थ होने, व्यक्तिगत व सामाजिक संबंधी आवश्यकताओं के लिए विभिन्न प्रकार की सूचनाओं की जरुरत होती है। मार्गदर्शन की सूचना सेवा इस हेतु उपयोगी है। आप यह भी जान चुके हैं कि नये बालकों को स्कूल में प्रथम बार आने पर होने वाली समस्याओं व कठिनाइयों का समाधान सूचना पत्रिका व अन्य मुद्रित सामग्री के माध्यम से, ओरियेन्टेशन काउण्टर खोलकर, गेट टू गैदर का आयोजन करके तथा ओरियेन्टेशन दिवस या सप्ताह मनाकर ओरियेन्टेशन सेवा से किस प्रकार किया जाता है। साथ ही साथ शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर सूचना ओरियेन्टेशन सेवा किस प्रकार आयोजित की जाती है यह भी जान चुके हैं। स्थानन सेवा के अन्तर्गत बालकों को किसी उपयुक्त शैक्षिक पाठ्यक्रम में दाखिला हेतु या उचित व्यवसाय के चयन या उस व्यवसाय में समायोजन हेतु सहायता प्रदान की जाती है। स्थानन सेवा के आयोजन में स्थानन अधिकारी करी भूमिका अधिक महत्वपूर्ण मानी जाती है। अनुवर्ती सेवा से निर्देशन कार्यक्रम की सफलता के बारे में जानकारी मिलती है। इस से बालकों को व्यवसाय में समायोजित होने संबंधी समस्याओं हेतु सहायता प्रदान की जाती है। इकाई के अन्त में आपने समझा है कि निर्देशन कार्यक्रम का मूल्यांकन इसमें सुधार और प्रभावी बनाने हेतु किया जाता है। निर्देशन कार्यक्रम के मूल्यांकन हेतु विभिन्न मूल्यांकन तकनीकों एवं उपकरणों का प्रयोग किया जाता है।

9.9 शब्दावली

1. **विवरणिका (Brochure)-** ऐसी लिखित सामग्री जिसमें स्कूल से संबंधित सभी महत्वपूर्ण सूचनाएं हों।
2. **यथास्थिति परिचायक सेवा (Orientation Service)-** यथास्थिति परिचायक अथवा ओरियेन्टेशन से तात्पर्य स्कूल के इतिहास, भौतिक एवं मानवीय संसाधन, स्कूल में संचालित विभिन्न-गतिविधियों, नियम, सुविधाओं से बालकों को परिचित कराना।
3. **ओरियेन्टेशन काउण्टर (Orientation Counter)-** ऐसा स्थान जहाँ पर बालकों को स्कूल से संबंधित समस्त सूचनायें विश्वसनीय व प्रमाणिक रुप से उपलब्ध हों।
4. **स्थानन (Placement)-** स्थानन से तात्पर्य बालकों को किसी अच्छे पाठ्यक्रम में प्रवेश प्राप्त होने या किसी व्यवसाय में चयनित होने से है।
5. **अनुवर्ती सेवा (Follow-up Service)**-किसी व्यवसाय या शैक्षिक पाठ्यक्रम में बालकों के समायोजन व सफलता से संबंधित सूचनाऐं एकत्रित करना।

9.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्राथमिक स्तर के बालकों को सूचना सेवा से बालकों को व्यक्तिगत तथा सामाजिक समायोजन संबंधी सूचनाओं जैसे-स्वच्छता क्यों आवश्यक है? अच्छी स्वास्थ्य आदतों का निर्माण संबंधी सूचना से मार्गदर्शन किया जाता है।
2. व्यवसाय या रोजगार संबंधी सूचना की आवश्यकता माध्यमिक स्तर, उच्च माध्यिमक स्तर तथा उच्चशिक्षा के बालकों को पड़ती है।
3. सूचना सेवा के तीन चरण होते हैं-
    i. सूचनाएं इकट्ठी करना
    ii. सूचनाएं वगीकृत करना
    iii. सूचनाओं को बालकों तक पहुंचाना।
4. सूचना सेवा से बालकों को शैक्षिक विकास करने में रोजगार पाने में तथा व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं को हल करने में सहायक सूचनाओं की प्रदान किया जाता है इसलिए यह सेवा महत्वपूर्ण। है।
5. ओरियेन्टेशन सेवा विवरणिका को बाँटकर, ओरिएण्टेशन दिवस या सप्ताह मनाकर, गेट टू गैदर समारोह आयोजित करके तथा ओरियेन्टेशन काउण्टर के माध्यम से प्रदान की जा सकती है।
6. स्कूल विवरणिका के अन्तर्गत स्कूल से संबंधित सभी सूचनायें जैसे- स्कूल का इतिहास, उद्देश्य नियम, भौतिक एवं मानवीय संसाधन, सुविधायें, गतिविधियाँ (शैक्षणिक्, पाठ्यसहगामी) आदि आती हैं।

7. स्कूल प्रशासन शिक्षकों व वरिष्ठ बालकों के माध्यम से ओरियेन्टेशन काउण्टर से नये बालकों को सूचना पुस्तिकों (विवरणिका) उपलब्ध कराता है, उनके अनेकों प्रश्नों, समस्याओं का समाधान बातचीत से करता है, यह काउण्टर नये बालकों का स्कूल में स्वागत करते हुए उन्हें स्कूल में समायोजन में सहायता प्रदान करता है।
8. ओरियेन्टेशन सेवा से स्कूल के नवप्रवेशी बालक को स्कूल में आसानी से समायोजित करने, स्कूल की कार्य संस्कृति से परिचित कराने भौतिक एवं मानवीय संसाधन से परिचित कराने का कार्य किया जाता है। इसलिए यह सेवा महत्वपूर्ण है।
9. स्थानन सेवा से किसी बालक को किसी व्यवसाय में या किसी शैक्षिक पाठ्यक्रम में स्थापित किया जाता है।
10. स्थानन सेवा मुख्यतः दो प्रकार की होती है-

i. शैक्षिक स्थानन सेवा
ii. व्यवसायिक स्थानन सेवा

11. उच्च माध्यमिक स्तर के बालकों को स्थानन सेवा से किसी शैक्षिक पाठ्यक्रम में संतोषजनक विकास करने में तथा व्यवसाय के क्षेत्र में उचित स्थान प्राप्त होने में सहायता प्राप्त होती है।
12. उच्च शिक्षा स्तर के बालकों को इस सेवा से व्यवसाय में उचित स्थान प्राप्त होने में सहायता प्राप्त होती है।
13. अनवुर्ती सेवा से बालकों को किसी भी शैक्षिक पाठ्यक्रम या व्यवसाय में प्रवेश पाने के पश्चात् उस पाठ्यक्रम या व्यवसाय में व्यक्ति के समायोजन की सीमा व समायोजन की गति का अनुमान वस्तुनिष्ठ तरीके से प्राप्त करके उनकी सहायता की जाती है इससे मार्गदर्शनकर्त्ता को उसके कार्य के बारे में पृष्टपोषण भी मिल जाता हैं।
14. अनुवर्ती सेवा के अन्तर्गत प्रश्नावली, व्यक्तिगत साक्षात्कार या टेलीफोन साक्षात्कार के माध्यम से सूचनायें एकत्रित की जाती है।
15. अनवुर्ती सेवा का मुख्य लक्ष्य बालक की किसी व्यवसाय में समायोजन संबंधी आवश्यकताओं का निदान तथा बालक को दिये गए मार्गदर्शन का मूल्यांकन होता हैं।

9.11 संदर्भ ग्रन्थ

14. ओबेराय, डॉ0 सुरेश चन्द्र (2006), शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ,
15. मंगल, डॉ0 एस0 के0 एवं श्रीमती श्रुभ्रा (2003), मार्गदर्शन एवं परामर्श, आर्य बुक डिपो, मेरठ
16. गुप्ता, एस.पी. (2008), उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद

17. सिंह, ए. के. (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
18. जायसवाल, एस.(2008), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
19. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi: Vikash Publishing House.
20. Das, B.N. (2010). Career Guidance and Counselling. Agra: Vinod Pustak Mandir
21. Kochhar, S.K, (1980) Guidance and Councelling, New Delhi: Sterling Publishers.
22. Mathur, S.S.(2012).Fundamentals of Guidance and Counselling.Agra: Vinod Pustak Mandir
23. NCERT(2008).Introduction to Guidance,Module-1, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
24. NCERT(2008).Career Information in Guidance,Module-5 and 12, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
25. Pandey, K.P.(2009).Educationaland Vocational Guidance in India. Varanasi: Vishvidyalaya Prakashan.
26. Sharma, N.R. (2012). Educationaland and Vocational Guidance. Agra: Vinod Pustak Mandir

9.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Agarwal, J.C, (1985), Educational Vocational Guidance and Counseling, Doaba House, New Delhi.
2. Agrawal, R (2006). Educational, Vocational Guidance and Counselling, New Delhi, Sipra Publication.
3. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi, Vikash Publishing House.
4. Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Counselling, Rex Printing Company, Inc., Quezon City.
5. Kinra, A.K. (2008). Guidance and Counselling, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. New Delhi.
6. Jones, A.J.(19510.Principles of Guidance and Pupil Personnel work,New York,MiGraw Hill.

7. Mendoza, E. (2003), Guidance and Counselling Today. Rex Book Store (RBSI), Manila.
8. Nanda, S.K and Sharma S, (1992) Fundamentals of Guidance, Chandigarh.

Websites & E-links:-

- www.books.google.co.in
- www.education.go.ug/guidance
- http://encyclopedia2.thefreedictionary.com
- www.careersteer.com
- www.lotsofessays.com
- www.careerstrides.com
- www.wikipedia.org/wiki

9.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. स्कूल स्तर पर सूचना सेवा कैसे आयोजित की जाए? व्याख्या कीजिए?
2. मार्गदर्शन सेवाओं के प्रकार एवं उनमें अंतर स्पष्ट कीजिए।
3. मार्गदर्शन सेवाओं का शिक्षा के विभिन्न स्तर पर आयोजन कैसे करते है? व्याख्या कीजिए।
4. सम्पूर्ण मार्गदर्शन प्रक्रिया का मूल्यांकन एवं उसके उद्देश्य की चर्चा करे?

इकाई 10 : अच्छे परामर्शदाता के गुण, भूमिका तथा जिम्मेदारियाँ

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 अच्छे परामर्शदाता के गुण
10.3.1 अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता
10.3.2 अच्छे परामर्शदाता का प्रशिक्षण और तैयारी
10.3.3 अच्छे परामर्शदाता का अनुभव
10.4 अच्छे परामर्शदाता की भूमिका एवं जिम्मेदारियाँ
10.4.1 विद्यार्थियों को परामर्श देने से संबन्धित कार्य
10.4.2 विद्यार्थियों के माता पिता का सहयोग प्राप्त सम्बन्धी कार्य
10.4.3 अध्यापकों से सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य
10.4.4 सूचनाएँ प्रदान करने सम्बन्धी कार्य
10.4.5 समुदाय के साथ सहयोग सम्बन्धी कार्य
10.4.6 मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं से संबन्धित अन्य विविध कार्य
10.5 सारांश
10.6 शब्दावली
10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
10.9 सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री
10.10 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

परामर्शदाता व्यावसायिक रुप से प्रशिक्षित व्यक्ति होता है, जो विद्यालयों में परामर्श तथा मार्गदर्शन सेवाओं का संगठन जिम्मेदारी के साथ करता है। विद्यालय का अध्यापक इस प्रकार के व्यावसायिक प्रशिक्षण के उपरान्त विद्यालय में परामर्शदाता की भूमिका अदा कर सकते है। परामर्शदाता निर्देशन और मार्गदर्शन कार्यक्रम का मुख्य एवं आकर्षक बिन्दु होता है। जो मार्गदर्शन तथा निर्देशन कार्यक्रम

का आयोजक तथा सुत्रधार विद्यालयों में होता है। परामर्शदाता प्रत्येक विद्यालय में अत्यन्त आवश्यक है। तथा यह एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते है। ये विद्यार्थी के सामाजिक समायोजन, व्यावसायिक चयन, से लेकर संवेगात्मक समस्याओं का समाधान करते है। परामर्शदाता विद्यार्थी की हर प्रकार की समस्याओं का समाधान करने हेतु विभिन्न प्रविधियों जैसे निदानात्मक उपकरण व्यावसायिक सूचनाएँ व्यक्ति को समझने के लिये विभिन्न परीक्षण का प्रयोग करते है। परामर्श एक व्यावसायिक सेवा है तथा यह व्यक्ति की समस्या पर केन्द्रित होता है। परामर्श सदैव परामर्शदाता की भविष्यवाणी की उपयुक्तता पर आधारित होता है। एक अच्छे परामर्शदाता में परिपक्वता, भावात्मक स्थिरता, आत्मसम्मान तथा आत्म विश्वास, स्वयं के बारे में ज्ञान, नेतृत्व की योग्यता, शैक्षिक पृष्ठभूमि तथा विद्वता, स्वास्थ्य एवं बाहरी व्यक्तित्व, व्यावसाय के प्रति सम्पूर्ण भावना प्रार्थी के मतभेदों के प्रति सहनशीलता और स्वीकृति का दृष्टिकोण तथा सभी साकारात्मक गुण होनी चाहिए। विद्यार्थियों का सहयोग और उनकी संभागिता एक सफल परामर्शदाता के लिए आवश्यक है। परामर्शदाता विद्यार्थियों का विश्वास हासिल कर उनका ध्यान अपने ओर आकर्षित कर उनके विषय में तथा समस्याओं के विषय में सूचनाएँ एकत्रित कर सकता है। एक अच्छे परामर्शदाता को सदैव संवेदनशील होना चाहिए जिससे वह विद्यार्थी के समस्या के प्रति संवेदनशील हो सके। एक अच्छे परामर्शदाता की यह महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है कि वह विद्यार्थियों को इस योग्य बना सके कि वह अपनी समस्याओं के कारणों को ठीक तरह समझ सके तथा उनसे निपटने में अपने आपको समर्थ बनाने के प्रयत्न कर सकें। इस तरह से अगर परामर्शदाताओं के कार्यक्षेत्र और उत्तरदायित्वों का विवरण प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाये तो हम यह देख सकते है कि परामर्शदाता से ऐसा कोई भी कार्य तथा कार्य क्षेत्र अहुत नहीं है जो किसी न किसी रुप से बालकों की शैक्षिक व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत प्रगति तथा कल्याण से जुड़ा हुआ होता है। विद्यार्थियों का कल्याण उनके सर्वांगीण विकास व्यवहार में उचित परिमार्जन तथा उनके व्यक्तिगत, सामाजिक तथा पर्यावरणात्मक समायोजन से जुड़ा होता है। अतः हम कह सकते है कि एक बहुपक्षीय परामर्श कार्यक्रम को तभी सफल बनाया जा सकता है जब विद्यालयों में उचित परामर्शदाता और मार्गदर्शन के रुप में प्रशिक्षिता व्यक्ति उपलब्ध हो। इस प्रकार हम देख सकते है। कि एक प्रशिक्षित परामर्शदाता अपने अच्छे गुणों, कौशल तथा विद्वता के आधार पर अपने जिम्मेदारियों का वहन करते हुए प्रत्येक विद्यार्थी के जीवन में अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप एक परामर्शदाता का भूमिका किस प्रकार विद्यार्थी जीवन में आवश्यक है? समझ सकती है एक अच्छे परामर्शदाता के अंदर किन-किन अच्छे गुणों का समावेश होना आवश्यक है ये भी जान सकेंगे तथा एक अच्छे परामर्शदाता की एक विद्यालय तथा विद्यार्थी जीवन की समस्याओं का समाधान हेतु क्या-क्या जिम्मेदारियां होती है तथा इसका निर्वहन परामर्शदाता कैसे करते है?

10.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. एक अच्छे परामर्शदाता के गुणों की व्याख्या कर सकेंगे।
2. बता सकेंगे कि एक अच्छा परामर्शदाता बनने हेतु व्यावसायिक प्रशिक्षण किस प्रकार आवश्यक होता है।
3. किसी भी विद्यालय के अध्यापक को प्रशिक्षण लेकर विद्यालय में परामर्शदाता बनने का सुझाव दे सकेंगे।
4. विद्यालय के अध्यापकों को परामर्शदाता की भूमिका विद्यालय में क्या होती है तथा किस प्रकार यह विद्यार्थी जीवन पर प्रभाव डालते है, यह बता सकेंगे।
5. एक अच्छे परामर्शदाता के गुणों का वर्गीकरण कर श्रेणीबद्ध कर सकेंगे।
6. बता सकेंगे कि विद्यार्थी जीवन में परामर्शदाता किन-किन क्षेत्रों की समस्याओं का समाधान कर सकता है।
7. यह देख सकेगें कि किस प्रकार एक विद्यार्थी के सामाजिक समायोजन व्यावसायिक चयन मे परामर्शदाता सहायता करता है।
8. परामर्शदाता के कार्यों का विवरण दे सकेगे।
9. स्वयं में परामर्शदाता के गुणों को समाहित कर किसी व्यक्ति को परामर्श प्रदान करने में सक्षम हो सकेगें।

10.3 अच्छे परामर्शदाता के गुण

एक अच्छे परामर्शदाता में बहुत से गुण निहित होते है तथा इन गुणों को हम तीन समूहों में बाँट कर इसकी व्याख्या कर सकते है जो इस प्रकार है-

1. अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता
2. अच्छे परामर्शदाता का प्रशिक्षण एवं तैयारी
3. अच्छे परामर्शदाता के अनुभव

10.3.1- अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व की विशेषता

1. प्रत्येक परामर्शदाता की रुचियों में व्यापकता होनी चाहिए जिससे उसको अलग-अलग लोगों की नौकरियों और समस्याओं में रुचि लेने में मदद मिल सके।विभिन्न प्रकार की रुचियों के बारे में व्यापक समझ होना बहुत आवश्यक है।
2. परामर्शदाता में सहयोग की भावना का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। जिससे वह विद्यालयी वातावरण में सहयोग कर तथा विद्यार्थियों का भी सहयोग कर सके तथा अन्य

लोगों से सहयोग प्राप्त कर सकें।बिना सहयोग-भावना के वह न तो विद्यार्थियों और न ही शिक्षकों का कल्याण कर सकता है उसका सहयोगपूर्ण व्यवहार ही समस्याग्रस्त विद्यार्थियो को उस तक पहुचने में मदद करता है।

3. परामर्शदाता के स्वभाव में विनम्रता तथा वातावरण को खुशनुमा बनाने की कला होनी चाहिए। उसकी वाणी मधुर होनी चाहिए जिससे विद्यार्थियों को उससे धुलने-मिलने में मदद मिल सकें।खुशनुमा वातावरण मे विद्यार्थी अपनी समस्या आसानी से सुलझा लेते है
4. परामर्शदाता को दूरदर्शी होना चाहिए जिससे विद्यालय में अध्यापकों एवं विद्यार्थियों को समस्या को समझने में मदद मिलती है साथ ही साथ वह विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के भविष्य को सँवारने का काम भी करता है उसकी दूरदर्शी सोच ही विद्यालय की प्रगति का आधार भी होती है।
5. परामर्शदाता का व्यक्तित्व आकर्षक होना चाहिए जिससे प्रत्येक व्यक्ति उसको सुनने एवं समझने के लिए आकर्षित हो सके।
6. परामर्शदाता को विश्वासपात्र बनने की कला का ज्ञान होना आवश्यक है जिसकी सहायता से वह किसी का विश्वास हासिल कर उससे धुल-मिल कर समस्या के तह तक पहुँच सके। अब आप परामर्शदाता के व्यक्तित्व के विशेषता को समझ गए होंगे।

10.3.2 अच्छे परामर्शदाता का प्रशिक्षण और तैयारी

आप देखेंगे कि परामर्शदाता के प्रशिक्षण के लिए क्या-क्या तैयारी करनी है वो इस प्रकार हैः-

i. परामर्शदाता को शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों तथा विधियों का ज्ञान होना चाहिए।
ii. परामर्शदाता को विभिन्न व्यवसायों के विषय में विभिन्न गतिविधियों का ज्ञान होना चाहिए।
iii. परामर्शदाता को परामर्श एवं निर्देशन के सिद्धान्तों से भली प्रकार अवगत होना चाहिए।
iv. परामर्शदाता को सभी विषयों का ज्ञान होना आवश्यक है।
v. परामर्शदाता को विद्यालयों में निर्देशन-सेवाओं के गठन के विषय में पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।
vi. परामर्शदाता को निर्देशन सेवाओं में मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं का ज्ञान आवश्यक है।
vii. परामर्शदाता को व्यवसाय-संबंधी जानकारी देने की विधियों का भी ज्ञान होना अति आवश्यक है। एक परामर्शदाता के लिए शैक्षिक योग्यताएँ इस प्रकार हैः-
    i. एम0 ए0 (मनोविज्ञान या शिक्षा) या बी0 ए0 एम0 एड0 (निर्देशन सहित)।
    ii. शिक्षा-निर्देशन में डिप्लोमा कोर्स।
    iii. परामर्शदाता को व्यक्तित्व संबंधी समस्याओं, परीक्षाओं, मानसिक स्वास्थ्य तथा परामर्श देने की तकनीकों का ज्ञान हों।

10.3.3 अच्छे परामर्शदाता के अनुभव

एक परामर्शदाता को निम्नलिखित अनुभवों का ज्ञान आवश्यक है।

1. परामर्शदाता को निर्देशन कार्यक्रम में दक्षता हासिल होनी चाहिए जिससे उसे विद्यार्थियों की समस्या को समझने, तथा उन समस्याओं के समाधान करने तथा उनके साथ मधुर संबंध स्थापित करने में सहायता मिलती है।
2. परामर्शदाता को व्यवसाय दिलवाने तथा सही कार्यवाही करना आना चाहिए।
3. परामर्शदाता को हर प्रकार की सूचनाओं की व्याख्या करने में निपुणता आनी चाहिए।
4. परामर्शदाता को सामाजिक साधनों के प्रयोग में दक्षता होनी चाहिए।
5. परामर्शदाता में परामर्श सेवा का मूल्यांकन करने की योग्यता होनी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व में क्या विशेषता होनी चाहिए?
2. परामर्शदाता को क्या-क्या प्रशिक्षण देना चाहिए?
3. परामर्शदाता बनने के लिए शैक्षिक योग्यता क्या-क्या होनी चाहिए?
4. अच्छे परामर्शदाता में क्या-क्या अनुभव होने चाहिए?

10.4 अच्छे परामर्शदाता की भूमिका एवं जिम्मेदारियाँ

अच्छे परामर्शदाता की भूमिका विद्यार्थी की जीवन में किस-किस प्रकार है तथा विद्यालय, विद्यार्थी व विद्यार्थी के माता-पिता की क्या-क्या अपेक्षाएँ एक कुशल परामर्श दाता से हैं ये इस प्रकार हैं-

i. परामर्शदाता को विद्यार्थियों को उनकी योग्यताएं तथा क्षमताएं, रूचियां, दृष्टिकोण तथा इच्छाएँ और अभिलाषाओं आदि से परिचित कराना चाहिए।जिससे उनके अंदर आत्मविश्वाश पैदा होता है।
ii. विद्यार्थियों के समस्या को समझ कर उससे मुक्ति दिलाने में परामर्शदाता की मदद करनी चाहिए।
iii. विद्यार्थियों के व्यवहार में जो कमियाँ हो उसके परिमार्जन में परामर्शदाता को विद्यार्थी की मदद करनी चाहिए।
iv. परामर्शदाता को विद्यार्थी की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि करने हेतु विद्यार्थी को सुझाव तथा सहयोग देना चाहिए।
v. अध्यापकों के व्यवहार में जैसा वे चाहते है उसी के अनुरूप परिवर्तन आ जाए, इस कार्य में परामर्शदाता को उनकी सहायता करनी चाहिए
vi. विद्यार्थियों को अपने समूह से अच्छे संबंध एवं सम्मान दिलाने में परामर्शदाता को उसकी मदद करनी चाहिए।
vii. परामर्शदाता को विद्यार्थी के लिए कौन सा रोजगार तथा कैरियर ठीक रहेगा तथा उसके लिए किस प्रकार तैयारी की जाए आदि बताना चाहिए।

viii. माता-पिता तथा अभिभावको से बालकों की पटरी बैढाने में परामर्शदाता को उनकी सहायता करनी चाहिए।

अब आप समझ गए होंगे कि एक परामर्शदाता की विद्यार्थी जीवन में क्या भूमिका तथा महत्व है।

एक अच्छे परामर्शदाता का विद्यालय में क्या भूमिका है तथा परामर्शदाता विद्यालय के अध्यापक की किस प्रकार सहायता कर सकता है। ये निम्नलिखित है-

i. परामर्शदाता शिक्षकों को विद्यार्थियों को जानने-पहचानने तथा भलीभाँति समझने में मदद करें। उनके विभिन्न प्रकार के परीक्षण लेकर विद्यार्थियों के स्तर तथा व्यवहार को समझने में भी उनकी मदद करें।
ii. शिक्षकों को मदद करें ताकि वह विद्यार्थियों के व्यवहार में अपेक्षानुरूप व्यवहार परिवर्तन कर सकें।
iii. समस्यात्मक एवं अनुशासनहीन विद्यार्थियों से निपटने में शिक्षकों की सहायता करें।क्योंकि ऐसे बालकों से शिक्षण अधिगम प्रक्रिया मे बढ़ा उत्पन्न होती है।
iv. पाठ्य सहगामी क्रियाओं में विद्यार्थियों का सही चुनाव कराने में शिक्षक की सहायता करें।
v. विद्यार्थियों के माँ बाप तथा अभिभावकों से विद्यार्थियों के विकास हेतु पर्याप्त सहयोग लेने में शिक्षकों की सहायता कर सकता है।
vi. प्रधानाध्यापक-शिक्षक तथा शिक्षक-शिक्षक के आपसी सम्बन्धों को ठोस बनाने में शिक्षकों को सलाह मशविरा देते रहना चाहिए।

अब आप जान गये होंगे कि परामर्शदाता किस प्रकार अध्यापकों की सहायता कर सकता हे। आइए अब आप अवगत हों कि माँ-बाप तथा अभिभावकों की परामर्शदाता से क्या अपेक्षायें होती है-

i. बालकों को ठीक तरह समझने में अभिभावकों की मदद करना।
ii. बालकों की गलत आदतों को हटाने में तथा व्यवहार को सुधारने में वह सभी संभव उपाय करें।
iii. अगर बालक पढ़ाई में कमजोर है अथवा उनका मन पढ़ाई में नहीं लगता तो वह उचित उपाय बताएँ।
iv. अभिभावकों वह यह बतायें कि उनके बालकों के लिए कौन से विषयों का पढ़ना ठीक है तथा वे उपयुक्त व्यवसाय का चुनाव कर सकें।
v. अभिभावकों को फीस माफी, वजीफे तथा अन्य प्रकार की कैसी सहायता किस रूप में उपलब्ध हो सकती है।
vi. अध्यापकों तथा प्रधानाध्यापकों से अभिभावकों का तालमेल बनाये रखने में सहायता करें।

विद्यार्थी, अध्यापक, माँ-बाप तथा अभिभावक की उपरोक्त अपेक्षाओं के आधार पर परामर्शदाताओं द्वारा निभाई जाने वाली भूमिकायें निम्न प्रकार की जा सकती हैं-

10.4.1. विद्यार्थियों को परामर्श देने से सम्बन्धित कार्य

i. विद्यार्थियों से आत्मीयता एवं घनिष्ठ सम्बन्ध बनाना। ताकि समस्या ग्रस्त विद्यार्थी अपनी समस्या को बिना हिचकिचाहट के बता सकें व उन्हें यह भी भरोसा हो की परामर्शदाता उनकी सहायता अवश्य करेगा
ii. विद्यार्थियों को जानने तथा समझने हेतु विभिन्न प्रकार के परीक्षणों जैसे बुद्धि परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण, रूचि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिरूचि परीक्षणों तथा अन्य निरीक्षण तथा सूचना श्रोतों का उपयोग करना।विभिन्न परीक्षणों का उपयोग विद्यार्थी की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को जानने के लिए किया जाता है। इन विशेषताओं की जानकारी से परामर्शदाता को परामर्श देने में बहुत सहायता प्राप्त होती है।
iii. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे अपनी समस्याओं के कारणों को ठीक तरह समझ सकें तथा अपने सकरात्मक पक्षों को पहचान कर समस्या का निदान स्वयं करने में सक्षम हो सकें।

10.4.2 विद्यार्थियों के माता-पिता का सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य

माता-पिता या अभिभावक का सहयोग लिए बिना विद्यार्थियों को अच्छी प्रकार से परामर्श नहीं दिया जा सकता है इस बात से आप भी सहमत होंगे कि अभिभावक विद्यार्थियों के बारे में बहुत महत्वपूर्ण सूचनाएं परामर्शदाता को दे सकते हैं। परामर्शदाता इस सम्बन्ध में निम्न कार्य करता है

i. परामर्शदाता विद्यार्थियों के माता-पिता या अभिभावक को बालक के शैक्षिक विकास एवम् प्रगति के स्तर के बारे में जानकारी देते रहता है।
ii. माता-पिता तथा अभिभावकों को परामर्श तथा मार्गदर्शन सेवाओं के कार्यक्षेत्र तथा उपयोगिता से परिचित कराना तथा इन सेवाओं के आयोजन हेतु अपेक्षित सहयोग प्राप्त करना।
iii. विद्यार्थी के व्यवहार, योग्यता तथा क्षमता स्तर, व्यक्तिगत गुणों एवं आदतों के संबंध में माँ-बाप से अपेक्षित सहयोग प्राप्त करना। माता पिता एवं अभिभावकों से प्राप्त व्यवहार सम्बन्धी सूचनाएँ मार्गदर्शन करने में सहायता प्रदान करती है।
iv. विद्यार्थियों में विशेष प्रकार के व्यवहार, समस्या तथा समायोजन से सम्बन्धित आवश्यक जानकारी एकत्रित करने में माता-पिता का सहयोग लेना।
v. माता-पिता तथा अभिभावक विद्यार्थियों के साथ अच्छा तालमेल रखते हुए उनके विकास में योगदान दें इस हेतु सहायता करना।

अब आप जान गए होंगे कि माता-पिता तथा अभिभावक का सहयोग अत्यधिक आवश्यक है बिना उनके सहयोग के विद्यार्थियों से संबन्धित बहुत सारी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होना असंभव है। उचित परामर्श प्रदान करने हेतु विद्यार्थी की प्रष्ठ भूमि से संबन्धित अधिक से अधिक सूचनाएँ परामर्शदाता के पास होना अत्यंत जरूरी है।

10.4.3. अध्यापको से सहयोग प्राप्त करने सम्बन्धी कार्य

परामर्शदाता को अध्यापकों का सहयोग लेना भी जरूरी है क्यांकि अध्यापक शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया के दौरान विद्यार्थियों के व्यवहार का निरीक्षण करते हैं तथा वह विद्यार्थियों की विशेषताओं से परिचित होते है। अब आप परामर्शदाता के निम्नलिखित कार्यो से समझ पायेंगे कि अध्यापकों का सहयोग वह मार्गदर्शन सेवाओं हेतु किस प्रकार प्राप्त करता है-

1. विद्यार्थियों के मनोवैज्ञानिक गुणों को जानने हेतु विभिन्न परीक्षणों एवं उपकरणों को प्रशासित करते समय अध्यापक का सहयोग प्राप्त करना।
2. विद्यार्थियों को परामर्श एवं निर्देशन/मार्गदर्शन प्रदान करने हेतु जो विभिन्न प्रकार के अभिलेख तैयार किये जाते है उनको तैयार करने तथा रखरखाव में अध्यापकों का सहयोग प्राप्त करना। संचित अभिलेख तैयार करने हेतु तथा उसके रखरखाव हेतु शिक्षक की मदद लेने आवश्यक होता है क्योंकि शिक्षक विद्यार्थियों की अधिकांश विशेषताओं से परिचित होते हैं।
3. विद्यार्थियों से अध्यापक को किस प्रकार का व्यवहार करना अपेक्षित है इस बात का आभास अध्यापकों का कराया जाना आवश्यक है। परामर्शदाता इस प्रकार का परामर्श अध्यापकों को समय-समय पर दिया जाता है। ताकि उनका विद्यार्थियों के साथ उचित तालमेल बना रहे।हमेशा विद्यार्थियों को डांटना फटकारना तथा गुस्से में बात करना अच्छे शिक्षण में बढ़ा उत्पन्न करता है इस हेतु परा।मर्शदाता आवश्यक परामर्श प्रदान करता है।
4. अध्यापकों को कुसमायोजित, विशेष बालकों को पढ़ाने में विशेष कठिनाई का अनुभव करना पड़ता है। इस सम्बन्ध में परामर्शदाता उन्हें उचित मार्गदर्शन द्वारा समायोजनात्मक तथा उपचारात्मक तरीकों से परिचित कराता है।
5. विद्यार्थियों की व्यक्तिगत विशेषताओं से अध्यापक को परिचित कराना तथा वैयक्तिक विशेषताओं के अनुरूप शिक्षण प्रक्रिया के आयोजन में अध्यापक की सहायता प्रदान करना।
6. विद्यार्थियों को मार्गदर्शन व परामर्श देने से पूर्व उन्हें अच्छी तरह जानने व समझने हेतु विद्यार्थियों के प्रति अध्यापकों की राय या प्रतिक्रिया जानना।

अब आप जन गए होंगे कि विद्यार्थियों को परामर्श प्रदान करने हेतु अध्यापक से आवश्यक सहयोग कैसे प्राप्त किया जाता है, शिक्षण अधिगम को प्रभावी कैसे बनाया जाता है एवं कक्षा में समस्यात्मक बालकों से कैसे निपटा जाता है।

10.4.4. सूचनाएँ प्रदान करने सम्बन्धी कार्य

पिछली इकाई के अध्ययन के बाद आप जान गए होगें कि मार्गदर्शन सेवाओं के अन्तर्गत सूचना सेवाओं को संगठन किया जाता है। इन सूचना सेवाओं के संगठन का उत्तरदायत्वि परामर्शदाता के ऊपर होता है। इस हेतु वह निम्न कार्य कर सकता है-

1. विद्यार्थियों के व्यवहार, योग्यता, क्षमता, व्यक्तित्व गुणों आदि से सम्बन्धित सूचाएँ आवश्यकतानुसार प्रदान करना।
2. विभिन्न शैक्षिक अवसरों (पाठ्यक्रमों), विषयों तथा क्रियाओं के बारे में आवश्यक जानकारी एवं सूचनाएँ प्रदान करना।
3. व्यावसायिक कोर्सों, नौकरी के अवसरों, विभिन्न रोजगारों आदि के बारे में सभी आवश्यक जानकारी प्रदान करना।
4. विद्यालय के इतिहास, उद्देश्य, नियम तथा सुविधाओं के बारे में आवश्यक जानकारी प्रदान करना।
5. फीस माफी, वजीफे तथा अन्य शैक्षिक या व्यावसायिक सुविधाओं के नियम, अवसरों आदि को उचित जानकारी प्रदान करना।
6. विद्यालय के भौतिक संसाधनों (पुस्तकालय, प्रयोगशाला, खेल मैदान, कम्प्यूटर लैब, हॉस्टल, डे सेन्टर, कॉमन रूम, कैन्टीन) की उचित जानकारी प्रदान करना।
7. सूचना पुस्तिका या विवरणिका का तैयार करने की जिम्मेदारी भी परामर्शदाता की होती है।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि परामर्शदाता के पास अनेकों महत्वपूर्ण सूचनाओं का संग्रह होता है जिन्हें वह आवश्यकतानुसार प्रदान करता है। परामर्श की प्रक्रिया में सूचनाओं को एकत्रित करना तथा उनका उचित प्रयोग करना बहुत महत्वपूर्ण चरण है ।

10.4.5. समुदाय के साथ सहयोग सम्बन्धी कार्य

परामर्श एवम् मार्गदर्शन कार्यक्रम तभी सफल हो सकते है जबकि इनमें समुदाय एवं समाज के सदस्यों का सहयोग ठीक रूप में प्राप्त किया जा सके। इस बात से आप भी सहमत होंगे। इस हेतु परामर्शदाता के निम्न उत्तरदायित्व है

1. परामर्शदाता को समुदाय या समाज विशेष की आवश्यकताओं तथा प्रकृति से पूरी तरह परिचित रहना चाहिए। विद्यार्थियों के व्यवहारों के बारे में सही निष्कर्ष तक पहुंचाने में उसके समुदाय की प्रकृति व संस्कृति जानना बहुत जरूरी है।
2. विद्यार्थियों को नौकरी के अवसरों, विभिन्न रोजगारों आदि के बारे में जानकारी उपलब्ध कराने हेतु, विभिन्न नियोक्ताओं से व्यक्तिगत संपर्क रखना।
3. विद्यार्थियों के परिवेश से संबंधित समायोजन संबंधी समस्याओं के हल हेतु समुदाय एवं समाज का सहयोग प्राप्त करना।

4. विद्यार्थियों की शैक्षिक एवं व्यावसायकि प्रगति हेतु उन्हें समुदाय एवं समाज के सदस्यों के पास संस्थाओं, व्यवसायिक प्रतिष्ठानों में ले जाकर वास्तविक अनुभव प्रदान करना।

आप जान गए होंगे कि एक विद्यार्थी शिक्षा पूरी करने के बाद समुदाय एवं समाज में ही सेवा हेतु जाता है इसलिए परामर्शदाता द्वारा समाज एवं समुदाय की आवश्यकताओं, अपेक्षाओं एवं प्रकृति को जानना बहुत जरूरी होता है। साथ ही साथ समुदाय व समाज से बेहतर तालमेल भी बनाए रखना जरूरी होता है।

10.4.6. मार्गदर्शन एवं परामर्श सेवाओं से सम्बन्धित अन्य विविध कार्य

मार्गदर्शन कार्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न सेवाओं का संगठन किया जाता है ताकि मार्गदर्शन कार्यक्रम सफल हो सके। इस सभी मार्गदर्शन सेवाओं के संगठन और आयोजन का कार्य परामर्शदाता ही करता है। इस प्रकार समन्वित क्रियाओं का कुछ रूप निम्न प्रकार है-

1. समय-समय पर मार्गदर्शन एवं परामर्श सम्बन्धी भाषण, सेमिनार, विचार गोष्ठी, बाद-विवाद प्रतियोगिताओं, कविगोष्ठियों, रंगमंच अभिन्यों, फिल्म, वीडियों स्लाइड आदि को दिखाने से सम्बन्धित कार्यक्रमों तथा प्रदर्शनी की आयोजन।
2. ओरियेन्टेशन सेवाओं के आयोजन सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की क्रियायें जैसे-ओरियेन्टेशन डे या सप्ताह का आयोजन, प्रचार एवं प्रसार सामग्री का प्रकाशन, सूचना केन्द्र की स्थापना, कैरियर कान्फ्रेन्स का आयोजन, कैरियर एण्ड गाइडेंस क्लब की स्थापना परामर्शदाता के नेतृत्व में ही सफलतापूर्वक किया जा सकता है।
3. विद्यार्थियों को विभिन्न महत्वपूर्ण स्थानों, संस्थाओं कंपनियों का भ्रमण कराना।
4. विद्यार्थियों से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के अभिलेख जैस-संचित अभिलेख पत्र आदि तैयार करना।
5. उपयुक्त मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रदान करने हेतु उपयुक्त अनुसंधान कार्य भी परामर्शदाता कर सकता है तथा इन विषय क्षेत्रों पर अनुसंधान करने वालों की सहायता भी कर सकता है।
6. अनुवर्ती सेवाओं के माध्यम से वह किसी व्यवसाय में समायोजन संबंधी विद्यार्थियों की समस्याओं को हल करने हेतु विविध उपाय करना।

इस प्रकार आप समझ गये होंगे कि परामर्शदाता का कार्यक्षेत्र तथा उत्तरदायित्व का दायरा बहुत व्यापक है। यह विद्यार्थियों के शैक्षिक, व्यवसायिक तथा व्यक्तिगत प्रगति से जुड़ा है। विद्यालय के समस्त विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास तभी संभव है जब विद्यालय में परामर्शदाता और मार्गदर्शक के रूप में योग्य, कुशल व प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हो अथवा अध्यापकों को ही कुछ विशेष प्रशिक्षण देकर इन उत्तरदायित्वों के वहन के लिए तैयार किया जाए।

अभ्यास प्रश्न

5. परामर्शदाता की विद्यार्थियों को परामर्श देने से सम्बन्धित क्या मुख्य जिम्मेदारियाँ है?
6. परामर्शदाता द्वारा माता-पिता तथा अभिभावक का सहयोग परामर्श एवं मार्गदर्शन हेतु क्यों आवश्यक है?
7. परामर्शदाता अध्यापको को किस सम्बन्ध में परामर्श एवं मार्गदशर्न प्रदान कर सकता है?
8. परामर्शदाता का समुदाय व समाज के साथ बेहतर तालमेल क्यों आवश्यक है ?

10.5 सारांश

इस इकाई के प्रथम भाग को पढ़ने के बाद आप अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व प्रशिक्षण एवं तैयारी तथा अनुभव से संबंधित गुणों जैसे- रूचियों में व्यापकता, सहयोग की भावना, विनम्र स्वभाव, दूरदर्शी, आकर्षक व्यक्तित्व, विश्वासपात्र, शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों व विधियों का ज्ञान, परामर्श एवं निर्देशन के सिद्वान्तों की समझ, परामर्श एवं निर्देशन सेवाओं के संगठन के विषय में पूर्ण जानकारी, विभिन्न व्यवसायों की जानकारी, परामर्शदाता के लिए निर्धारित शैक्षिक योग्यताओं को जान चुके हैं। उसमें परामर्श एवम् निर्देशन सेवा का मूल्यांकन करने की योग्यता भी होनी चाहिए। इकाई के द्वितीय भाग को पढ़ने के बाद आप विद्यार्थियों, अध्यापकों, माता-पिता तथा अभिभावकों तथा समाज की परामर्शदाता से क्या अपेक्षाये है।

आप जान गये है तथा परामर्शदाता की मुख्य जिम्में दारियों-विद्यार्थियों की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं को जनना, उन्हें स्वयं निर्णय लेने में सक्षम बनाना, परामर्श के सफल आयोजन हेतु माता-पिता से अपेक्षित सहयोग प्राप्त करना, उन्हें बालकों की प्रगति से अवगत कराना, अध्यापक की शिक्षण कला में दक्ष हो इस हेतु परामर्श देना, विशेष बालकों, कुसमायोजित बालको के शिक्षण मे शिक्षक की मदद करना, विभिन्न सूचनाओं को आवश्यकता पड़ने पर उपलब्ध कराना, सूचना सेवाओं का संगठन एवं आयोजन करना, विद्यार्थियों की शैक्षिक एंव व्यवसायिक प्रगति एवं विकास हेतु हर संभव प्रयास करना, से भी परिचित हो गये है।

10.6 शब्दावली

1. **परामर्शदाता-** ऐसा व्यक्ति जो विद्याथियों को स्वयं के बारे में निर्णय लेने में सहायाता प्रदान करता है तथा मार्गदर्शन प्रक्रिया का संचालक होता है।
2. **परामर्शदाता के गुण-** परामर्शदाता की ऐसी अच्छी विशेषताएं है जो उसे मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रक्रिया में सफलता प्रदान कर सके।

3. **परामर्शदाता की भूमिका-** परामर्शदाता द्वारा किये गये ऐसे समस्त कार्य जो मार्गदर्शन एवं परामर्श प्रक्रिया की सफलता हेतु अपेक्षित है।

10.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अच्छे परामर्शदाता के व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषतायें होनी चाहिए-
   i. रूचियों में व्यापकता होजिससे वह बालकों को उनकी रुचि को पहचानने मे सहायता कर सके।
   ii. उसमें सहयोग की भावना हो ताकि वह विद्यालय के अन्य सभी सदस्यों की समस्याओं को समझकर उन्हें समस्या हल करने में मदद कर सके
   iii. विनम्रता तथा वातावरण को खुशनुमा बनाने की कला हो। उसको मधुर वाणी में ही सबसे वार्तालाप करना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को उससे घुलने मिलने में मदद मिल सके
   iv. उसकी सोच दूरदर्शी हो जिससे वह विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के भविष्य को सँवारने का काम कर सके जिससे विद्यालय के लक्ष्य प्राप्त हो सकें।
   v. आकर्षक व्यक्तित्व हो जिससे हर विद्यालय का व्यक्ति अपनी समस्या के समाधान हेतु बिना हिचकिचाहट के उसकी तरफ आकर्षित हो सके।
   vi. विश्वासपात्र बनने की कला हो। जिसकी सहायता से वह किसी का विश्वास हासिल कर उससे घुल मिल कर समस्या की तह तक पहुँच सके
   vii. निरीक्षण योग्यता हो। जिससे वह विद्यार्थियों के बारे मे बहुत सी जानकारी केवल निरीक्षण से ही कर सके
2. परामर्शदाता को निम्नलिखित विषयों में प्रशिक्षण देना जरूरी है-
   i. शैक्षिक उद्देश्यों, पाठ्यक्रमों तथा विधियों का ज्ञान।
   ii. विभिन्न व्यवसायों के विषय में विभिन्न गतिविधियों का ज्ञान।
   iii. परामर्श एवं मार्गदर्शन के सिद्वान्तों का ज्ञान।
   iv. विद्यालयों में निर्देशन सेवाओं के गठन के विषय में ज्ञान।
3. परामर्शदाता के लिए निम्नलिखित योग्यतायें होना चाहिए:-
   (1) एम0ए0 (मनोविज्ञान या शिक्षा) या बी0 ए0
   एम0एड0 (निर्देशन एवं परामर्श सहित)
   (2) शिक्षा निर्देशन में डिप्लोमा कोर्स
4. परामर्शदाता को निर्देशन कार्यक्रम में दक्षता हासिल होनी चाहिए जिससे उसे विद्यार्थियों की समस्या को समझने, उन समस्याओ का समाधान करने तथा उनके साथ मधुर संबंध स्थापित करने में सहायता मिलती है। परामर्शदाता को हर प्रकार की

सूचनाओं की व्याख्या करने में निपुणता होनी चाहिए। मूल्यांकन करने की योग्यता भी होना चाहिए।

5. विद्यार्थियों के लिए परामर्शदाता की मुख्य जिम्मेदारियाँ:-
   i. विद्यार्थियों से आत्मीय एवं घनिष्ठ सम्बन्ध बनाकर विद्यार्थियें की मनोवैज्ञानिक गुणों तथा विशेषताओं को जानने हेतु विभिन्न प्रकार के परीक्षणों जैसे-बुद्धि परीक्षणों, उपलब्धि परीक्षण, रूचिपरीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिरूचि परीक्षण का उपयोग करना।
   ii. विद्यार्थियों को इस योग्य बनाना कि वे अपनी समस्याओं के कारणों को ठीक प्रकार से समझकर अपने सकारात्मक पक्षों को पहचानकर समस्या का निदान स्वयं करने में सक्षम हो सकें।
6. परामर्श एवं मार्गदर्शन की सफलता के लिए बालक के बारे में विभिन्न प्रकार की सूचनायें होना बहुत आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का स्वयं आयोजन करने के अलावा भी बालक के व्यवहार, योग्यता, क्षमता, रूचियों, व्यक्तिगत गुणों एवं आदतों के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सूचनायें माता-पिता तथा अभिभावक ही प्रदान कर सकते है। इसलिए उनका सहयोग परामर्श एवम् मार्गदर्शन प्रक्रिया में अत्यन्त जरूरी है।
7. कक्षा के कुसमायोजित, विशेष बालकों एवं पिछड़े बालकों को पढ़ाने में शिक्षक को अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ता है इस सम्बन्ध में परामर्शदाता उन्हें उचित परामर्श एवं मार्गदर्शन प्रदान कर समायोजनात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षण के तरीकों से परिचित कराता है। परामर्शदाता विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों को प्रशासित कर विद्यार्थियों की व्यक्तित्व विशेषताओं से शिक्षक को परिचित कराता है जिससे वह शिक्षण प्रक्रिया को और प्रभावी बनाने में सफल होता है।
8. परामर्श एवं मार्गदर्शन तभी सफल हो सकता है जब इसमें समुदाय एवं समाज का सहयोग भी आवश्यकतानुसार हो। विद्यार्थियों की शैक्षिक एवं व्यावसायिक प्रगति हेतु विभिन्न शिक्षण संस्थानों, व्यावसायिक प्रतिष्ठानों, सरकारी उपक्रमों के साथ परामर्शदाता को संपर्क रखना जरूरी होता है। विद्यार्थियों को वास्तविक औद्योगिक अनुभव प्रदान करने हेतु, किसी अच्छे शिक्षण संस्थान की कार्य संस्कृति से परिचित कराने हेतु उन्हें क्षेत्र में ले जाना पड़ता है। या अनुभवी विशेषज्ञ व्यक्तियों को विद्यालय में बुलाकर उनका व्याख्यान तथा वार्तालाप-सत्र आयोजित किया जाता है। विद्यार्थी शिक्षा के उपरान्त समुदाय या समाज में जीविकोपार्जन हेतु जाता हे। इसलिए समुदाय व समाज की प्रकृति व अपेक्षाओं के अनुरूप ही बालको को तैयार करना ही विद्यालय का लक्ष्य है इसे पूरा करने में परामर्शदाता महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

10.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. ओबेराय, डॉ0 सुरेश चन्द्र (2006), शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ,
2. मंगल, डॉ0 एस0 के0 एवं श्रीमती शुभ्रा (2003), मार्गदर्शन एवं परामर्श, आर्य बुक डिपो, मेरठ
3. गुप्ता, एस.पी. (2008), उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. सिंह, ए. के. (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
5. जायसवाल, एस.(2008), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi: Vikash Publishing House.
7. Das, B.N. (2010). Career Guidance and Counselling. Agra: Vinod Pustak Mandir
8. Kochhar, S.K, (1980) Guidance and Councelling, New Delhi: Sterling Publishers.
9. Mathur, S.S.(2012).Fundamentals of Guidance and Counselling.Agra: Vinod Pustak Mandir
10. NCERT(2008).Introduction to Guidance,Module-1, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
11. NCERT(2008).Career Information in Guidance,Module-5 and 12, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
12. Pandey, K.P.(2009).Educationaland Vocational Guidance in India. Varanasi: Vishvidyalaya Prakashan.
13. Sharma, N.R. (2012). Educationaland and Vocational Guidance. Agra: Vinod Pustak Mandir

10.9 सहायक /उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Agarwal, J.C, (1985), Educational Vocational Guidance and Counseling, Doaba House, New Delhi.

- Agrawal, R (2006). Educational, Vocational Guidance and Counselling, New Delhi, Sipra Publication.

- Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi, Vikash Publishing House.
- Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Counselling, Rex Printing Company, Inc., Quezon City.
- Kinra, A.K. (2008). Guidance and Counselling, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. New Delhi.
- Jones, A.J.(19510.Principles of Guidance and Pupil Personnel work,New York,MiGraw Hill.
- Mendoza, E. (2003), Guidance and Counselling Today. Rex Book Store (RBSI), Manila.

8. Nanda, S.K and Sharma S, (1992) Fundamentals of Guidance, Chandigarh.

Websites & E-links:-

- www.books.google.co.in
- www.education.go.ug/guidance
- http://encyclopedia2.thefreedictionary.com
- www.careersteer.com
- www.lotsofessays.com
- www.careerstrides.com
- www.wikipedia.org/wiki

10.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. परामर्शदाता कौन होते है? स्कूल में उनकी भूमिका के ऊपर प्रकाश डालिए?
2. स्कूल में परामर्शदाता से सभी की क्या-क्या अपेक्षाएँ होती है? इन्हें पूरा करने हेतु परामर्शदाता को क्या उत्तरादायित्व निभाने होते है ? स्पष्ट कीजिए?
3. परामर्शदाता में क्या गुण होने चाहिए? विस्तार से वर्णन कीजिए?

इकाई 11 - निर्देशन के उपकरण एवं प्रविधियाँ तथा निर्देशन एवं परामर्श में परीक्षणों का उपयोग

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 निर्देशन के उपकरण एवं प्रविधियाँ
 11.3.1 प्रमापीकृत प्रविधियाँ
 11.3.2 अप्रमापीकृत प्रविधियाँ
11.4 परीक्षणों का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.1 बुद्धि परीक्षण का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.2 व्यक्तित्व परीक्षण का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.3 रुचि परीक्षण का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.4 अभिक्षमता परीक्षण का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.5 निर्धारण मापदंड का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.6 व्यक्ति अध्ययन का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.7 समाजमिति का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.8 अवलोकन का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.9 संचित अभिलेख का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
 11.4.10 साक्षात्कार का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग
11.5 सारांश
11.6 शब्दावली
11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
11.9 सहायक उपयोगी/ पाठ्य सामग्री
11.10 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना

किसी व्यक्ति के बारे में सूचनाओं को एकत्रित करना परामर्श एवं निर्देशन की नैदानिक अथवा मूल्यांकन सेवा के रूप में जाना जाता है। संकुचित अर्थ में नैदानिक अथवा मूल्यांकन से तात्पर्य किसी व्यक्ति के मनोसामाजिक विशेषताओं, बुद्धि, अभिक्षमता, दृष्टिकोण एवं पृष्ठभूमि से संबंधित अनेक सूचनाऐं एकत्रित करने एवं उनको साझा रूप में समझने योग्य बनाने हेतु संश्लेषित करने से है। आधुनिक समय में माता-पिता अपने संतान की आवश्यकताओं तथा उनके गुणों, रूचियों, योग्यताओं आदि का ज्ञान प्राप्त किये बिना ही उनका भविष्य निश्चित करते हैं। अतः इसका परिणाम उपयोगी सिद्ध नहीं होता है। परन्तु यह देखा गया है कि बहुत से व्यक्तियों की वृत्तियां बदलती पायी गयी है। इस प्रकार के व्यक्तियों में किसी एक वृत्ति की कुशलता हासिल नहीं हो पाती। इस प्रकार के व्यक्ति को उचित मार्गदर्शन एवं परामर्श देने हेतु व्यक्ति विशेष का ज्ञान आवश्यक है। अतः प्रत्येक व्यक्ति के विषय में विभिन्न प्रकार की प्रविधियों का उपयोग करते हैं। इन प्रविधियों में हम प्रमापीकृत तथा अप्रमापीकृत परिक्षणों की सहायता से व्यक्ति के विषय में अध्ययन करते हैं तथा उनका मार्गदर्शन करते हैं। हम देख सकते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति के विषय में अध्ययन करने के लिए परामर्शदाता को विभिन्न प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है और यही सूचनाएं निर्देशन तथा मार्गदर्शन कार्य में एक आधार कार्य करती है। अतः इन सूचनाओं को एकत्रित करने हेतु विभिन्न प्रकार की प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इन प्रविधियों के अन्तर्गत हम विभिन्न प्रकार के परिक्षणों को सभी व्यक्तियों पर करते हैं तथा इन परिक्षणों से प्राप्त सूचनाओं के उपयोग के आधार पर हम प्रत्येक व्यक्ति के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त करके उन्हें निर्देशन तथा परामर्श दे सकते हैं।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

1. सभी प्रकार के उपकरण एवं प्रविधियों के विषय में जो कि, मार्गदर्शन अथवा निर्देशन में उपयोग में आता है जान सकेंगे।
2. इन उपकरण तथा प्रविधियों के उपयोग के विषय एवं उनकी क्रिया-विधि को बता सकेंगे।
3. इन उपकरण एवं प्रविधियों के कितने प्रकार तथा इनमें किस-किस परीक्षणों का उपयोग हैं, ये समझा सकेंगे।
4. प्रत्येक प्रविधि के अन्तर्गत आने वाली भिन्न-भिन्न परीक्षणों के विषय में तथा उनकी उपयोगिता के विषय में जान सकेंगे।
5. आप प्रत्येक परीक्षण को व्यक्तियों के समूह पर आयोजित करके महत्वपूर्ण सूचनाओं को एकत्रित कर सकेंगे।

6. इन उपकरण एवं प्रविधियों के अन्तर्गत आने वाली विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का तुलनात्मक अध्ययन करके इनके गुण तथा दोषों के विषय में बता सकेंगे।
7. इन उपकरण तथा प्रविधियों के अन्तर्गत आने वाली सभी प्रकार के परीक्षणें का उपयोग किस प्रकार निर्देशन तथा परामर्श में हैं समझ सकेंगे।
8. सारणी बनाकर आप प्रत्येक परीक्षण का मार्गदर्शन में क्या उपयोग है इसकी व्याख्या कर सकेंगे।
9. बालकों के लिए किस प्रकार यह परीक्षण निर्देशन तथा मार्गदर्शन में उपयोगी है इसकी व्याख्या कर सकेंगे।

11.3 मार्गदर्शन अथवा निर्देशन के उपकरण एवं प्रविधियाँ

आप जानते होंगे की मार्गदर्शन अथवा निर्देशन में बहुत प्रकार के उपकरण तथा प्रविधियों का प्रयोग करके हम बालक के विषय में सूचनाएँ एकत्रित करते हैं तथा इन सूचनाओं के आधार पर ही परामर्शदाता प्रत्येक बालक के आवश्यकतानुसार उन्हें परामर्श भी प्रदान करता है।

आगे आप विभिन्न प्रकार के उपकरण एवं प्रविधि के कितने प्रकार हैं तथा इनमे क्या-क्या विशेषताएँ हैं इसका अध्ययन करेंगे।

निर्देशन के उपकरण एवं प्रविधिया
(Tools and Techniques of Guidance)

अप्रमापीकृत प्रविधियाँ (Non Standardized)	**प्रमापीकृत प्रविधियाँ (Standardized)**
1. प्रश्नावली	1. बुद्धि-प्रकृति तथा परीक्षण
2. आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख	2. व्यक्ति परीक्षण
3. निर्धारण मापदण्ड	3. रूचि परीक्षण
4. आत्मकथा	4. अभिरूचि अथवा अभियोग्यता परीक्षण
5. व्यक्ति-वृत्त अध्ययन	5. उपलब्धि परीक्षण
6. समाजमीति	
7.अवलोकन	
8. सामुहिक अथवा संचित पत्र	
9. साक्षात्कार	

सूचनाएँ एकत्रित करने की प्रविधियों को हम दो वर्गों में बाँट सकते हैं।

i. प्रमापीकृत प्रविधियाँ
ii. अप्रमापीकृत प्रविधियाँ

11.3.1 प्रमापीकृत प्रविधियाँ (Standardized Techniques)

प्रमापीकृत प्रविधियों में वे प्रविधियाँ शामिल हैं जिनकी रचना करते समय वैज्ञानिक सिद्धान्तों का प्रयोग किया गया हो तथा जिनकी वैधता और विश्वसनीयता का पता वैज्ञानिक ढंग से ज्ञात किया गया हो। प्रमापीकृत प्रविधियां निम्नलिखित हैं-

i. बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test)
ii. व्यक्तित्व परीक्षण (Personality Test)
iii. अभिक्षमता परीक्षण (Aptitude Test)
iv. उपलब्धि परीक्षण (Achievement Test)
v. रूचि परीक्षण (Interest Test)

बुद्धि परीक्षण (Intelligence Test)

सन् 1905 में बिने के प्रथम सफल बुद्धि परीक्षण के निर्माण से लेकर अब तक बुद्धि की प्रकृति के सम्बन्ध में विशेषज्ञों ने भिन्न-भिन्न मत प्रतिपादित किये जा चुके हैं। सन् 1911 में बिने ने बुद्धि को बोध पर आधारित तथा उद्देश्यपूर्णता व सही निर्णय से निर्धारित खोज परकता के रूप में स्पष्ट किया। इसके पश्चात् स्टर्न ने बुद्धि को परिभाषित किया। **स्टर्न के मतानुसार**- ''बुद्धि एक व्यक्ति की सामान्य क्षमता है जिस से वह चेतनापूर्वक अपने विचारों को नवीन आवश्यकता से समायोजित करता है, वह नई समस्याओं तथा जीवन की परिस्थिति के प्रति सामान्य मानसिक ग्रहणशीलता है।

अतः अब आप जान गये होंगे कि बुद्धि परीक्षण के अन्तर्गत बुद्धि से क्या तात्पर्य है।

वैशलर के मतानुसार-"बुद्धि व्यक्ति की सामूहिक योग्यता होती है जो उसे उद्देश्यपूर्ण ढंग से कार्य करने, तर्कपूर्ण ढंग से विचार करने तथा वातावरण के साथ प्रभावशाली ढंग से समायोजन करने में सहायक है"।

आगे आप बुद्धि की विशेषताओं, सिद्धान्त तथा बुद्धि का मापन किस-किस प्रकार किया गया है अध्ययन करेंगे।

बुद्धि की विशेषताएं अथवा लक्षण

i. बुद्धि को जन्मजात योग्यता माना गया है।
ii. लिंग भेद का बुद्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।
iii. वंशानुक्रम का बुद्धि पर बहुत प्रभाव होता है।
iv. बुद्धि का विकास किशोरावस्था की मध्यअवधि तथा पूरा हो जाता है।
v. भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में बुद्धि भिन्न-भिन्न होती है।
vi. बुद्धि मनुष्य को जटिल समस्याओं और परिस्थितियों को हल करने में सहायता करती है।
vii. बुद्धि व्यक्ति को सीखने में सहायता करती है।
viii. बुद्धि व्यक्तियों को वातावरण के अनुसार स्वयं को समायोजित करने में सहायता करती है।

बुद्धि का मापन

सर्वप्रथम बिने ने बुद्धि को एक अविभाज्य इकाई माना था इसके पश्चात स्पीयरमैन महोदय ने 1904 में कहा कि बुद्धि दो कारकों- g कारक तथा s कारक से मिलकर बनी है। सामान्य योग्यताकारक) जन्मजात है जो उपलब्धि व स्तर का निर्धारिक है जबकि विशिष्ट योग्यता कारक विभिन्न मानसिक कार्यों हेतु विशिष्ट योग्यताओं का एक समूह होता है। किन्तु सन् 1909 में थार्नडाइक ने स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त का खंडन करते हुए कहा कि बुद्धि असंख्य स्वतंत्र कारकों से बनी है। इन स्वतंत्र कारकों में से प्रत्येक कारक किसी विशिष्ट मानसिक योग्यताओं का आंशिक प्रतिनिधित्व करता है। इसके कुछ समय बाद सन् 1936 में थर्सटन ने कहा कि बुद्धि न तो मुख्य रूप से सामान्य कारक से निर्धारित होती है तथा न ही असंख्य सूक्ष्म व विशिष्ट तत्वों से मिलकर बनी होती है। वरन् कुछ प्राथमिक कारको से मिलकर बनी होती है। ये कारक हैं-

आंकिक कारक- (numerical factor) शाब्दिक कारक (verbal factor), स्थानिक कारक (spatial factor), वाकपटुता कारक (word fluency), तार्किक कारक (reasoning factor) तथा स्मृति कारक (memory factor) है। फिलिप वर्नन ने थर्सटन के सिद्धान्त की यह कहते हुए आलोचना कि थर्स्टन ने केवल g कारक को समूह कारकों में विभाजित कर दिया है अन्यथा थर्सटन की स्थिति भी बिलकुल स्पीयरमैन की तरह है। बर्ट तथा वर्नन (1947, 1961) ने स्पीयरमैन के द्विकारक सिद्धान्त को संशोधित किया और पदानुक्रमिक समूह कारक सिद्धान्त प्रस्तुत किया जिसमें उन्होंने g कारक को व्यक्ति की क्षमता का सर्वोच्च उभयनिष्ठ कारक बताया।

G कारक को वर्नन ने दो प्रमुख समूह कारको शाब्दिक व शैक्षिक योग्यता तथा प्रयोगात्मक व निष्पादक योग्यताएं में विभक्त किया। कैटल ने सन् 1963 में द्रवीकृत बुद्धि तथा धनीकृत बुद्धि में अन्तर करते हुए कहा कि द्रवीकृत बुद्धि व्यक्ति के वंशानुक्रम से निर्धारित होती है जबकि धनीकृत

बुद्धि का संबंध व्यक्ति के वातावरण से होता है। कैटल का यह प्रत्यय वर्नन के v:ed-k:m के समकक्ष ही है।

वर्नन का v:ed मुख्य समूह कारक धनीकृत बुद्धि के तथा k:m मुख्य कारक द्रवीकृत बुद्धि के समान है। जे0पी0 गिलफोर्ड ने बुद्धि संरचना का त्रिवियीय प्रारूप प्रस्तुत किया। उनके अनुसार तीनों विमायें क्रमशः विषयवस्तु या सामग्री(content), सक्रिया (operation), परिणाम तथा उत्पाद (product) है। मानसिक कार्यों में निहित चार प्रकार की विषयवस्तु (आकृतिक, सांकेतिक, शाब्दिक तथा व्यावहारिक), पांच प्रकार की संक्रियाएं (संज्ञान, स्मरण, परम्परागत चिंतन, अपरम्परागत चिंतन, मूल्यांकन) तथा छह प्रकार के परिणामों (इकाईयां, इकाईयों के वर्ग, इकाईयों में सम्बन्ध, सूचना प्रणाली, प्रत्यावर्तन प्रणाली) के आधार पर गिलफोर्ड ने कहा कि कुल 120(4×5×6=160) भिन्न-भिन्न प्रकार की मानसिक योग्यताएं हो सकती हैं, जो एक सौ बीस भिन्न-भिन्न कार्यों में संलग्न होती है।

विशिष्ट बुद्धि परीक्षण

बुद्धि परीक्षण को प्रशासन की दृष्टि से व्यक्तिगत व सामूहिक बुद्धि परीक्षण दो रूपों में बांटा जा सकता है तथा प्रस्तुतीकरण की दृष्टि से शाब्दिक बुद्धि परीक्षण तथा अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण में बाँटा जा सकता है। सामूहिक बुद्धि परीक्षण सामान्यतया शाब्दिक अथवा पेपर पेंसिल परीक्षण होते हैं तथा अशाब्दिक परीक्षण दो प्रकारों- निष्पत्ति परीक्षण तथा पेपर पेंसिल परीक्षण होते हैं। निर्देशन व परामर्श में उपयोग में आने वाले कुछ बहुप्रचलित विदेशी व भारतीय परीक्षणों को प्रस्तुत किया जा रहा है।

स्टैनफोर्ड-बिने निष्पत्ति बुद्धि परीक्षण

इसका निर्माण अलफ्रेड बिने ने सन् 1905 में किया। यह 1911 में साइमन से संशोधित किया इसे बिने-साइमन बुद्धि परीक्षण के नाम से जाना जाता है। सन् 1937 में इसे स्टेनफोर्ड विश्वस्कूल में टरमैन तथा मेरिल से पुनः संशोधित किया गया। अन्ततः इसको सन् 1962 में इंग्लैण्ड में संशोधित किया गया। भारत में इसे मनोविज्ञान ब्यूरो से स्वीकृत किया गया तथा हिन्दी मं इसका रूपान्तरण भी किया गया। यह एक व्यक्तिगत निष्पत्ति परीक्षण हैं जो 2 वर्ष से लेकर युवावस्था के व्यक्तियों की बुद्धि को बुद्धिलब्धि के रूप में मापता है।

$$\text{बुद्धि लब्धि} = \frac{\text{मानसिक आयु (M A)} \times 100}{\text{वास्तविक आयु (C A)}}$$

यह बुद्धिलब्धि सापेक्षिक रूप से स्थिर होती है।

90 -100 IQ औसत बुद्धि प्राप्तांको को इंगित करती है।

वैशलर-बैलवन बुद्धि मापनी

इस मापनी के दो भाग- शाब्दिक मापनी व निष्पत्ति मापनी होते हैं। प्रत्येक भाग में 5 उपपरीक्षण हैं। यह परीक्षण प्राप्तांकों को बुद्धिलब्धि के रूप में प्रदर्शित करता है। इस परीक्षण के मानक 10 वर्ष के आयु से अधिक के व्यक्तियों पर निर्मित किए गये है। लेकिन इस मापनी का मुख्यतः अनुप्रयोग 20-60 वर्ष के लोगों के लिए है। जबकि इसे और भी आयु के लोगों पर भी इस्तेमाल किया जा सकता है। किन्तु 60 वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों के प्राप्तांक अधिक विश्वसनीय नहीं होते है। यह मूल मापनी सन् 1955 में संशोधित एवं पुनः प्रमापीकृत की गयी और इसको वैशलर वयस्क बुद्धिमापनी नाम से प्रकाशित किया गया। इसके पश्चात् इस परीक्षण का एक और संशोधन बच्चों हेतु किया गया इस वैशलर बुद्धि मापनी में 10 उप-परीक्षण है। इसका निर्माण मूल मापनी की तुलना में और अधिक अच्छी प्रकार से किया गया है। इससे 5-15 वर्ष की आयु वाले बच्चों की बुद्धि का मापन किया जाता है। इससे प्राप्त प्राप्तांको को विचलन 'बुद्धिलब्धि प्राप्तांक' के नाम से जाना जाता है। जिसका मध्यमान 100 तथा मानक विचलन 15 है।

भाटिया बैट्री बुद्धि परीक्षण

इस व्यक्तिगत, निष्पत्ति बुद्धि परीक्षण का निर्माण डा0 सी.एम. भाटिया से किया गया। यह परीक्षण 12 वर्ष एवं इससे अधिक आयु के बच्चों की बुद्धि का मापन करता है। इस परीक्षण में 5 उप-परीक्षण होते हैं।

1. कोह ब्लाक डिजाइन परीक्षण
2. पासएलांग परीक्षण
3. पैटर्न-ड्राइंग परीक्षण
4. स्मृति परीक्षण।
5. पिक्चर काम्पलिशन परीक्षण

प्रत्येक उप-परीक्षण में सात एकांश हैं। उनमें से प्रत्येक एक अलग योग्यता को मापता है। किन्तु सम्पूर्ण बैट्री सामान्य बुद्धि का मापन करती है। इससे प्राप्त प्राप्तांक बुद्धिलब्धि प्राप्तांक कहे जाते हैं। यह अत्यधिक प्रसिद्ध व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण है जिसका उपयोग भारत में सर्वत्र परामर्श एवं निर्देशन हेतु किया जाता है। इसके अतिरिक्त भारत एवं विदेशों में कई समूह बुद्धि परीक्षणों का निर्माण किया गया है।

विदेशी परीक्षण जैसे-

i. ओटीस स्वयं प्रशासित मानसिक योग्यता परीक्षण (हाईस्कूल बालकों हेतु)
ii. कैटल कल्चर फेयर बुद्धि परीक्षण
iii. रेवन प्रोग्रेसिव मैट्रिसेस बुद्धि परीक्षण

भारतीय परीक्षण जैसे

i. जलोटा सामान्य मानसिक योग्यता सामूहिक परीक्षण (13-16 वर्ष आयु के बच्चे हेतु)
ii. प्रयाग मेहता सामान्य बुद्धि परीक्षण।
iii. एम0सी0 जोशी बुद्धि परीक्षण।

अब आप बुद्धि अथवा बुद्धि परीक्षण से जुड़े सभी तथ्यों से अवगत हो गये होंगे। इसी क्रम में आप व्यक्तित्व परीक्षण से जुड़ी जानकारी आगे प्राप्त करेंगे। आप देखेंगे कि व्यक्तित्व क्या है तथा इस परीक्षण के प्रकार और क्या विशेषताएं होती है।

व्यक्तित्व परीक्षण - परामर्श एवं निर्देशन में व्यक्तित्व परीक्षणों का प्रयोग शुरूआत से हो रहा है।

व्यक्तित्व का अर्थ एवं प्रकृति

मनोवैज्ञानिको ने व्यक्तित्व को परिभाषित किया है। जैसे- गेस्टाल्ट ने इसे समग्र रूप में देखा उनके अनुसार व्यक्तित्व एक समग्र इकाई है। जो कि जटिल और विशलेषण न करने योग्य है।

मनोवैज्ञानिको के एक समूह ने इसे दूसरे शब्दों में परिभाषित किया- ‘‘व्यक्तित्व किसी व्यक्ति की दूसरों के प्रति उत्पन्न प्रतिक्रियाएं हैं।’’

तीसरे समूह ने व्यक्तित्व को शीलगुणों के रूप में परिभाषित किया। यह दृष्टिकोण व्यक्तित्व को विशलेषण के योग्य तथा मापने योग्य बनाता है।

परामर्श तथा निर्देशन में रूचि रखने वाले मनोवैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व के शीलगुण सिद्धान्त को अपने लिए अत्यधिक सहायक पाया वास्तव में अधिकांश व्यक्तित्व सिद्धान्त (कारक सिद्धान्तों तथा गतिशील सिद्धान्तों के अलावा) एक दुसरे से अलग नहीं है।

कारक सिद्धान्त अथवा शीलगुण सिद्धान्त व्यक्तित्व को कुछ निश्चित विमाओं एवं कारको का एकीकरण के रूप में परिभाषित करते हैं।

गाल्टन, कैटल, वर्नन, आइसेन्जक, बिने तथा हल इसी मत को स्थापित करते हैं।

यह दृष्टिकोण व्यक्तित्व की शीलगुणों अथवा कारकों के रूप में मापने योग्य बनाता है। इस कारण व्यक्तित्व के इस उपागम ने निर्देशन के सिद्धान्तों एवं प्रयोगों को अत्यधिक प्रभावित किया है।

कैटल का विश्वास था कि व्यक्तित्व को कुछ विशिष्ट गुणों प्रकारों अथवा शीलगुणों के रूप में परिभाषित किया जाए जो मापने योग्य है। इस प्रकार एक व्यक्ति के व्यक्तित्व का विश्लेषण वस्तुनिष्ठ तरीके से किया जा सकता है।

आइसेन्क एवं कैटल ने व्यक्तित्व का अध्ययन करने के लिए मात्रात्मक प्रविधियों का इस्तेमाल किया।

निर्देशनकर्त्ताओं का सर्वाधिक ध्यान व्यक्तित्व के गत्यात्मक सिद्धान्तों की ओर आकर्षित हुआ। व्यक्तित्व के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त तथा स्वयं सिद्धान्त ने परामर्श एवं निर्देशन को प्रभावित किया जो कि महत्वपूर्ण गत्यात्मक सिद्धान्त है। रोजर के सिद्धान्त के आत्मन ने परामर्श एवं निर्देशन को मजबूत आधार प्रदान किया। फ्रायड के मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त में आनुवांशिक संवेगों अथवा मूल प्रवृत्तियों के महत्व, व्यक्ति का मनोलैंगिक विकास व्यक्तित्व के विकास में उसके प्रारंभिक अनुभवों, जागरूकता के स्तरों (चेतन, अर्द्धचेतन तथा अचेतन) और इदं, अहं व अत्यहं घटकों पर जोर दिया। अचेतन तथा रक्षात्मक युक्तियों के संप्रत्यय मनोविश्लेषणात्मक थिरैपी हेतु महत्वपूर्ण है।

व्यक्तित्व का मापन

परामर्श एवं निर्देशन में व्यक्तित्व को नैदानिक बनाने का कारण समस्याओं को छांटना और बेहतर समायोजन करना है। फिशन्ट एवं हन्ना (1931) और कार्नर (1946) ने कुसमायोजन के कई उदाहरणों को प्रतिपादित किया जो प्रथम दृष्टतया शैक्षिक, व्यावसायिक और व्यक्तिगत प्रकृति के होते हैं। कमजोर रूप से समाकलित व्यक्ति को शैक्षिक और व्यावसायिक स्थितियों में समायोजित करने में परेशानी होती है इसलिए उन्हें या तो छाँटकर निकाला जाता है या उन्हें अधिक प्रभावी समायोजन बनाने में मदद की जाती है। इस कारण परामर्श एवं निर्देशन में व्यक्तित्व का मापन महत्वपूर्ण है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु विभिन्न प्रकार के परीक्षण और मापनी का निर्माण किया गया। व्यक्तित्व परीक्षणों को निम्नलिखित दो प्रकारों में विभाजित किया जाता है।

प्रक्षेपीय परीक्षण

इस प्रकार के दो परीक्षण अतिलोकप्रिय है।

i. **रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण**

   इस परीक्षण का निर्माण हरमन रोशा ने किया था। इस परीक्षण का निर्माण मनोचिकित्सकीय डिसआर्डर का निदान करने के लिए किया जाता है। लेकिन वर्तमान में इसका उपयोग सामान्य व्यस्कों, किशोरों एवं बच्चों के लिए भी किया जाता है। इस परीक्षण में कुल 10 कार्ड होते हैं। जिसमें से प्रत्येक पर एक सममित मसि लक्ष्य बना होता है। प्रत्येक कार्ड व्यक्तिगत रूप से प्रशासित किया जाता है। ये कार्ड एक-एक करके एक निश्चित क्रम में व्यक्ति के सामने प्रस्तुत किये जाते हैं तथा पूछा जाता है कि मसि लक्ष्य में उसे क्या दिखाई दे रहा है या मसि लक्ष्य किस आकृति जैसा लग रहा है। व्यक्ति के दिये गये उत्तरों के आधार पर उसके व्यक्तित्व के संबंध में निष्कर्ष ज्ञात किये जाते हैं। प्रतिक्रियाओं को स्थिति (W , D, d, or dd i.e. **समग्र**, अंश, लघु अंश अथवा मिनट विवरण), रूप एवं गति/चलन के रूप में रिकार्ड किया जाता है। यह परीक्षण व्यक्ति के बौद्धिक क्रियाविधि, सांवेगिक

नियंत्रण, समायोजन, रूचियों, चिन्ता इत्यादि के बारे में सूचना प्रदान करता है। विभिन्न व्यवसायों में कार्यरत व्यक्तियों के व्यक्तित्व का मापन करने के प्रयास भी किए गए हैं। इस परीक्षण के आधार पर लोगों के नौकरी या व्यवसाय में सफल होने की भविष्यवाणी भी की गयी। इसका प्रयोग रक्षा विभाग में विभिन्न पदों पर व्यक्तियों की नियुक्ति हेतु भी किया गया है। इसका प्रयोग भारत के सभी केन्द्रों व अन्य देशों के केन्द्रों पर परामर्श एवं निर्देशन देने में किया गया।

ii. **प्रासंगिक अन्तर्वोध परीक्षण**

प्रक्षेपीय ढंग से व्यक्तित्व मापने के इस लोकप्रिय परीक्षण का निर्माण सन् 1935 में सी0डी0 मार्गन तथा एच0ए0 मुरे ने किया था। इस परीक्षण की आधारभूत मान्यता यह है कि जब व्यक्ति के सम्मुख कोई अस्पष्ट सामाजिक परिस्थिति प्रस्तुत की जाती है तथा उससे उस परिस्थिति के अनुरूप कोई काल्पनिक कहानी बनाने के लिए कहा जाता है तो उस कहानी के विभिन्न पात्रों से वह व्यक्ति अपने व्यक्तित्व की विशेषताओं को अप्रत्यक्ष रूप से अभिव्यक्त कर देता है। कहानी के कथानक से उस व्यक्ति की आवश्यकताओं, चिंताओं, इच्छाओं, विचार प्रतिक्रियाओं, परिपक्कता स्तर, आत्म प्रतिमा, सामाजिक समायोजन, दृष्टिकोण आदि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस परीक्षण में कुल 38 कार्ड होते हैं। एक-एक करके प्रत्येक कार्ड को दिखा व्यक्ति से कहानी बनाने को कहा जाता है इसके पश्चात् प्रयोज्यों से बनायी गयी कहानियों का अंकन व विश्लेषण करके उसके व्यक्तित्व का आंकलन करने का प्रयास किया जाता है। यह परीक्षण भारत में परामर्शदाताओं व निर्देशनकर्त्ताओं के बीच काफी लोकप्रिय है।

रोशा परीक्षण तथा प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण में मुख्य अन्तर इस बात का है कि रोशा परीक्षण की सहायता से व्यक्तित्व की संरचना तथा संगठन की जानकारी करने का प्रयास किया जाता है। जबकि प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण से व्यक्तित्व के गुणों को ज्ञात करने की कोशिश की जाती है।

अप्रक्षेपीय परीक्षण

- **एडवर्ड्स व्यक्तिगत पसंद अनुसूची**

  इसका निर्माण सन् 1954 में मनोवैज्ञानिक कार्पोरेशन के तत्वाधान में किया गया इसका भारतीय रूपान्तरण सन् 1966 में डॉ0 आर0पी0 भटनागर से शोध हेतु किया गया था। यह मुरे (1938) के बताए गये 15 व्यक्तित्व माँगों को मापता है। यह परीक्षण हाईस्कूल एवं 12 वर्ष की आयु से अधिक के व्यक्तियों पर भी इस्तेमाल किया जा सकता है। यह परीक्षण की परामर्श एवं निर्देशन में प्रमुख रूप से इस्तेमाल किया जाता है।

- **बेल समायोजन मापनी**

स्टेनफोर्ड कालेज प्रेस से इस मापनी का निर्माण व्यक्तिगत समायोजन को चार क्षेत्रों (i) गृह (ii) स्वास्थ्य (iii) सामाजिक सम्बन्ध एवं (iv) सांवेगिक व्यवहार में जानने हेतु किया गया। यह छात्रों हेतु भी किया गया है। व्यस्कों के लिए भी इसका एक प्रारूप व्यवसायिक परामर्श हेतु किया जाता है।

- **थर्सटन टेम्परामेंट मापनी**

  यह मापनी हाईस्कूल छात्रों के व्यक्तित्व के मापन हेतु प्रयोग की जाती है। इसमें कुल 140 एकांशों का सेट होता है। जो सांवेगिक अभिव्यक्ति के 7 विविध पक्षों को मापता है। यह सात पक्ष हैं - (1) सक्रियता (2) विगोरस (3) इम्पलसिव (4) प्रभावी (5) स्थायी (6) सामाजिक (7) प्रतिवर्ती

  कैलीफोर्निया व्यक्तित्व परीक्षण।
  -एसीडेंस-सबमिशन प्रतिक्रिया अध्ययन
  -व्यक्तित्व प्रश्नावली (बच्चों हेतु)
  -हाईस्कूल व्यक्तित्व कारक प्रश्नावली

रूचि परीक्षण

रूचि का अर्थ- गिलफोर्ड के शब्दों में "रूचि किसी क्रिया वस्तु या व्यक्ति पर ध्यान देने, उस से आकर्षित होने, उसे पसन्द करने तथा उससे सन्तुष्टि पाने की प्रवृत्ति हैं"

रूचियों का मापन

रूचियों को ज्ञात करने या मापन करने की विधियों के आधार पर रूचियों को चार भागों में बांटा जा सकता है। सुपर के अनुसार रूचियों के चार प्रकार हैं -

i. अभिव्यक्त रूचियाँ
ii. प्रदर्शित रूचियाँ
iii. आंकलित रूचियाँ
iv. सूचित रूचियाँ

इनमें से प्रथम तीन प्रकार की रूचियों की जानकारी, अवलोकन साक्षात्कार व्यक्ति के से लिखित बातों, चेकलिस्ट, प्रश्नावली या सम्प्राप्ति परीक्षणें जैसे मापन उपकरणें जो किन्हीं अन्य उद्देश्यों के लिए बनाये गये होते हैं, इनके प्रयोग से प्राप्त परिणामों की व्याख्या करके अप्रत्यक्ष रूप से की जाती है जबकि चतुर्थ प्रकार की रूचियों का मापन विशेष रूप से तैयार किये गये प्रमापीकृत रूचि सूचियों के से किया जाता है।

व्यक्ति की रूचि का मापन करने हेतु कई रूचि मापनी का निर्माण किया गया जो कि विश्वसनीय है।

व्यवसायिक रूचियों का मापन करने के लिए-स्ट्रांग वोकेशनल रूचि बैंक तथा कुडर पसन्द रिकार्ड दो महत्वपूर्ण मापनियाँ विश्व में सभी जगह इस्तेमाल की जाती हैं।

स्ट्रांग वेकेशनल रूचि बैंक

इस रूचि मापनी का निर्माण व संशोधित प्रकाशन 1959 में स्टेनफोर्ड कालेज प्रेस से प्रकाशित किया गया। तत्पश्चात् इसमे समय-समय पर संशोधन किए गये। वर्तमान में सन् 1966 में किया गया संशोधन ही सर्वत्र प्रयोग में लाया जा रहा है। यह स्कूली छात्रों एवं रोजगारपरक युवाओं की रूचि मापने के लिए प्रयोग किया जाता है। इसके माध्यम से 50 से अधिक व्यवसायों को मापा जाता है।

डार्ली के अनुसार इन प्रयोगों से प्राप्त ग्रेड प्राप्तांक के आधार पर रूचियों के पैटर्न को प्राथमिक सेकेन्डरी तथा तृतीयक के रूप में तैयार कर सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति सामान्यतः एक से अधिक व्यवसाय में रूचि रखता है। परन्तु उस व्यक्ति की रूचि किसी एक व्यवसाय में अत्यधिक होती है। यही तथ्य परामर्श एवं निर्देशन में उपयोगी है।

कुडर पसन्द रिकार्ड

(साइंस रिसर्च एसोसिएट्स 1939, व्यवसायिक रूप 1948, लघु औद्योगिक रूप 1957)

यह हाईस्कूल छात्रों के लिए तैयार किया गया प्रसिद्ध रूचि मापनी है। इसका प्रयोग व्यस्कों एवं कक्षा 8 के बालकों हेतु भी किया जा सकता है। इसमें 168 एकांश व्यवसायों के आधार पर पसन्द के रूप में व्यवस्थित होते हैं। यह दस प्रकार की रूचियों का मापन करता है। यह बाध्य-चयन प्रकार की मापनी है। इसका व्यावसायिक रूप रूचियों के निम्नलिखित दस क्षेत्रों का मापन करता है।

(1) आउटडोर (2) यांत्रिक (3) संगणकीय (4) वैज्ञानिक (5) परसयुएसीव (6) आर्टिस्टिक (7) साहित्यिक (8) संगीतमय (9) समाज सेवा (10) क्लैरिकल

चटर्जी अभाषीय पसन्द रिकार्ड

यह एक भारतीय अभाषीय परीक्षण हैं जिसमें 150 एकांश हैं प्रत्येक एकांश में तीन स्टिक चित्रों (तीन व्यवसायों की क्रियाविधि को प्रदर्शित करते हुए) में से व्यक्ति को एक चुनना होता है। यह 10 प्रकार की रूचियों का मापन करता है।

(1) आर्टिस्टिक (2) साहित्यिक (3) वैज्ञानिक (4) चिकित्सकीय (5) कृषि
(6) तकनीकी (7) हस्तकला (8) आडटडोर (9) खेलकूद (10) घरेलू

उपर्युक्त परीक्षणें के अन्तर्गत भारत में कुछ रूचि परीक्षण उपलब्ध है। उनमें से आर0पी0 सिंह, एस0पी0 कुलश्रेष्ठ, टी0एस0 सोढ़ी, एस0 भटनाकर, एम0एन0 पलसाने तथा साधना शर्मा से निर्मित कुछ परीक्षणों का उपयोग भी परामर्श एवं निर्देशन में होता है। व्यक्ति के रूचियों के विषय में प्राप्त जानकारी उसके आत्मप्रत्यय को समझने में सहायक है। जिससे उस व्यक्ति की शैक्षिक व्यवसायिक और व्यक्तिगत समस्याओं का समाधान परामर्श एवं निर्देशन से किया जाता है।

अभिक्षमता परीक्षण

सुपर के अनुसार 'अभिक्षमता' शब्द दो प्रकार से प्रयोग में लाया जाता है-

i. अभिक्षमता शीलगुण एवं क्षमताओं का संयोग है जो कि किसी भी व्यक्ति के लिए किसी भी क्षेत्र अथवा नौकरी में सफलता अर्जित करने के लिए अनिवार्य है।
ii. दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि अभिक्षमता अलग प्रकार की एकाकी विशेषता है जो कि विभिन्न दिशाओं में भिन्न-भिन्न प्रकार के क्रियाकलापों तथा व्यक्ति के पेशे के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

अभिक्षमता का मापन

मनोवैज्ञानिको ने बहुत सारे विशेष मानसिक क्षमताओं की संख्या का निर्धारण किया। इस क्षेत्र में टी0एल0 केली, इ0एल0 थर्सटन, वर्नन गिलफोर्ड तथा फ्रेंच का मुख्य योगदान रहा है। परन्तु थसर्टन का प्राथमिक मानसिक क्षमताएं का विशेष योगदान व्यक्ति विशेष की अभिक्षमताओं का मापन करने में रहा तथा इसे सर्वत्र स्वीकृति भी मिली। बहुत से परीक्षणों का निर्माण किया गया थर्सटन से ज्ञात विशेष अभिक्षमताओं के मापने में जो सहयोग प्रदान कर सके।

प्राथमिक मानसिक अभिक्षमता का शिकागो परीक्षण छः अभिक्षमताओं का मापन करता है जो विश्व में सर्वत्र प्रयोग में लाया जाता है जो इस प्रकार निम्नलिखित है- शाब्दिक अर्थ स्पेस, शब्द प्रवाह, तर्क, स्मृति, संख्या

इन परीक्षणों में से कुछ प्रमाणीकृत अभिक्षमता परीक्षण इस प्रकार है।

प्रोफीसीएन्सी परीक्षण(Profeciency Test)

यह एक प्रकार का सम्प्राप्ति परीक्षण है। इसका प्रयोग अभिक्षमता परीक्षण की तरह किसी भी संबंधित क्रियाकलाप के लिए किया जाता है। इस प्रकार से अभिक्षमता का अर्थ है किसी भी व्यक्ति की कार्य कौशल को देखते हुए तथा उससे संबंधित और कार्यों में उसकी सफलता का मापन करके हम उस व्यक्ति के सफलता अर्जित करने की भविष्यवाणी कर सकते हैं।

प्रकार के कुछ प्रमापीकृत परीक्षण निम्नलिखित हैं-

i. द कोओपेटीव अचीवमेन्ट परीक्षण
ii. द इवा टेस्टस ऑफ एजुकेशनल डेवलपमेन्ट।
iii. द ब्लैकस्टोन स्टीनोग्रैफी टेस्ट।
iv. द एस.आर.ए. टाइपिंग स्किल्स टेस्टस।
v. द परडयु वोकेशनल टेस्टस।

अभी भारत में इस प्रकार के परीक्षण उपलब्ध नहीं है।

क्लिरीकल अभिक्षमता परीक्षण

सुपर ने इस परीक्षण की प्रकृति के विषय में व्याख्या की है। वह यह मानते हैं कि अभिक्षमता, बुद्धि, आंकिक तथा शाब्दिक क्षमताएँ, गति तथा एक्युरिसी (परिशुद्धता), कौशल, मनोशारीरिक कौशल या हस्त कौशल का सम्मिश्रण है। नौकरी में सफलता हेतु भाषा तथा अंकगणित में व्यवसायिक दक्षता अति आवश्यक है। बुद्धि के सन्दर्भ में उन्होंने यह कहा वास्तव में यह नौकरी की सफलता के लिए आवश्यक कारक- ''न्यूनतम वांछनीय बुद्धिलब्धि 95 से 100'' है। कुछ अभिक्षमता परीक्षण निम्नलिखित है-

मिनेसोटा कार्पोरेशन कलर्केरियल परीक्षण

सन् 1959 में मनोवैज्ञानिक कार्पोरेशन से प्रकाशित परीक्षण का उपयोग 17 वर्ष आयु की लड़कियों एवं 19 वर्ष आयु के लड़कों के लिए किया जाता है। यह इससे अधिक आयु के बच्चों हेतु भी उपयोग में लाने योग्य है। यह अंक और नाम जांचने के माध्यम से आंकिक और शाब्दिक योग्यतायें मापता है। यह बहुतायत में इस्तेमाल होने वाला परीक्षण है।

हस्तकौशल परीक्षण- यह परीक्षण हस्त कौशल का मापन करता है।

यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षण - यांत्रिक अभिक्षमता मापने का सार्थक प्रयास सन् 1928 में कॉक्स ने इंग्लैंड में किया था और इसके पश्चात 1930 में पैटरसन व उसके सहयोगियों ने मिनेसोटा कालेज में इसका निर्माण किया। मैक क्वैरी यांत्रिक योग्यता परीक्षण और स्टैनक्विस्ट असैम्बली परीक्षण प्राचीन यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षणों में से एक है। यह प्रथम विश्वयुद्ध के समय बनाया गया था। यांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित चित्र और प्रश्नों को समाहित किये हुए बैनेट यांत्रिक अवबोध परीक्षण निर्मित किया गया जो पूरे विश्व में प्रचलित है।

व्यावसायिक अभिक्षमता परीक्षण - इसके अन्तर्गत इंजीनियरिंग, मेडिकल, कानून एवं शिक्षण परीक्षण आते हैं, इनका निर्माण उपर्युक्त व्यवसायों में बालक को शिक्षा हेतु चयनित करने हेतु किया

गया। शैक्षिक परीक्षण ब्यूरों का पूर्व इंजीनियरिंग मापनी और इंजीनियरिंग तथा भौतिक विज्ञान अभिक्षमता परीक्षण (मनोवैज्ञानिक कार्पोरेशन, 1943) का प्रयोग संयुक्त राज्य अमेरिका में इंजीनियरिंग में छात्रों के चयन हेतु बहुत उपयोग होता है। कैलीफोर्निया, कोलम्बिया, मिनेसोटा, आइवा इत्यादि कालेज में भी कानून की शिक्षा हेतु बालकों को चयनित करने हेतु परीक्षणों का निर्माण किया गया। शैक्षिक परीक्षण ब्यूरो ने भी कानून अभिक्षमता का निर्माण किया। इनमें से स्टैनफोर्ड कानून अभिक्षमता परीक्षण उच्च कोटि का परीक्षण है।

मेडिकल कालेज में बालकों के प्रवेश हेतु सन् 1944 में जार्ज वाशिंगटन कालेज से, मनोवैज्ञानिक कारपोरेशन से निर्मित नर्सिंग प्रवेश परीक्षा कार्यक्रम तथा 1930 में अमेरिकन मेडिकल कालेज संगठन से निर्मित मॉस मेडिकल अभिक्षमता परीक्षण निर्मित किया गया। सन् 1930 में कॉक्स-आरलियन्स शिक्षण योग्यता नैदानिक परीक्षण निर्मित किया गया।

इसमें 5 उपपरीक्षण हैं- सामान्य सूचना, शिक्षण विधियों का ज्ञान, व्यावसायिक पाठ्य वस्तु को सीखने की योग्यता, शैक्षिक पठनयोग्य सामग्री और शैक्षिक समस्याओं के हल का अवबोध। उपर्युक्त परीक्षण भारत में भी निर्मित किये गये हैं।

परामर्श एवं निर्देशन में DAT, GATB, CZAS, MAT, FACT इत्यादि परीक्षण का उपयोग होता है इनमें से GATB तथा DAT विशेष रूप से लाभदायक है।

अतः अब आप जान गये होंगे कि प्रमापीकृत विधियों में कितने प्रकार के परीक्षणों का समावेश है तथा प्रत्येक परीक्षण का निर्माण, क्रियाविधि एवं उपयोग क्या-क्या है।

अभ्यासप्रश्न

1. प्रमापीकृत विधियों में कितने प्रकार के परीक्षण आते हैं तथा उनका नाम बताइए?
2. बुद्धि के कितने सिद्धान्त है तथा किन्ही दो बुद्धि परीक्षण के नाम बताइए?
3. व्यक्तित्व मापन हेतु कितने प्रकार के परीक्षण हैं किन्ही दो परीक्षण के नाम बताइए?
4. रूचि कितने प्रकार की होती है। इनके नाम बताइए?
5. अभिक्षमता के मापन हेतु किन-किन परीक्षणों का उपयोग करते हैं।

आगे आप अप्रमाणीकृत विधियों के अन्तर्गत आने वाले परीक्षणों के विषय में जानकारी एकत्रित करेंगें।

11.3.2 अप्रमापीकृत विधियाँ

प्रश्नावली- प्रश्नावली प्रश्नों की वह लम्बी सूची होती है जो व्यक्ति से सूचनाएँ एकत्रित करने के लिये तैयार की जाती है तथा यह विधि अनुसंधान कार्य में भी प्रयुक्त होती है।

''सामान्यतः प्रश्नावली शब्द से अर्थ है वह साधन या प्रविधि है जो किसी व्यक्ति से एक प्रश्नों का फार्म प्रयोग करके उत्तर प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त होती है।''

प्रश्नावली के प्रकार

पी0वी0 यंग ने प्रश्नावली को दो वर्गों में बाँटा है।

i. रचित प्रश्नावली
ii. अरचित प्रश्नावली

लुंडबर्ग ने भी प्रश्नावली को दो वर्गों में बाँटा है।

i. तथ्य की प्रश्नावली
ii. विचार और दृष्टिकोण की प्रश्नावली

जॉन बेस्ट ने प्रश्नावली को दो वर्गों में बाँटा है।

i. बन्द फार्म
ii. मुक्त फार्म

जे0एस0 वालिया ने अपनी पुस्तक शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन में प्रश्नावली के तीन वर्ग बताये हैं।

i. प्रश्न-सूचक रूप
ii. सूची रूप
iii. चेक-लिस्ट फर्म

उत्तम प्रश्नावली की विशेषताएँ

ये बहुत व्यापक होती है ताकि संबंधित सूचनाएँ प्राप्त की जा सकें।

- प्रश्नावली में वस्तुनिष्ठ प्रश्न शामिल होने चाहिए।
- प्रश्नावली में प्रश्नों का क्रम उचित हो। यह क्रम सामान्य से विशिष्ट तथा सरल से जटिल की ओर होना चाहिए।
- प्रश्नों की व्यवस्था वर्गों के रूप में हो ताकि सही और आसान अनुक्रियाओं को प्राप्त किया जा सकें।
- प्रश्नावली में निर्देश स्पष्ट और पूर्ण दी जानी चाहिए।
- प्रश्नावली के अंकों का सारिणीकरण सरल होना चाहिए।
- यह स्पष्ट रूप से छपी हुई होती है।

उपरोक्त विवरण के आधार पर आप प्रश्नावली विधि के विषय में जान चुके होंगे। आगे हम आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के विषय में देखेंगे।

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख

आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख किसी अध्यापक से अवलोकन किया गया किसी बालक के व्यवहार और व्यक्तित्व का वस्तुनिष्ठ वर्णन है। यह रिकार्ड नियमित अवलोकन का परिणाम है जो कि बिना तैयारी के किया जाता है। इस प्रकार इसे अनौपचारिक अवलोकन भी कहते हैं।

आकस्मिक निरीक्षण के प्रकार

i. **पहला प्रकार-** इस प्रकार के आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के अन्तर्गत बालक में व्यवहार का वस्तुनिष्ठ अध्ययन होता है और इसमें किसी भी तरह के विचारों का समावेश नहीं किया जाता।
ii. **दूसरा प्रकार-** इस प्रकार में बालक के व्यवहार के वर्णन में साथ-साथ संक्षिप्त सी टीका-टिप्पणी भी लिखी होती है।
iii. **तीसरा प्रकार-** इस प्रकार में बालक के व्यवहार का विवरण एवं टीका-टिप्पणी के अतिरिक्त उसमें उपचार का वर्णन भी होता है।
iv. **चौथी प्रकार-** इस प्रकार में व्यवहार का वर्णन उसमे गुणों व दोषों के साथ होता है तथा भावी जीवन में उपचार हेतु सुझावों का भी उल्लेख होता है।

अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के गुण

i. **वस्तुनिष्ठता-** एक अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में वस्तुनिष्ठता का होना अनिवार्य है। एक आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख को अध्यापन की रूचियों, अरूचियों, विद्वेष तथा पक्षपात से मुक्त होना चाहिए।
ii. **पूर्ण चित्र-** एक अच्छे आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख की यह विशेषता होनी चाहिए कि वह किसी व्यक्ति के बारे में या घटना के बारे में पूर्ण चित्र प्रस्तुत करें।
iii. **पृष्ठभूमि की जानकारी-** इसकी यह विशेषता होनी चाहिए कि वह व्यक्ति या बालक के बारे में पूर्ण पृष्ठभूमि की जानकारी प्रस्तुत करें।
iv. **घटनाओं का विवरण तथा क्रम-** इसमें दर्ज घटनाएं क्रमानुसार होनी चाहिए तथा उनका विवरण भी क्रम में हो।
v. **प्रमुख सूचनाएं-** एक अच्छे अभिलेख की यह भी विशेषता होती है कि उसमें केवल प्रमुख सूचनाएं ही रिकार्ड की जानी चाहिए उचित निदान तभी संभव है यदि केवल संबंधित तथा अर्थपूर्ण घटनाओं का ही आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख में उल्लेख किया गया हो।

अब आप आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख के विषय में पूर्ण रूप से परिचित हो गये होंगे। तत्पश्चात् आगे हम आत्मकथा के विषय में पढ़ेंगे।

आत्मकथा

आत्मकथा में व्यक्ति अपने जीवन के लक्ष्यों, उपलब्धियों, रूचियों, इच्छाओं, घटनाओं प्रतिक्रियाओं आदि का वर्णन वास्तविकता के पुट के साथ करता है, इस विधि में व्यक्ति को इस बात की स्वतंत्रता होती है कि वह अपने अनुभवों तथा जीवन की घटनाओं को जिस प्रकार चाहे लिख सकता है। इस प्रकार यह एक आत्मनिष्ठ विधि है।

आत्मकथा के प्रकार

i. निर्देशित आत्मकथा।
ii. अनिर्देशित आत्मकथा।
iii. मिश्रित आत्मकथा

आत्मकथा के निम्नलिखित दो प्रकार भी बताये गये हैं-

i. व्यक्तिगत इतिहास।
ii. निर्देशित आत्मकथा।

अब आप आत्मकथा के विषय तथा प्रकार से भली-भांति परिचित हो गये होंगे। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए हम निर्धारण मापदंड के विषय में अध्ययन करेंगे।

निर्धारण मापदंड

निर्देशन कार्यक्रम में निर्धारण मापदंड का प्रयोग बहुत अधिक लोकप्रिय हो रहा है। इस विधि से हम किसी विशेष लक्षण के बारे में मत की अभिव्यक्ति को प्रणालीबद्ध करते हैं।

निर्धारण, निर्देशित अवलोकन है- रूथ स्ट्रैंग इस विधि से व्यक्तित्व तथा निष्पत्ति का मापन होता है। यह भी एक आत्मनिष्ठ विधि है। यह विधि कम विश्वसनीय एवं वैध है। आजकल इस विधि का प्रयोग औद्योगिक संस्थानों में कार्य कर रहे व्यक्तियों के वेतन में वृद्धि तथा पदोन्नति भरने के लिये किया जा रहा है।

निर्धारण मापदंड के प्रकार

- संख्यात्मक मापदंड
- वर्णनात्मक मापदंड
- पदक्रम मापदंड

- रेखांकित मापदंड
- समूह-प्रतिशत मापदंड
- युगल-तुलना मापदंड
- बलात-चयन मापदंड
- संचयी-अंक मापदंड

उपरोक्त विवरण के आधार पर आप निर्धारण मापदंड तथा उसके प्रकारसे परिचित हो गये होंगे। आगे हम व्यक्ति अध्ययन, उसके प्रकार तथा रूपरेखा के विषय में जानकारी प्राप्त करेंगे।

व्यक्ति अध्ययन

निर्देशन प्रक्रिया में व्यक्ति का इतिहास भी परामर्शदाता की बहुत सहायता करता है। व्यक्ति इतिहास में किसी व्यक्ति के बहुत से महत्वपूर्ण पक्षों का विस्तारपूर्वक विश्लेषण होता है।

ट्रैक्सलर के अनुसार- "व्यक्ति अध्ययन किसी व्यक्ति का उसके उत्तम समायोजन के लिए किया गया विस्तृत अध्ययन है"

व्यक्ति अध्ययनों के प्रकार

व्यक्ति अध्ययन निम्न प्रकार के होते हैं-

i. औपचारिक अध्ययन
ii. अनौपचारिक अध्ययन

एक अन्य वर्गीकरण के अनुसार व्यक्ति अध्ययनों को तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है।

व्यक्तियों से संबंधित अध्ययन

i. संस्थाओं का अध्ययन
ii. समुदायों या सांस्कृतिक समूहों का अध्ययन

व्यक्ति अध्ययन की रूपरेखा

किसी भी व्यक्ति अध्ययन को करते समय उसकी रूपरेखा से ही तय कर लेनी चाहिये। इसकी रूपरेखा में निम्नलिखित सूचनाओं को शामिल किया जाना आवश्यक है-

i. उद्देश्य
ii. सामान्य सूचनाएँ
iii. पारिवारिक इतिहास
v.शैक्षिक इतिहास
vi.स्कूल इतिहास
vii.व्यावसायिक इतिहास

iv. व्यक्तित्व संबंधी सूचनाएं viii.सामाजिक इतिहास

उपरोक्त विवरण के आधार पर आप व्यक्ति अध्ययन के विषय से भली-भांति परिचित हो गये हैं तथा आगे आप समाजमिति के विषय में अध्ययन करेंगे।

समाजमिति

समाजमिति से व्यक्तियों के पारस्परिक सामाजिक संबंधी का पता लगाया जाता है। समाजमिति एक समूह के सदस्यों के बीच आपसी संबंधी को मापना है अर्थात् इस विधि से यह ज्ञात होता है कि कौन सा बालक या व्यक्ति अपने समूह में अपना स्थान नहीं बन पाया। ऐसी परिस्थिति में उस व्यक्ति या बालक की सामाजिकता की भावना को विकसित किया जा सकता है।

समाजमिति विधियों के प्रकार

राईटस्टोन, डस्टमैन और राबिन्सन ने सामाजमिति की निम्नलिखित तीन विधियों का उल्लेख किया है-

i. किसी एक व्यक्ति से यह पूछा जा सकता है कि वह अपने समूह में से कितने व्यक्तियों के साथ एक दिये हुए मापदंड के आधार पर रहना पसंद करेगा।
ii. किसी एक व्यक्ति से अपने वर्ग के सभी सदस्यों का एक पूर्व-निर्धारित मान के अनुसार क्रम निर्धारण करने के लिये कहा जायेगा।
iii. किसी एक व्यक्ति से अपने समूह के ऐसे सदस्यों को चुनने के लिये कहा जाये जिनमे कुछ विशेषताएँ दिखाई देती हों।

समाजमिति में प्रयुक्त होने वाली विधियाँ-

i. प्रश्नावली विधि
ii. निरीक्षण विधि

उपरोक्त व्याख्या के आधार पर आप समाजमिति प्रत्यय को समझ गये होंगे तथा समाजमिति में प्रयुक्त होने वाली विधियों के नाम भी जान गए होंगे। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए हम अवलोकन विधि के विषय में अध्ययन करेंगे।

अवलोकन

अवलोकन किसी व्यक्ति के विषय में जानकारी प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन है। अवलोकन से निर्देशन प्रक्रिया में व्यक्ति के विषय में अध्ययन किया जाता है। अवलोकन से विभिन्न प्रकार के व्यवहारों एवं क्रियाओं का विवरण प्राप्त किया जाता है- इस विधि से व्यक्ति की प्रतिदिन की

क्रियाओं एवं व्यवहारों का निश्चित समय पर एवं समय-समय पर विवरण इकट्ठा किया जाता है। अवलोकन विधि बहुत ही पुरानी विधि है।

अवलोकन के प्रकार

1. जर्सिल्ड और मीग्स का वर्गीकरण
   i. स्वतंत्र अवलोकन
   ii. नियंत्रित अवलोकन
   iii. अर्ध-नियंत्रित अवलोकन
2. बोनी और हैम्पिलमैन का वर्गीकरण
   i. आकस्मिक अवलोकन
   ii. नियंत्रित अवलोकन
3. संख्या के अनुसार वर्गीकरण
   i. व्यक्तिगत अवलोकन
   ii. सामूहिक अवलोकन
4. स्थिति के अनुसार वर्गीकरण
   i. प्रत्यक्ष अवलोकन
   ii. अप्रत्यक्ष अवलोकन
5. प्रमापीकृत तथा स्वाभाविक अवलोकन
6. बाहरी तथा आन्तरिक अवलोकन
7. निर्देशित या उपपत्ति अवलोकन
8. प्रमापीकृत और स्वाभाविक अवलोकन

अवलोकन के सिद्धान्त

1. एक समय में एक ही बालक का अवलोकन
2. बालकों का अवलोकन नियमित क्रियाओं में
3. लम्बे समय तक अवलोकन
4. पूर्ण परिस्थिति का अवलोकन

उपरोक्त विवरण के आधार पर आप अवलोकन, अवलोकन के प्रकार तथा सिद्धान्तों से भलीभांति परिचित हो गए होंगे। आगे हम संचित अभिलेख के विषय में अध्ययन करेंगे।

संचित अभिलेख

बालकों को परामर्श और निर्देशन प्रदान करने के लिये बालक से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को इकट्ठा किया जाता है। उसे इकट्ठा करके जिस रूप में रखा जाता है उसे हम संचित अभिलेख कहते हैं।

''संचित अभिलेख- सूचनाओं का वह अभिलेख है जिनका संबंध बालक के मूल्यांकन से होता है और जिसे एक कार्ड पर लिखकर एक ही स्थान पर रखा जाता है।''-**ऐलन**

संचित अभिलेख पत्र की विशेषताएँ

इसमें निम्नलिखित विशेषताएँ हैं-

(1) सरलता (2) रख-रखाव (3)वस्तुनिष्ठता (4)शब्दों और संकेतों का अर्थ पूर्ण प्रयोग (5) पूर्ण सूचनाएँ (6) सत्य सूचनाएँ (7) गोपनीयता (8) सामूहिक मूल्यांकन पर आधारित (9) समय-समय पर मूल्यांकन (10) निरंतरता (11) लचीलापन

संचित अभिलेख के उद्देश्य

1. दोहरे प्रयासों को रोकना
2. लाभकारी सूचनाएँ प्रदान करने के लिये
3. समस्या क्षेत्रों को चिन्हित करने के लिए
4. वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन के लिये
5. बालक के लिये संचित अभिलेख

उपरोक्त विवेचन के आधार पर आपसंचित अभिलेख, विशेषताएँ तथा उद्देश्य से भली प्रकार परिचित हो गए होंगे। संचित अभिलेख के पश्चात् हम साक्षात्कार के विषय में अध्ययन करेंगे।

साक्षात्कार

अन्य विधियों की तरह साक्षात्कार भी निर्देशन और परामर्श में प्रयोग की जाने वाली सूचनाओं को इकट्ठा करने की एक मुख्य तथा महत्वपूर्ण विधि है।

साक्षात्कार को परामर्श का एक साधन भी कहा जाता है। वास्तव में साक्षात्कार विधि निर्देशन प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग है। परामर्श में भी साक्षात्कार विधि को सबसे अधिक मूलभूत और निर्भर रहने योग्य विधि माना जाता है।

साक्षात्कार मूलभूत रूप में निश्चित उद्देश्य के साथ वार्तालाप है।

साक्षात्कार के स्वरूप

एक वर्गीकरण के अनुसार साक्षात्कार को उसके स्वरूप के आधार पर निम्नलिखित चार प्रकार का बताया गया है-

1. संरचित साक्षात्कार
2. आरचित साक्षात्कार

3. केन्द्रित साक्षात्कार
4. पुनरावृत्ति साक्षात्कार

साक्षात्कार के उद्देश्य

- किसी भी प्रकार के साक्षात्कार के निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं-
- परामर्श प्राप्त कर्त्ताओं के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिये जान-पहचान करना।
- व्यक्ति की शैक्षिक, व्यावसायिक तथा मनोवैज्ञानिक समस्या हल करने तथा समायोजन प्राप्त करने में सहायता देना।
- साक्षात्कार विधि से भावनाओं, अभिवृत्तियों तथा विचारों की जानकारी प्राप्त करना।
- मनोविश्लेषण-साक्षात्कारों से व्यक्तियों का उपचार करना।
- साक्षात्कार से व्यक्तियों की विभिन्न समस्याओं के संभावित कारणों का निदान करना।

उपरोक्त विवरण के आधार पर आप साक्षात्कार, साक्षात्कार के स्वरूप, उद्देश्य तथा सोपान के विषय में जान चुके होंगे।

अभ्यास प्रश्न

6. अप्रमापीकृत विधियाँ कितने प्रकार की होती है नाम बताइए?
7. निर्धारण मापदंड कितने प्रकार का होता है नाम बताइए?
8. समाजमिति से किस चीज का पता लगाया जाता है?
9. अवलोकन से क्या तात्पर्य है?
10. संचित अभिलेख की विशेषता बताइए?
11. साक्षात्कार के कितने प्रकार होते हैं?

11.4 मार्गदर्शन तथा परामर्श में परीक्षणों का उपयोग

आप विभिन्न परीक्षणों का परामर्श तथा निर्देशन में उपयोग देखेंगे-

11.4.1 बुद्धि परीक्षणों का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग-

- बुद्धि परीक्षणों से बालकों के मानसिक स्तर के विषय में अर्थात मन्दबुद्धि, सामान्य तथा प्रतिभाशाली बुद्धि का पता चलता है।

- यह विभिन्न पाठ्यक्रम चयन करने में सहायता करता है।
- इस से निदान कार्य करना सरल हो जाता है।

11.4.2 व्यक्तित्व परीक्षणों का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग

व्यक्तित्व परीक्षण की सहायता से हम प्रत्येक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विषय में पुरी जानकारी हासिल कर उनका मार्गदर्शन एवं परामर्श दे सकते हैं।

11.4.3 रूचि परीक्षण का परामर्श एवं मार्गदर्शन में उपयोग

रूचि परीक्षण की सहायता से बालक के रूचि से अवगत होकर परामर्शदाता बालक को उसके रूचि वाले विषय या व्यवसाय के चयन में मदद कर सकता है। रूचि परीक्षण परामर्श तथा निर्देशन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है।

11.4.4 अभिक्षमता परीक्षणों का परामर्श एवं मार्गदर्शन में उपयोग

अभिक्षमता परीक्षणों के माध्यम से हम बालक के अन्दर निहित अभिक्षमता के विषय में सूचनाएँ एकत्रित कर सकते हैं। ये सूचनाएँ परामर्शदाता को परामर्श एवं निर्देशन देने में सहायता प्रदान करती है। इन परीक्षणों के माध्यम से बालक को उनके अन्दर निहित क्षमताओं से परिचित कराया जाता है।

11.4.5 निर्धारण मापदंड का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोगिता

इस विधि से निर्देशन प्रक्रिया में परामर्शदाता को सहायता मिलती है इससे वह व्यक्ति की नियुक्ति, पदोन्नति के बारे में अनुमान लगा सकता है।

- व्यक्ति के अध्ययन की अन्य विधियों को पूरक करने में यह विधि सहायक सिद्ध हुई है।
- निर्धारण मापदंडो की सहायता से बालक को भी अभिप्रेरणा प्राप्त होती है उसे अपनी कमियों का पता चलता है और वह इन्हें सुधारने का प्रयास करता है।
- यह विधि बालकों की शैक्षिक उपलब्धियों, व्यक्तित्व के लक्षणों और व्यवहार की विशेषताओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिए उपयोगी है।

11.4.6 व्यक्ति अध्ययन का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग

- व्यक्ति अध्ययन में सारी सूचनाओं में निरन्तरता होती है। जिससे परामर्शदाता को इन तथ्यों के विषय में अध्ययन करने में सहायता मिलती है।
- व्यक्ति अध्ययन पर्याप्त तथा सही तथ्यों पर आधारित होता है। जिससे परामर्श एवं निर्देशन में सहायता मिलती है।

11.4.7 समाजमिति का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग

- समाजमिति विधि से प्राप्त जानकारी की सहायता से व्यक्ति के सामाजिक समायोजन संबंधी समस्याओं के समाधान ढुंढे जा सकते हैं।
- समाजमिति प्रविधि सामान्य रूचियों और कौशलों से युक्त व्यक्तियों के चयन में सहायक सिद्ध होती है।
- समाजमिति से बालकों में विकसित होने वाले अलोकतन्त्रीय व्यवहार को जाना जा सकता है।
- इस विधि से नेतृत्व के गुणों से युक्त व्यक्तियों की खोज की जा सकती है।

11.4.8 अवलोकन का परामर्श एवं निर्देशन में उपयोग

- व्यक्ति या बालक का अवलोकन स्वाभाविक परिस्थिति में किया जा सकता है। इससे प्राप्त आंकड़े की सहायता से परामर्शदाता, परामर्श दे सकते हैं।
- अवलोकन से व्यक्ति की भावात्मक एवं सामाजिक प्रतिक्रियाओं का अवलोकन सरलता से किया जा सकता है।
- यह विधि लचीली होती है और यह बहुत सी परिस्थितियों में प्रयुक्त किया जा सकता है जो परामर्श देने में सहायता प्रदान करता है।

11.4.9 संचित अभिलेख का परामर्श तथा निर्देशन में उपयोग

- शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के लिये बालक से संबंधित भिन्न-भिन्न प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता पड़ती है अतः परामर्शदाता को ये सभी सूचनाएँ संचित अभिलेख पत्रों के माध्यम से ही उपलब्ध कराई जाती है। इसकी सहायता से कुसमायोजित एवं पिछड़े बालको की भी सहायता की जा सकती है।
- परामर्शदाताओं को बालकों की उन विशिष्ट योग्यताओं की खोज करने में सहायता देता है जिनका विकास किया जाता है।

11.4.10 साक्षात्कार का परामर्श तथा निर्देशन में उपयोग

- साक्षात्कार से प्रार्थी को सम्पूर्ण रूप से समझा जा सकता है। साक्षात्कार से अभिवृत्तियों, संवेगो तथा विचारों आदि का अध्ययन किया जा सकता है।
- साक्षात्कार ही एक ऐसी विधि है जिसके से व्यक्ति दृष्टिकोण, भावनाओं, प्रतिक्रियाओं आदि का अध्ययन किया जा सकता है।

अभ्यास प्रश्न

12. मार्गदर्शन में परीक्षण का दो उपयोग बताइए?

11.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप यह जान चुके हैं कि बालकों के परामर्श एवं निर्देशन में किन-किन उपकरणों एवं प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इन उपकरण एवं प्रविधियों के कितने प्रकार हैं तथा इन अप्रमापीकृत तथा प्रमापीकृत प्रविधियों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। इन परीक्षणों की सहायता से हम प्रत्येक बालक के बुद्धि, व्यक्तित्व, रूचि, अभिरूचि, उपलब्धि तथा अन्य प्रकार की व्यक्तिगत एवं सामाजिक सूचनाओं को एकत्रित कर सकते हैं।

इन सूचनाओं की सहायता से परामर्शदाता प्रत्येक बालक को उसकी योग्यता तथा अभिरूचि के आधार पर सही पाठ्यक्रम तथा व्यवसाय चयन करने में सहायता करता है।

अब आप यह पूर्ण रूप से जान गये होंगे कि मार्गदर्शन तथा परामर्श में विभिन्न प्रकार के उपकरण तथा प्रविधियों का उपयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

11.6 शब्दावली

1. **प्रमापीकृत उपकरण** -ऐसा उपकरण जिसका निर्माण उपकरण हेतु निर्धारित चरणों के अनुसार किया जाता है साथ ही साथ उसकी वैधता, विश्वसनियता एवं मानक स्थापित किये जाते हैं, प्रमापीकृत उपकरण कहलाता है।
2. **समाजमिति -** समाजमिति, एक समूह के सदस्यों के बीच आपसी संबंध को मापता है।
3. **प्रश्नावली -** प्रश्नावली प्रश्नों की वह लम्बी सूची होती है जो व्यक्ति से सूचनाएं एकत्रित करने के लिये तैयार की जाती है।
4. **अवलोकन-** अवलोकन से विभिन्न प्रकार के व्यवहारों एवं क्रियाओं का विवरण प्राप्त किया जाता है।
5. **साक्षात्कार-** साक्षात्कार मूलभूत रूप से निश्चित उद्देश्य के साथ वार्तालाप।
6. **बुद्धि परीक्षण-** ऐसा परीक्षण जिस से व्यक्ति के सामान्य मानसिक ग्रहणशीलता का पता
7. चलता है।
8. **रूचि परीक्षण-** ऐसा परीक्षण जिसके से किसी व्यक्ति की पसंद, नापसंद, किसी पर ध्यान देने, आकर्षित होने तथा सन्तुष्ट होने की प्रवृत्ति को ज्ञात करते हैं।

11.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. प्रमापीकृत प्रविधियों में पांच प्रकार के परीक्षण है। बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, रूचि परीक्षण, अभियोग्यता परीक्षण, उपलब्धि परीक्षण।
2. बुद्धि के 6 सिद्धान्त है। बुद्धि परीक्षण के दो नाम इस प्रकार है-
    a. वैशलर-बैलवन बुद्धि मापनी।
    b. भाटिया बैट्री बुद्धि परीक्षण।
3. व्यक्तित्व मापने के लिए मुख्य दो प्रकार के परीक्षण हैं। रोशा मसि लक्ष्य परीक्षण तथा प्रासंगिक अन्तर्बोध परीक्षण।
4. सुपर के अनुसार रूचि चार प्रकार की होती है। अभिव्यक्त रूचियां, प्रदर्शित रूचियां, आकलित रूचियां, सूचित रूचियां
5. अभिक्षमता मापने हेतु प्रोफीसीएन्सी, क्लिरीकल मिनेसोता कार्पोरेशन क्लर्केरियल, हस्तकौशल, यांत्रिक व्यावसायिक अभिक्षमता परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है।
6. अप्रमापीकृत प्रविधियां नौ प्रकार की होती है।
    a. प्रश्नावली, आकस्मिक निरीक्षण अभिलेख, निर्धारण मापदण्ड, आत्मकथा, वयक्तिवृत्त अध्ययन, समाजमिति, अवलोकन, संचित पत्र तथा साक्षात्कार।
7. निर्धारण मापदंड 8 प्रकार होते हैं संख्यात्मक, वर्णनात्मक, पदक्रम, रेखांकित, समूह-प्रतिशत, युगल-तुलना, बलात-चयन, संचयी अंक मापदंड है।
8. समाजमिति से समाज के लोगों के आपसी संबंधों के विषय में पता लगाया जाता है।
9. अवलोकन से विभिन्न प्रकार के व्यवहारों एवं क्रियाओं का विवरण प्राप्त किया जाता है।
10. संचित अभिलेख सरल, सत्य सूचना तथा सामूहिक मूल्यांकन पर आधारित होता है।
11. साक्षात्कार चार प्रकार के होते हैं।
12. परीक्षणों की सहायता से बालक की व्यक्तिगत तथा शैक्षिक सूचनाओं को एकत्रित करते हैं।

11.8 संदर्भ ग्रन्थ

1. ओबेराय, डॉ0 सुरेश चन्द्र (2006), शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ,
2. मंगल, डॉ0 एस0 के0 एवं श्रीमती श्रुभ्रा (2003), मार्गदर्शन एवं परामर्श, आर्य बुक डिपो, मेरठ
3. गुप्ता, एस.पी. (2008), उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. सिंह, ए. के. (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
5. जायसवाल, एस.(2008), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

6. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi: Vikash Publishing House.
7. Das, B.N. (2010). Career Guidance and Counselling. Agra: Vinod Pustak Mandir
8. Kochhar, S.K, (1980) Guidance and Councelling, New Delhi: Sterling Publishers.
9. Mathur, S.S.(2012).Fundamentals of Guidance and Counselling.Agra: Vinod Pustak Mandir
10. NCERT(2008).Introduction to Guidance,Module-1, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
11. NCERT(2008).Career Information in Guidance,Module-5 and 12, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
12. Pandey, K.P. (2009).Educational and Vocational Guidance in India. Varanasi: Vishvidyalaya Prakashan.
13. Sharma, N.R. (2012). Educational and Vocational Guidance. Agra: Vinod Pustak Mandir

11.9 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

Books:-

1. Agarwal, J.C, (1985), Educational Vocational Guidance and Counseling, Doaba House, New Delhi.
2. Agrawal, R (2006). Educational, Vocational Guidance and Counselling, New Delhi, Sipra Publication.
3. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi, Vikash Publishing House.
4. Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Counselling, Rex Printing Company, Inc., Quezon City.
5. Kinra, A.K. (2008). Guidance and Counselling, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. New Delhi.
6. Jones, A.J.(19510.Principles of Guidance and Pupil Personnel work,New York,MiGraw Hill.

7. Mendoza, E. (2003), Guidance and Counselling Today. Rex Book Store (RBSI), Manila.
8. Nanda, S.K and Sharma S, (1992) Fundamentals of Guidance, Chandigarh.

Websites & E-links:-

- www.books.google.co.in
- www.education.go.ug/guidance
- http://encyclopedia2.thefreedictionary.com
- www.careersteer.com
- www.lotsofessays.com
- www.careerstrides.com
- www.wikipedia.org/wiki

11.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. परामर्श तथा निर्देशन में प्रयोग होने वाले उपकरण एवं प्रविधियों के विषय में वर्गीकरण करके व्याख्या किजिए?
2. बुद्धि परीक्षण, व्यक्तित्व परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षणों की व्याख्या किजिए तथा इनमें अन्तर स्पष्ट किजिए?
3. प्रमापीकृत तथा अप्रमापीकृत प्रविधियों में अन्तर बताइए तथा अप्रमापीकृत प्रविधि की व्याख्या किजिए?
4. विभिन्न प्रकार के परीक्षणों का निर्देशन तथा परामर्श में क्या-क्या उपयोगिता है। उदाहरण सहित व्याख्या किजिए?

इकाई 12 बुद्धि , अभिक्षमता, सृजनात्मकता , रुचि और व्यक्तित्व के परीक्षण - परीक्षणों का प्रशासन, अंकन एवं प्राप्तांकों का विवेचन

12.1 प्रस्तवाना
12.2 उद्देश्य
12.3 निर्देशन सेवा में परीक्षण : एक परिचय
12.4 बुद्धि परीक्षण
12.5 अभिक्षमता परीक्षण
12.6 सृजनात्मकता परीक्षण
12.7 रुचि परीक्षण
12.8 व्यक्तित्व परीक्षण
12.9 परीक्षणों का प्रशासन, अंकन एवं प्राप्तांकों का विवेचन
12.10 सारांश
12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
12.12 शब्दावली
12.13 संदर्भ ग्रंथ
12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना

निर्देशन एक अति व्यापक एवं अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया की शुरुआत अप्रत्यक्ष रुप से व्यक्ति के जन्म के साथ ही शुरु हो जाती है और अंत भी मृत्यु के साथ होती है। इस प्रक्रिया का उद्देश्य अति व्यापक होता है क्योंकि इसका संबंध व्यक्ति के अधिकतम संभव विकास से होता है। लेकिन ऐसा भी नहीं कहा जा सकता है कि यह सिर्फ व्यक्ति के विकास से ही संबंधित होता है। समाज भी इसके लिए उतना ही महत्व रखता है जितना कि व्यक्ति। अतः, यह सामाजिक हितों के संवर्द्धन एवं संरक्षण की चेष्टा करता है। अब चूँकि व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है और सामाजिक जीवन, व्यक्तिगत जीवन का समुच्चय है, अतः, दोनों अर्थात व्यक्ति और समाज के मध्य सुन्दर

तालमेल बनाए रखने के लिए निर्देशन प्रक्रिया का सहारा लिया जाता है। इस निर्देशन प्रक्रिया का आधार कुछ ठोस सूचनाएँ होती हैं। इन्हीं सूचनाओं के आधार पर निर्देशन कार्यक्रम क्रियान्वित किया जाता है। ये सूचनाएँ दो प्रकार की होती हैं:

1. व्यक्ति के बारे में सूचना जिसके अंतर्गत हम व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक गुणों जैसे कि स्वास्थ्य, बुद्धि, रुचि एवं मानसिक गुण जैसे कि बुद्धि, रुचि, अभिवृत्ति, अभिक्षमता सृजनात्मकता, व्यक्तित्व आदि के संदर्भ में सूचना एकत्रित करते हैं।
2. व्यक्ति के परिवेश के विषय में सूचना जिसके अंतर्गत हम उसके पारिवारिक वातावरण, पास-पड़ोस, मित्र, पूर्व विद्यालय का वातावरण, वर्तमान विद्यालय का वातावरण के संबंध में जानकारी एकत्रित करते हैं।

   उपरोक्त सूचनाएँ जो कि निर्देशन कार्यक्रम का आधार होती हैं, को एकत्रित करने के लिए विभिन्न मनोवैज्ञानिक परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। प्रस्तुत इकाई उन्हीं मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के परिचय, उनका प्रशासन एवं उन अंकों के विवेचन से संबंधित है।

12.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप-

1. निर्देशन सेवा में परीक्षण के महत्व को बता सकेंगे
2. बुद्धि परीक्षण को परिभाषित कर सकेंगे
3. बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख कर सकेंगे
4. अभिक्षमता परीक्षण को परिभाषित कर सकेंगे
5. अभिक्षमता परीक्षण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे
6. रुचि एवं सृजनात्मकता परीक्षण को परिभाषित कर सकेंगे
7. व्यक्तित्व परीक्षण को परिभाषित कर सकेंगे
8. व्यक्तित्व मापन की विभिन्न विधियों को परिभाषित कर सकेंगे
9. बुद्धि, सृजानात्मकता, रुचि, अभिक्षमता एवं व्यक्तित्व परीक्षण आदि का वर्णन कर सकेंगे
10. परीक्षण के प्रशासन, अंकन एवं प्राप्तांकों के विवेचन का अर्थ स्पष्ट कर सकेंगे

12.3 निर्देशन सेवा में परीक्षण: एक परिचय

निर्देशन सेवा एक अति महत्वपूर्ण कार्यक्रम है जिसके कुछ ठोस आधार होते हैं। ये आधार निर्देशन सेवा प्राप्त करनेवाले व्यक्ति एवं उसके परिवेश से संबंधित कुछ सूचनाएँ होती हैं। ये सूचनाएँ वास्तव

में व्यक्ति के शारीरिक एवं मानसिक गुणों से संबंधित होती हैं। इन सूचनाओं में से कुछ मुख्य सूचनाओं को नीचे सूचीबद्ध किया गया है:

i. पारिवारिक पृष्ठभूमि
ii. विद्यालय अभिलेख
iii. बुद्धि का स्तर
iv. रुचियाँ
v. अभिक्षमता
vi. अभिवृत्ति
vii. सृजनात्मकता
viii. व्यक्तित्व

अब चूँकि निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य हीं अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं और उपरोक्त सूचनाएँ निर्देशन कार्यक्रम को आधार प्रदान करती हैं, फलस्वरुप, ये सूचनाएँ भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं और इन्हें एकत्रित करने के लिए मनोवैज्ञानिक विधियों की आवश्यकता पड़ती है। यहीं से निर्देशन कार्यक्रम में परीक्षणों की शुरुआत होती है।

इस इकाई में निर्देशन सेवा में प्रयुक्त किए जानेवाले विभिन्न परीक्षणों में से 5 मुख्य परीक्षणों का वर्णन किया गया है जो निम्नलिखित हैं:

i. बुद्धि परीक्षण
ii. अभिक्षमता परीक्षण
iii. सृजनात्मकता परीक्षण
iv. रुचि परीक्षण
v. व्यक्तित्व परीक्षण

12.4 बुद्धि परीक्षण

बुद्धि अति प्राचीनकाल से ही मनुष्य के मन की उलझन रही है और इसको समझने के निरंतर प्रयास किए जाते रहे हैं। मनोवैज्ञानिकों द्वारा इसी क्रम में बुद्धि की अनेक परिभाषाएँ दी गई हैं एवं अनेक सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं। इनमें स्टर्न द्वारा दी गई परिभाषा "बुद्धि नवीन परिस्थितियों में समायोजन की योग्यता है" लगभग विद्वानों द्वारा मानी जाती है। बुद्धि के स्वरुप को स्पष्ट करने के बाद बुद्धि से संबंधित जो दूसरा प्रश्न सामने आया वो ये था कि क्यों कि एक हीं प्रकार के निर्देश पाने के बाद कुछ व्यक्ति शीघ्रता से सीखते हैं और कुछ मंद गति से, कुछ कम सीखते हैं, कुछ ज़्यादा अर्थात क्या बुद्धि भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न मात्रा में होती है ? और यहीं से बुद्धि को मापने की शुरुआत होती है जिसके लिए बुद्धि परीक्षण का निर्माण शुरु हुआ।

बुद्धि परीक्षण का इतिहास

बुद्धि परीक्षण का इतिहास 19वीं शत्बादी के उत्तरार्द्ध से माना जा सकता है, जब लगभग विश्व के विभिन्न देशों में इसके लिए प्रयास शुरु किए गए। इस दिशा में सर्वप्रथम प्रारंभिक प्रयास फ्रांस में इटार्ड ने किया और बुद्धि परीक्षणों के वैज्ञानिक स्वरुप का विकास भी फ्रांस में हीं हुआ। फ्रांस के अल्फ्रेड बिने ने बुद्धि को वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित रुप से मापने का प्रयास किया और सन् 1905 ई0 में बिने ने साइमन के सहयोग से पहले बुद्धि परीक्षण 'बिने – साइमन मापनी' का विकास किया। इस मापनी का मुख्य उद्देश्य पेरिस में अध्ययन कर रहे 3-16 वर्ष तक के बालकों के बुद्धि का मापन करना था। पुनः, इस मापनी में सन् 1908 में संशोधन कर 'संशोधित बिने-साइमन मापनी' का प्रकाशन किया। इस मापनी में पुनः एक बार सन् 1911 में संशोधन किया। सन् 1911 के बाद विश्व के विभिन्न देशों में इस मापनी का संशोधन एवं अनुकूलन होने लगा। जैसे- सन् 1913 में जर्मनी में बोबरटागा ने इसका जर्मन संशोधन प्रकाशित किया। टर्मन ने सन् 1916 में अमेरिका में इसका अमेरिका की परिस्थिति के लिए अनुकूलन किया। भारत में उत्तरप्रदेश मनोविज्ञानशाला ने इसका अपने देश की परिस्थिति के अनुकूल संशोधन एवं अनुकूलन किया। इस प्रकार बुद्धि परीक्षण के विकास के कार्य को गति मिली। बिने के परीक्षण के संशोधन एवं अनुकूलन के अलावा अन्य बुद्धि-परीक्षण भी विकसित हुए। जैसे मोरिल-पामर मापनी, मिनिसोटा पूर्व- विद्यालय मापनी, वान का चित्र शब्दावली परीक्षण, गुडएनफ का ड्रा ए मैन परीक्षण, वेश्लर वयस्क बुद्धि मापनी आदि। भारतीय परिप्रेक्ष्य में बुद्धि परीक्षण के विकास के क्षेत्र में सर्वप्रथम एफ0 जी0 कॉलेज, लाहौर के प्रिंसिपल डॉ0 सी0 एच0 राइस ने सन् 1922 ई0 में किया। उन्होंने बिने मापनी का हिन्दुस्तानी में अनुकूलन कर 'हिन्दुस्तानी बिने पर्फॉरमेंस पॉइण्ट स्केल' का नाम दिया। पुनः मुम्बई के कामथ ने सन् 1935 में भारतीयों परिस्थितियों के अनुकूल बिने मापनी का संशोधन किया तथा इसे बिने परीक्षण का बंबई-कर्नाटक संशोधन नाम दिया। भारत में बुद्धि परीक्षण के विकास कार्य की गति में अब तक काफी तीव्रता आ चुकी थी और सन् 1955 तक गुजराती, कन्नड़, पंजाबी, तेलगु, उड़िया तथा बंगाली भाषा में बुद्धि परीक्षणों का निर्माण हो चुका था। 1969 में डॉ एम0 सी0 जोशी ने सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण का विकास किया। इसके अलावा भी कई अन्य बुद्धि परीक्षणों का विकास हुआ जिसमें डॉ0 सी0 एम भाटिया द्वार सन् 1955 में विकसित भाटिया बैटरी काफी प्रसिद्ध रहा है।

अभ्यास प्रश्न

1. स्टर्न द्वारा दी गई बुद्धि की परिभाषा को लिखें।
2. बिने ने साइमन के सहयोग से पहले बुद्धि परीक्षण 'बिने-साइमन मापनी' का विकास________ किया।
3. टर्मन ने सन्_________ में 'बिने – साइमन मापनी' का अमेरिका में, अमेरिका की परिस्थिति के लिए अनुकूलन किया।

4. डॉ0 सी0 एच0 राइस ने सन् 1922 ई0 में बिने मापनी का हिन्दुस्तानी में अनुकूलन कर ________नाम दिया।
5. डॉ एम0 सी0 जोशी ने सामान्य मानसिक योग्यता परीक्षण का विकास________ में किया।
6. डॉ0 सी0 एम भाटिया द्वार सन्________ में________ के नाम से एक बुद्धि परीक्षण का विकास किया गया।

बुद्धि परीक्षणों के प्रकार

बुद्धि परीक्षणों को कई आधारों पर वर्गीकृत किया जाता है जिनमें से कुछ प्रमुख आधारों एवं उन आधार पर बुद्धि परीक्षण के प्रकारों का वर्णन रेखाचित्र संख्या 1 से प्रदर्शित किया गया है।

बुद्धि परीक्षण के वर्गीकरण का आधार

प्रशासन के आधार पर	• व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण • सामूहिक बुद्धि परीक्षण
माध्यम के आधार पर	• पेपर-पेंसिल बुद्धि परीक्षण • निष्पादन बुद्धि परीक्षण
भाषा एवं विषयवस्तु के आधार पर	• शाब्दिक बुद्धि परीक्षण • अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
संरुप के आधार पर	• गति मापक बुद्धि परीक्षण • शक्ति मापक बुद्धि परीक्षण

रेखाचित्र संख्या –1

i. **व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण** – इस प्रकार के बुद्धि परीक्षण के माध्यम से एक समय में एक हीं व्यक्ति के बुद्धि का मापन किया जा सकता है। जैसे- गुड एनफ का ड्रा ए मैन टेस्ट।

ii. **सामूहिक बुद्धि परीक्षण** – जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, सामूहिक बुद्धि परीक्षण से आशय है कि इस प्रकार के परीक्षणों का प्रशासन एक समय में एक से अधिक व्यक्तियों के समूह पर किया जाता है। जैसे- जोशी का मानसिक दक्षता परीक्षण

iii. **शाब्दिक बुद्धि परीक्षण** – जिन परीक्षणों के पदों के निर्माण में एवं उस पर प्रयोज्यों की अनुक्रिया लेने में भाषा का प्रयोग किया जाता है, उसे शाब्दिक परीक्षण कहते हैं। जोशी के मानसिक दक्षता परीक्षण को इस श्रेणी में भी रखा जाता है।

iv. **अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण** – इस प्रकार के परीक्षण में भाषा का प्रयोग नहीं किया जाता है बल्कि चित्रों एवं संकेत आदि का प्रयोग किया जाता है।

v. **पेपर – पेंसिल परीक्षण** – जिन परीक्षणों के प्रशासन के लिए पेपर एवं पेंसिल की आवश्यकता पड़ती है, उन्हें पेपर-पेंसिल परीक्षण कहते हैं। सारे शाब्दिक परीक्षण इसी श्रेणी में आते हैं

vi. **निष्पादन बुद्धि परीक्षण-** यह अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण के ही विशेष रुप होते हैं। इस प्रकार के परीक्षण में प्रयोज्य से समस्यात्मक अथवा व्यावहारिक कार्य करवाकर उसके बुद्धि का मापन किया जाता है।

vii. **गति बुद्धि परीक्षण** – जब परीक्षण में समय सीमा और प्रश्नों की संख्या निश्चित कर दी जाती है और प्रयोज्य को यह निर्देश दिया जाता है कि आपको अमूक समय में अमूक संख्या में प्रश्न हल करने हैं तो वह गति परीक्षण कहलाता है।

viii. **शक्ति परीक्षण** – जब परीक्षण में पदों को कठिनाई स्तर के आधार पर सरल से कठिन की ओर व्यवस्थित किया जाता है और यह जाँचने की कोशीश की जाती है कि प्रयोज्य अधिकतम किस कठिनाई स्तर तक के प्रश्नों को हल कर पा रहा है तो इसे शक्ति परीक्षण कहते हैं।

बुद्धिलब्धि

बुद्धिलब्धि से आशय बालक के मानसिक एवं वास्तविक आयु के अनुपात से होता है। इस संप्रत्यय का प्रतिपादन स्टर्न एवं टर्मन द्वारा किया गया। बुद्धिलब्धि ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है:

मानसिक आयु

बुद्धिलब्धि = -------------- x 100

वास्तविक आयु

यहाँ मानसिक आयु से आशय उस आयु से है, जिस आयु स्तर तक का मानसिक कार्य वह बालक कर लेता है या यूँ कहें कि जिस आयु स्तर के प्रश्नों को वह हल कर लेता है। उदाहराणार्थ यदि एक बालक की वास्तविक आयु 10 वर्ष की है लेकिन वह 12 वर्ष की आयु के बालक के लिए निर्धारित सारे प्रश्न हल कर लेता है तो उसकी मानसिक आयु 12 वर्ष की होगी। वास्तविक आयु से आशय बालक के जन्म के समय से लेकर परीक्षण लिए जाने तक की अवधि से होता है।

अभ्यास प्रश्न

7. बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों को सूचीबद्ध करें।

12.5 अभिक्षमता परीक्षण

'अभिक्षमता शब्द अंग्रेजी भाषा के शब्द 'एप्टिट्युड'(Aptitude) का हिन्दी रुपांतर है जो स्वयं ग्रीक भाषा के 'एप्टोस' शब्द से बना है जिसका अर्थ होता है 'फिटेड फॉर'(Fitted for) अर्थात 'उपयुक्त'। अति साधारण शब्दों में, किसी एक क्षेत्र या समूह में व्यक्ति की कार्यकुशलता की विशिष्ट योग्यता अथवा विशिष्ट क्षमता अभिक्षमता कहलाती है और इस क्षमता का पता लगाने वाले परीक्षणों को अभिक्षमता परीक्षण कहा जाता है।

भारत में अभिक्षमता परीक्षण का इतिहास

यूँ तो अभिक्षमता परीक्षण के विकास का का कार्य भारत में बीसवीं सदी के तीसरे दशक से शुरु हो गया था लेकिन इस कार्य की गति में सन् 1950 के बाद से उल्लेखनीय वृद्धि हुई। बडोदा के एम0 वी0 बुच ने 1960 में 'सोशल इण्टेलीजेंस अभिक्षमता परीक्षण' की रचना की। एम0 एम0 शाह ने 1962 में माध्यमिक विद्यालयों के लिए अभिक्षमता परीक्षण बनाया तथा जबलपुर के एन0 सी0 राव ने 1962 में डिफरेंसियल अभिक्षमता परीक्षण माला का मानकीकरण किया। देहली के ए0 एन0 शर्मा ने सन् 1963 में यांत्रिक अभिक्षमता परीक्षण माला का मानकीकरण किया। दबे, 1964 ने विश्वविद्यालय स्तर पर एक वैज्ञानिक अभिक्षमता परीक्षण का विकास किया। देहली के जे0 एन0 ओझा ने 1965 में अमेरिकन डी0 ए0 टी0 का हाइस्कूल के छात्रों पर हिन्दी अनुकूलन किया। कलकत्ता की मायादेवी ने 1969 में इंजीनियरों के चयन हेतु एक इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण की रचना की। अहमदाबाद के आर0 पी0 शाह ने 1971 में लड़के तथा लड़कियों के लिए न्युमेरिकल एप्टिट्युड टेस्ट का मानकीकरण का कार्य सम्पन्न किया। पटना के आर0 पी0 सिंह एवं एस0 एन0 शर्मा ने 1974 में अध्ययन अभिक्षमता परीक्षणमाला की रचना एवं मानकीकरण किया।

रुड़की के स्वर्ण प्रताप ने सन् 1981 में इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षणमाला के दो प्रारुपों को प्रकाशित किया। इस प्रकार अभिक्षमता परीक्षण के विकास के कार्य में निरंतर प्रगति हुई।

अभिक्षमता परीक्षण के प्रकार

अभिक्षमता परीक्षण के मुख्य रुप से दो भागों मे बाँटा जा सकता है:

1. **सामान्य या विभेद अभिक्षमता परीक्षण** – जब एक ही परीक्षण में कई उप परीक्षण होते हैं और प्रत्येक उप परीक्षण किसी न किसी विशिष्ट अभिक्षमता का मापन करते हैं तब इसे सामान्य या विभेद अभिक्षमता परीक्षण कहते हैं।
2. **विशिष्ट क्षेत्रों के अभिक्षमता परीक्षण** – शिक्षा एवं व्यवसाय के विशिष्ट क्षेत्रों जैसे कि कला, संगीत, चिकित्सा, कानून, चित्रकारी आदि संबंधी क्षमताओं का मापन करने वाले अभिक्षमता परीक्षणों को विशिष्ट क्षेत्रों के अभिक्षमता परीक्षण कहा जाता है

अभ्यास प्रश्न

8. स्तंभ 'अ' को स्तंभ 'ब' से मिलाएँ

स्तंभ 'अ'	**स्तंभ 'ब'**
1. सोशल इण्टेलीजेंस अभिक्षमता परीक्षण' की रचना	(अ) 1969
2. डिफरेंसियल अभिक्षमता परीक्षण माला का मानकीकरण	(ब) 1971
3. मायादेवी द्वारा इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षण की रचना	(स) 1981
4. आर0 पी0 शाह द्वारा न्युमेरिकल एप्टिट्यूड टेस्ट का मानकीकरण	(द) 1960
5. स्वर्ण प्रताप द्वारा इंजीनियरिंग अभिक्षमता परीक्षणमाला के दो प्रारुपों का प्रकाशन	(य)1962

12.6 सृजनात्मकता परीक्षण

सृजनात्मकता किसी समस्या के समाधान में नवीनतम विधियों का सहारा लेते हुए व्यक्ति के रचनात्मक कार्यों में मौलिकता एवं प्रवाह बनाए रखने की योग्यता का नाम है। यह प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाती है लेकिन इसकी मात्रा एवं क्षेत्र प्रत्येक व्यक्ति में अलग-अलग होता है। व्यक्ति विशेष में

इस योग्यता की उपस्थिति, मात्रा एवं क्षेत्र का पता लगाने वाले परीक्षण को सृजनात्मक परीक्षण कहा जाता है।

सृजनात्मकता परीक्षण का इतिहास

सृजनात्मकता परीक्षण 20वीं शताब्दी के चौथे दशक से शुरु होता है। थर्स्टन(1938), जे0 एल0 हॉलेण्ड(1960), जे0 पी0 गिलफोर्ड (1961), टॉरेंस(1968) आदि ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान दिए। इस क्षेत्र में गिलफोर्ड और टॉरेंस का परीक्षण बहुत लोकप्रिय है। भारतवर्ष में इस क्षेत्र में सी0 आर0 परमेश(1971) ने वालेश एवं कोगन के परीक्षण का भारतीय अनुकूलन कर अपना योगदान दिया है। श्रीमती उषा खेर ने 1970 में एक टेस्ट बैटरी का विकास एवं मानकीकरण किया जिसका आधार गिलफोर्ड का परीक्षण था। बी0 के0 पासी ने सन् 1972 में सृजनात्मकता के परीक्षण के लिए हिन्दी भाषा एवं आंग्ल भाषा में दो अलग-अलग परीक्षणों का निर्माण किया। दिल्ली के प्रो0 बाकर मेंहदी ने सन् 1973 में सृजनात्मक चिंतन के मापन हेतु शब्दिक एवं अशाब्दिक दो परीक्षणों का निर्माण एवं प्रमापीकरण किया है। इस प्रकार भारत वर्ष में सृजनात्मकता परीक्षण के विकास का कार्य निरंतर प्रगति के पथ पर अग्रसर होता गया।

12.7 रुचि परीक्षण

रुचि से तात्पर्य किसी व्यक्ति, वस्तु या तथ्य को पसंद करने, उसके प्रति ध्यान केन्द्रित करने तथा उससे संतुष्टि पाने की प्रवृत्ति है। यह जन्मजात होने के साथ-साथ अर्जित भी होता है एवं इसका स्वरुप आयु में परिवर्तन के साथ-साथ बदलते रहता है। रुचि का स्वरुप परिवर्धन के सफर से भी गुजरता है। व्यक्ति विशेष में उपस्थित रुचि के क्षेत्र एवं उसकी मात्रा का पता एवं अनुमान लगाने के लिए परीक्षणों की आवश्यकता पड़ी। ऐसे परीक्षण ‘रुचि परीक्षण’ के रुप में परिभाषित किए गए।

रुचि परीक्षण का इतिहास

रुचि परीक्षण की शुरुआत माइनर(1918) के वैज्ञानिक अध्ययन से मानी जाती है जिसने रुचियों के मापन हेतु एक प्रपत्र तैयार किया था। मूर ने 1921 ई0 में इंजीनियरों के सामाजिक एवं यांत्रिक रुचियों के मापन के लिए एक प्रपत्र का निर्माण किया। कार्नहाउजर ने सन् 1927 ई0 में एक ‘जेनरल इंट्रेस्ट इंवेंट्री’ का विकास किया। कूडर ने सन् 1938 ई0 में ‘कूडर प्रिफरेंस रिकार्ड’ को निर्मित किया। इसका संशोधन सन् 1951 ई0 में हुआ। तब से आज तक यह एक उपयोगी रुचि प्रपत्र रहा है। सन् 1953 ई0 में थर्स्टन ने कारक विश्लेषण पर आधारित एक रुचि प्रपत्र की रचना की। जीस्ट द्वारा अशिक्षित व्यक्तियों की रुचियों के मापन के लिए एक अति महत्वपूर्ण तथा प्रचलित रुचि प्रपत्र ‘जीस्ट पिक्चर इंट्रेस्ट इंवेंट्री’ की रचना की गई। भारत में, इस क्षेत्र में सर्वप्रथम इलाहाबाद ब्यूरो द्वारा कर्य किया गया। ब्यूरो ने सन् 1956 ई0 में ‘कूडर रुचि प्रपत्र’ के आधार पर एक ‘व्यावसायिक रुचि

प्रपत्र' का निर्माण किया। यह एक सामूहिक रुचि परीक्षण है। फिर के0 आर0 चैधरी द्वारा सन् 1957 ई0 में 'वर्नन- रे चौधरी रुचि सर्वेक्षण' की रचना की। एस0 बी0 लाल भारद्वाज ने एक रुचि प्रपत्र का निर्माण किया जो दो भागों में विभक्त है तथा व्यावसायिक एवं अव्यावसायिक रुचियों का मापन करता है। आर0 पी0 सिंह (1969), मीरा जोशी तथा जगदीश पांडे (1969), लाभ सिंह (1969) ने भी रुचि परीक्षण का निर्माण किया तथा मानकीकरण किया। सन् 1975 ई0 में देहरादून की उषा रानी तथा एस0 पी0 कुलश्रेष्ठ ने आई0 एस0 पी0 टी0 आई0 संरचित व्यावसायिक रुचि परीक्षण की रचना की गई। गोरखपुर के एस0 के0 सिंह तथा बी0 वी0 पांडे (1988) ने 'राजनैतिक रुचि मापनी' का भारतीय अनुकूलन किया। दिल्ली की निर्मला गुप्ता ने क्राइस्ट की केरियर परिपक्वता मापनी का भारतीय अनुकूलन कर रुचि परीक्षण के विकास के क्षेत्र में अपना अनूठा योगदान दिया। इस प्रकार रुचि परीक्षण के विकास का कर्य उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर अग्रसर होता गया।

रुचि परीक्षण के प्रकार

रुचि परीक्षणों के मुख्यत: दो प्रकार होते हैं-

सामान्य या अव्यावसायिक परीक्षण – व्यक्ति के सामान्य जीवन एवं शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी रुचियों का मापन करने के लिए प्रयोग में लाए जानेवाले परीक्षण को सामान्य या अव्यावसायिक रुचि परीक्षण कहते हैं। इसमें प्रायः जाँच सूची एवं प्रश्नावली शामिल होते हैं।

व्यावसायिक रुचि परीक्षण – व्यक्ति के व्यावसायिक रुचि को मापने वाले परीक्षण को व्यावसायिक रुचि परीक्षण कहते हैं।

12.8 व्यक्तित्व परीक्षण

व्यक्तित्व को व्यक्ति के आंतरिक एवं वाह्य गुणों के एक जटिल समग्र के रुप में परिभाषित किया जात है जिनका एक विशिष्ट एवं गतिशील संगठन होता है तथा जो अपने वातवरण के प्रति अद्वितीय व्यवहार करते हैं। अब चूँकि वातावरण के प्रति अपूर्व या अद्वितीय व्यवहार व्यक्तित्व की एक प्रमुख विशेषता है फलस्वरुप व्यक्ति के व्यवहार के पीछे के कारणों को जानने के लिए व्यक्तित्व के मापन की आवश्यकता उत्पन्न हुई और इस आवश्यकता ने व्यक्तित्व परीक्षण को जन्म दिया।

व्यक्तित्व परीक्षन का इतिहास

व्यक्तित्व मापन का कार्य सर्वप्रथम फ्रांसिस गाल्टन द्वार सन् 1880 ई0 में किया गया था। उन्होंने व्यक्तित्व मापन के लिए प्रश्नावली विधि का प्रयोग किया था। लेकिन वास्तविक रुप में व्यक्तित्व सूची का जन्म सन् 1918 ई0 में वुडवर्थ के द्वारा हुआ जिसने सैनिकों की संवेगात्मक अस्थिरता ज्ञात करने के लिए 'व्यक्तित्व प्रदत्त सूची' की रचना की। इसके बाद प्रैसी द्वारा सन् 1919 ई0 में 'एक कातने परीक्षण की रचना की गई। फ्रेड एवं हेडब्रेडर (1926) ने युंग के व्यक्तित्व वर्गीकरण सिद्धांत

के आधार पर एक 'अंतर्मुखी-बहिर्मुखी' परीक्षण की रचना की। आलपोर्ट एवं आलपोर्ट ने सन् 1928 ई0 में 'प्रभावित अधीनता परीक्षण' की रचना की थी जो मुख्यतः स्नायुदौर्बल्यता का पता लगाना था। रोजर्स ने सन् 1913 ई0 में 'रोजर्स समायोजन अनुसूची' के नाम से एक व्यक्तित्व परीक्षण की रचना की। इस प्रकार व्यक्तित्व मापन के क्षेत्र में निरंतर कार्य होते गए और यह क्षेत्र प्रगति के पथ पर अग्रसर होता गया। भारत में इस क्षेत्र में कार्य बींसवीं शत्बादी के उत्तरार्द्ध से शुरु हो गए थे लेकिन इस क्षेत्र में हम अभी भी बहुत पीछड़े हुए हैं। इसके पीछे दो कारण हैं। प्रथम कार्य की संख्या बहुत कम है तथा द्वितीय कार्य में मौलिकता का अभाव है। जो भी कार्य हुए हैं उनमें से अधिकांश विदेशों में निर्मित परीक्षणों के भारतीय अनुकूलन हैं। अतः, इस क्षेत्र में अभी और प्रयास की आवश्यकता है।

व्यक्तित्व मापन की विधियाँ

व्यक्तित्व मापन की कुछ प्रमुख विधियाँ निम्नलिखित हैं:

i. **प्रक्षेपण विधि** – प्रक्षेपण विधि से आशय व्यक्तित्व मापन की उन विधियों से हैं जिनमें प्रयोज्य के प्रत्युत्तरों के आधार पर प्रयोज्य के मौलिक व्यक्तित्व संरचना तथा अभिप्रेरणाओं का प्रकाशन होता है। कुछ प्रमुख प्रक्षेपी परीक्षणों के नाम निम्नलिखित हैं:
   रोर्शा स्याही धब्बा परीक्षण, टी0 ए0 टी0 (थिमैटिक एपर्स्पेशन टेस्ट), सी0 ए0 टी0 (चिल्ड्रेन एपर्स्पेशन टेस्ट)

ii. **व्यक्तित्व अनुसूची** – प्रत्यक्ष कथनों एवं उससे संबंधित विकल्पों की एक सूची होती है।

iii. **साक्षात्कार विधि** – साक्षात्कार में बातों का आदन-प्रदान होता है जिसमें साक्षात्कार कर्ता अन्य व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह से सूचना प्राप्त करता है। इसमें प्रायः आमने-सामने की स्थिति होती है, लेकिन ऐसा ही होगा यह आवश्यक नहीं है।

iv. **निरीक्षण विधि** – निरीक्षण नेत्रों के द्वारा सावधानी पूर्वक किए गए अध्ययन को कहते हैं।

v. **व्यक्तिगत इतिहास विधि** – व्यक्तित्व के गहन अध्ययन के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें किसी एक व्यक्ति का ही अध्ययन एक बार में किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

9. टी0 ए0 टी0 का शब्द विस्तार करें।
10. रुचि परीक्षण कितने प्रकार के होते हैं?
11. 'अंतर्मुखी-बहिर्मुखी' परीक्षण की रचना किसने एवं कब की?
12. सी0 ए0 टी0 का शब्द विस्तार करें।

13. सन् 1988 में गोरखपुर के किन दो व्यक्तियों ने 'राजनैतिक रुचि मापनी' का भारतीय अनुकूलन किया

12.9 परीक्षण का प्रशासन, अंकन एवं प्राप्तांको का विवेचन

परीक्षण का प्रशासन – परीक्षण के प्रशासन से आशय परीक्षण को प्रयोज्य अर्थात व्यक्ति या प्रयोज्यों के समूह को वितरित कर उनसे वापस इकट्ठा करने तक की सारी प्रक्रिया को कहते हैं। इसमें परीक्षण को वितरित करना, प्रयोज्यों को निर्देश देना, उन्हें प्रतिक्रिया करने का समय देना एवं प्रतिक्रिया दे लेने के बाद परीक्षण की प्रश्न पुस्तिका को वापस संग्रहित करना शामिल होता है।

परीक्षण का अंकन – परीक्षण के प्रशासन के बाद अंकन की बारी होती है। अंकन की प्रक्रिया के अंतर्गत परीक्षण के पदो कों परीक्षण निर्माणकर्ता द्वारा पूर्व निर्धारित नियम के अनुसार अंक प्रदान करते हैं।

प्राप्तांको का विवेचन – प्राप्तांको के विवेचन से आशय है कि प्राप्तांक क्या बता रहे हैं और ऐसा हीं क्यों बता रहे हैं, का अनुमान लगाना। इस प्रक्रिया से पहले प्राप्तांको का सांख्यिकीय विश्लेषण, अध्ययन के उद्देश्य के अनुरुप किया जाता है और फिर विश्लेषण से प्राप्त निष्कर्ष के आधार पर विवेचन की क्रिया सम्पन्न की जाती है।

12.10 सारांश

प्रस्तुत इकाई में निर्देशन सेवा में परीक्षणों की आवश्यकता एवं उपयोगिता पर बल दिया गया है। साथ हीं निर्देशन सेवा के लिए एकत्र की जानेवाली महत्वपूर्ण सूचनाओं के लिए आवश्यक, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों जैसे कि बुद्धि परीक्षण, रुचि परीक्षण, अभिक्षमता परीक्षण आदि की चर्चा भी की गई है। इन विभिन्न मानसिक गुणों के मापन के इतिहास के विषय में जानकारी भी प्रदान की गई है। इन मानसिक गुणों के मापन के लिए निर्मित परीक्षणों के प्रकार की भी अति सुन्दर व्याख्या इस अध्याय में प्रस्तुत की गई है। इकाई के अंत में परीक्षणों के प्रशासन, अंकन एवं प्राप्तांको के विवेचन के अर्थ को सरल शब्दों में स्पष्ट किया गया है। यह इकाई निर्देशन सेवा से जुड़े व्यक्ति, शिक्षा शास्त्र एवं निर्देशन एवं परामर्शन पाठ्यक्रम के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों के लिए अति उपयोगी है।

12.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. स्टर्न द्वारा दी गई परिभाषा "बुद्धि नवीन परिस्थितियों में समायोजन की योग्यता है"
2. **1905**

3. **1916**
4. 'हिन्दुस्तानी बिने पर्फॉरमेंस पॉइण्ट स्केल'
5. 1969
6. 1955
7. व्यक्तिगत बुद्धि परीक्षण
   सामूहिक बुद्धि परीक्षण
   शाब्दिक बुद्धि परीक्षण
   अशाब्दिक बुद्धि परीक्षण
   पेपर -पेंसिल परीक्षण
   निष्पादन बुद्धि परीक्षण
   गति बुद्धि परीक्षण
   शक्ति परीक्षण
8. (1) – द
   (2) – य
   (3) – अ
   (4) – ब
   (5) – स
9. थिमैटिक एपर्स्पेशन टेस्ट
10. 2
11. फ्रेड एवं हेडब्रेडर, 1926
12. चिल्ड्रेन एपर्स्पेशन टेस्ट
13. एस0 के0 सिंह तथा बी0 वी0 पांडे

12.12 संदर्भ ग्रंथ

1. Cronback, Lee J. (1972). Essentials of Psychology Testing. New York: Harper and Row.
2. Ebel, R.L. (1979). Measuring Educational Achievement. Englewood Cliffs, N.J. : Prentice-Hall.
3. Freeman, Frank, S. (1971). Theory and Practice of Psychological Testing. New Delhi :Oxford & IBH Publishing Co. Pvt. Ltd.
4. Gupta, S.P. (2005). Modern Measurement and Evaluation. Allahabad, Sharada Pustaka Bhavana.

5. Super, D.E. & Crities, J.O. (1965). Appraising Vocational Fitness by Means of Psychological Tests. New York : Harper
6. भार्गव, महेश. आधुनिक मनोवैज्ञानिक परीक्षण + मापन. आगरा, एच0 पी0 भार्गव बुक हाउस।

12.13 निबंधात्मक प्रश्न

1. निर्देशन कार्यक्रम के लिए कौन- कौन सी सूचनाएँ आवश्यक होती हैं? उन्हें सूचीबद्ध करें।
2. बुद्धि परीक्षण से आप क्या समझते हैं? बुद्धि परीक्षण के इतिहास पर एक संक्षिप्त निबंध लिखें।
3. बुद्धि परीक्षण के वर्गीकरण के विभिन्न आधार कौन –कौन से हैं? उनका रेखाचित्रीय प्रदर्शन करें।
4. बुद्धि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों का संक्षिप्त वर्णन करें।
5. अभिक्षमता परीक्षण पर एक संक्षिप्त निबंध लिखें।
6. सृजनात्मकता परीक्षण के इतिहास का एक संक्षिप्त वर्णन करें।
7. रुचि परीक्षण का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके इतिहास पर प्रकाश डालें।
8. रुचि परीक्षण के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।
9. व्यक्तित्व परीक्षण से आप क्या समझते हैं।
10. व्यक्तित्व परीक्षण की विभिन्न विधियों का वर्णन करें।

इकाई-13 निर्देशन कार्यक्रम का संगठन-शिक्षा के विभिन्न स्तर पर निर्देशन सेवाओं का आयोजन

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 मार्गदर्शन कार्यक्रम का संगठन
13.4 शिक्षा के विभिन्न स्तर पर मार्गदर्शन अथवा निर्देशन सेवाओं का आयोजन
13.4.1 प्राथमिक स्तर पर आयोजन
13.4.2 पूर्व माध्यमिक स्तर पर आयोजन
13.4.3 निम्न माध्यमिक स्तर पर आयोजन
13.4.4 उच्च माध्यमिक स्तर पर आयोजन
13.4.5 उच्च शिक्षा स्तर पर आयोजन
13.5 सारांश
13.6 शब्दावली
13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
13.8 संदर्भ ग्रंथ
13.9 सहायक उपयोगी पाठ्य सामाग्री
13.10 निबंधात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना

भारत में निर्देशन कार्यक्रम के संगठन तथा आयोजन का प्रारम्भ एक शैक्षिक विषय के रूप में किया गया। आप को यह ज्ञात हो कि कलकता विश्वविद्यालय को सन् 1938 में निर्देशन को अनुप्रयुक्त मनोविज्ञान विभाग के अनुभाग के रूप में शुरू करने का श्रेय प्राप्त है। इस अनुभाग का मुख्य उद्देश्य था, शैक्षिक तथा व्यावसायिक निर्देशन के क्षेत्र में अनुसन्धान करना। भारत में निर्देशन को आज भी अयायित संप्रत्यय माना जाता है। आपको यह बता दें कि सन् 1947 में उत्तर प्रदेश सरकार ने मनोवैज्ञानिक ब्यूरों खोला तथा उसे मान्यता मिली तत्पश्चात् वराणसी, लखनऊ, मेरठ, बरेली तथा कानपर में भी जिला स्तर के निर्देशन ब्यूरो खोले गये। उत्तर प्रदेश सरकार के पश्चात महाराष्ट्र सरकार

ने सरकारी तौर पर स्कूल निर्देशन कार्यक्रम को मान्यता प्रदान की तथा सन् 1950 ई0 में बम्बई का व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरों खोला गया तथा 1957 में इसका नाम व्यावसायिक निर्देशन इंस्टीच्यूट, बम्बई रखा गया।

अतः इसी क्रम में आपको बताते चलतेहैं कि सन् 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग ने भी शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन पर अत्यधिक बल दिया तथा इस आयोग ने केन्द्रीय और राज्य स्तर पर निर्देशन ब्यूरों खोलने का सुझाव दिया। जो पूरे देश में निर्देशन गतिविधियो में समन्वय स्थापित करेंगे। सन् 1954 में केन्द्रीय शैक्षिक और व्यावसायिक निर्देशन ब्यूरों की स्थापना हुई इसे शिक्षा मत्रालय नई दिल्ली में खोला गया था। तथा अब ऐसे ब्यूरों लगभग प्रत्येक राज्य में खुल चुके हैं। अतः हम देख सकते हैं कि निर्देशन कार्यक्रम के प्रति सरकार तथा विद्यालय दोनों ही प्रारम्भ से ही जागरूक रह हैं। निर्देशन के कार्यक्रम के तहत निर्देशन सेवाओं का आयोजन समय-समय पर प्राथमिक, माध्यमिक , उच्च माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के लिए किया जाता है जिसकी सहायता से विद्यालय के बालकों को अपना पाठ्यक्रम तथा व्यवसाय चुनने मे सहायता प्राप्त हो सके।

अतः इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् हमें यह ज्ञात होगा कि शिक्षा के भिन्न-2 स्तर पर निर्देशन सेवाओं का आयोजन किस प्रकार से करते हैं।

13.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप

1. मार्गदर्शन सेवाओं को शिक्षा के भिन्न-2 स्तर पर कैसे आयोजित करते हैं। इसकी व्याख्या कर सकेगे।
2. शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर मार्गदर्शन सेवा का आयोजन कैसे किया जाए इसका ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर मार्गदश्रन सेवा का आयोजन करने की क्रियाविधि जान सकेंगे।
4. शिक्षा के उच्च माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन सेवा को आयोजित करने की क्रियाविधि का जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. उच्च शिक्षा में मार्गदर्शन सेवा के आयोजन का महत्व समझ सकेंगे।
6. विद्यार्थी जीवन में मार्गदर्शन सेवा कार्यक्रम आयोजन की महत्ता की व्याख्या कर सकेंगे।
7. निर्देशन अथवा मार्गदर्शन सेवा कार्यक्रम की उपयोगिता से भली-भाति परिचित हों सकेंगें।
8. शिक्षा के विभिन्न स्तर पर निदेशन कार्यक्रम के आयोजन की महत्ता का विवेचन कर सकेंगे।

9. सभी प्रकार की निर्देशन अथवा मार्गदर्शन सेवाओं के आयोजन के विषय में तुलनात्मक अध्ययन कर सकेंगे।

13.3 मार्गदर्शन कार्यक्रम का संगठन विद्यालयी वातावरण के संदर्भ में

आपको ज्ञात हो कि निर्देशन अथवा मार्गदर्शन कार्यक्रम का संगठन करने से पूर्व कुछ उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए जो इस प्रकार है-

i. मार्गदर्शन कार्यक्रम के संगठन के समय ही पूर्ण निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्यों को स्पष्ट रूप से परिभाषित कर लेना चाहिएं
ii. मार्गदर्शन कार्यक्रम के माध्यम से पूर्ण किये जाने वाले विभिन्न कार्यों की सूची पहले से ही बना सकते हैं।
iii. मार्गदर्शन कार्यक्रम तभी सफल हो सकेगा यदि इस कार्यक्रम में हिस्सा लेने वाले सभी व्यक्तियों को कार्यो का वितरण पहले से ही कर दिया गया हो तथा इस कार्यो का वितरण व्यक्तियों की उनकी योग्यताओं के अनुरूप होनी चाहिए।
iv. प्रत्येक व्यक्तियों को कार्यो का वितरण करने के पश्चात् उन्हें निश्चित अधिकार क्षेत्र सौंपना चाहिए जिसकी सहायता से वे उन अधिकारों का प्रयोग कर अपने कार्यो को और सहजता व सरलता से कर सकें।
v. विद्यालय निर्देशन सेवा को संगठित करने से पूर्व इसके स्वरूप को भी निश्चित कर लेना चाहिए। जैसे-कर्मचारियों की संख्या, धन की व्यवस्था, आकार आदि। इसके स्वरूप का आधार संस्था के उद्देश्यों तथा आर्थिक साधन और स्कूल में बालकों की संख्या आदि हो।
vi. विद्यालय मार्गदर्शन सेवा संगठन की प्रकृति सरल होनी चाहिए। क्योंकि सरल रूप रेखा वाले संगठन में प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने में सरलता होती है।
vii. बालकों को स्वयं के लिए निर्देशन कार्यक्रम का मूल्य समझने की अवस्था में किस प्रकार प्रेरित किया जाए इस कार्य पर भी बल देना चाहिए।

निर्देशन अथवा मार्गदर्शन सेवाओं के संगठन का स्वरूप इस प्रकार है

आप देखेंगे, निर्देशन कार्यक्रम को विशेषज्ञों द्वारा कराना चाहिए क्योंकि यह निर्देशन कार्य में प्रशिक्षित होते हैं इस प्रकार के स्वरूप को केन्द्रीय स्वरूप कहते हैं । इससे अभिप्राय यह है कि अधिकांश निर्देशन क्रियाएं केन्द्रीय निर्देशन कार्यालय से संचालित एवं नियंत्रित होती है तथा इसमें सभी अध्यापक भी केन्द्रीय निर्देशक मंडल के निरीक्षण तथा आदेशों के अनुरूप ही अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं।

i. आपको ज्ञात हो कि निर्देशन कार्यक्रम संगठन का दूसरा स्वरूप विकेन्द्रीय रूप है। इसके तहत निर्देशन को प्रदान करना अध्यापकों का उत्तरदायित्व माना जाता है।
ii. निर्देशन अथवा मार्गदर्शन के केन्द्रीय और विकेन्द्रीय रूप के अपने-2 गुण और दोष होते हैं। स्वतंत्र रूप से कोई भी निर्देशन व्यावहारिक दृष्टि से संभव नहीं हो पाता । अतः कुछ लोगों का मानना है कि निर्देशन कार्यक्रम का रूप इन दोनों स्वरूपों का मिश्रित रूप होना चाए। मिश्रित रूप से तात्पर्य है कि अध्यापकों और विशेषज्ञों को सामूहिक रूप से निर्देशन करना चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

1. मार्गदर्शन कार्यक्रम किस प्रकार के वातावरण में आयोजित किया जा सकता है?
2. मार्गदर्शन कार्यक्रम के संगठन से पूर्व कोई दो उद्देश्य स्पष्ट करें?
3. मार्गदर्शन सेवा के कितने स्वरूप हैं?

13.4 शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मागदर्शन अथवा निर्देशन सेवाओं का आयोजन

कोठारी आयोग (1964-66) के निर्देशन सम्बन्धी अपनी सिफारिशों में कहा है कि निर्देशन को शिक्षा का अभिन्न अंग समझा जाये और इसे प्राथमिक स्तर से ही शुरू किया जाये। इसी सिफारिश के अनुरूप ही स्कूल की क्रियाओं को बच्चों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए उनके विकास के विभिन्न चरणों के अनुसार ही निर्देशन कार्यक्रम नियोजित किये जाने चाहिए ताकि वे बौद्धिक, सामाजिक, संवेगात्मक और व्यावसायिक क्षेत्रों में सुसमायोजित हो सके। इस दृष्टि से बच्चों के विकास की अवस्था के अनुरूप तथा विभिन्न स्कूल स्तरों के अनुरूप ही निर्देशन कार्यक्रमों के उद्देश्य तय किये जाते हैं। अर्थात समय-2 पर स्कूलों तथा कालेजों में मार्गदर्शन तथा परामर्श कार्यक्रम का आयोजन करना आवश्यक है। मार्गदर्शन सेवाओं से बालकों को उचित पाठ्यक्रम चुनने, अन्य शैक्षिक समस्याओं को हल कर समायोजन करने, व्यवसाय चयन, व्यवसाय मे समायोजन, व्यवसाय मे सफलता, स्वास्थ, संवेगात्मक व्यवहार जैसी व्यक्तिगत समस्याओं के संबंध मे सहायता प्रदान की जाती है। चूंकि स्कूलों मे समायोजन संबंधी समस्याएँ प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक के बालकों को हो सकती हैं। इस हेतु शैक्षिक निर्देशन शिक्षा के सभी स्तरो के बालकों के लिए आवश्यक है।

व्यवसाय चयन, व्यवसाय समायोजन व व्यवसाय मे सफलता हेतु व्यावसायिक मार्गदर्शन उच्च मध्यमिक स्तर तथा उच्च शिक्षा स्तर के बालकों हेतु आवश्यक होता हैं।

व्यक्तिगत सस्याएँ किसी भी शिक्षा स्तर के बालक को हो सकती हैं । इसलिए व्यक्तिगत मार्गदर्शन सभी शिक्षा स्तर के बालकों के लिए आवश्यक हैं । उपर्युक्त शैक्षिक, व्यावसायिक तथा व्यक्तिगत निर्देशन का आयोजन स्कूलों मे, विभिन्न मार्गदर्शन सेवाओं के माध्यम से किया जाता हैं । प्रत्येक शिक्षा स्तर के बालकों की आवश्यकताए एवं सस्याएँ भिन्न होती हैं। इन व्यक्तिगत विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर मार्गदर्शन सेवाओं का आयोजन किया जाता हैं । अतः शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर निर्देशन अथवा मार्गदर्शन सेवाओं का आयोजन निम्नलिखित प्रकार से किया जाता हैं।

13.4.1 प्राथमिक स्तर पर मार्गदर्शन अथवा निर्देशन सेवाओं का आयोजन

- प्राथमिक स्तर पर मार्गदर्शन अथवा निर्देशन सेवाओं के विशिष्ट उद्देश्य- इस स्तर मे 6 से 11 वर्ष की आयु के बच्चे अर्थात कक्षा 1 से 5 तक के बच्चे शामिल किये जाते हैं। इस स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के निम्नलिखित विशिष्ट उद्देश्य होते हैं-
- घर से स्कूल में बालकों का संतोषजनक परिवर्तन या समायोजन करवाने में सहायता करना।
- मूलभूत शैक्षिक कौशलों को सीखने में आ रही कठिनाईयों के निदान में सहायता करना।

बालकों को विशेष शिक्षा प्रदान करने के लिये जरूरतमंद बालकों को पहचान करने में सहायता जैसे-प्रतिभाशाली, पिछड़े तथा विकलांग बालक।

- संभावित स्कूल छोड़ने वाले बालकों को स्कूल में ठहराये रखना।
- ़विद्यार्थियों को उनकी आगामी शिक्षा या प्रशिक्षण की योजना बनाने में सहायता करना।

उपरोक्त विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये प्राथमिक स्तर पर कुछ क्रियाएं करनी होंगी। इस स्तर पर अध्यापक की केन्द्रीय भूमिका होती है क्योंकि अध्यापक बच्चों की रूचियों, योग्याताओं और आवश्यकताओं तथा प्रतिभाओं की खोज करने के लिए उत्तम स्थिति में होता है। प्राथमिक स्तर पर हम सूचना सेवा, ओरिएंटेशन सेवा, बचाव सेवा, परिसूची सेवा का आयोजन कर सकते हैं। सूचना सेवा की सहायता से बालकों को अपने आप को समायोजित करने, अपने सर्वांगीण विकास करने तथा भविष्य मे ठीक प्रकार से अपना जीवनयापन करने मे समर्थ होने हेतु विभिन्न प्रकार की सूचनाओं को प्रदान करते रहने की अवश्यकता होती हैं। ओरिएंटेशन सेवा के अंतर्गत स्कूल के नए बालकों तथा अध्यंरत बालकों को स्कूल के भौतिक तथा मानवीय संसाधनों के रूप से परिचित कराते हैं जिससे उन्हे स्कूल वातावरण मे समायोजन करने मे सहायता मिल सके। बचाव सेवा के अंतर्गत इस बात का ध्यान रखते हैं की स्कूलों मे सभी बालकों के मानसिक तथा शारीरिक स्वास्थ उत्तम रहे इसके लिए परामर्शदाता स्वास्थ विशेषज्ञओं को स्कूलों मे बुलाते हैं तथा समय-2 पर बालकों का परीक्षण कराते हैं ।

प्राथमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम को आयोजित करने हेतु निम्नलिखित क्रियाएं कराई जाती हैं-

i. बालकों के लिये अभिविन्यास कार्यक्रम आयोजित करना इसमें स्कूल वातावरण के बारे में बच्चों को तथा उनके माता-पिता को बताया जाता है। उनके माता-पिता को विद्यालय तथा निर्देशन कार्यक्रम में माता-पिता की भूमिका आदि के विषय में परिचित कराया जाता है।
ii. निदानात्मक तथा मूलभूत कौशलों का परीक्षण समय-समय पर करना चाहिये। इस प्रकार के परीक्षणों का उपयोग प्राथमिक कक्षाओं में खूब किया जाना चाहिए इससे दोषपूर्ण पठन में सुधार कर हम वांछित परिणाम प्राप्त कर सकते हैं।
iii. विशिष्ट प्रतिभा वाले बालकों को विभिन्न विधियों और प्रविधियों की सहायता से खोज की जाती है। इन प्रतिभाओं में वैज्ञानिक योग्यता, सर्जनात्मक योग्यता, नेतृत्व की योग्यता, नाटक की योग्यता तथा संगीत योग्यता आदि शामिल होती है।
iv. स्कूलों में कुसमायोजित बालकों तथा विभिन्न दोषों से युक्त बालकों की खोज करना अति आवश्यक है। इस प्रकार की खोज के लिये विभिन्न तकनीकों जैसे निरीक्षण, परीक्षणों इत्यादि का प्रयोग किया जाता है। कुसमायोजनों और दोषों में सामान्य कुसमायोजन, आवेशपूर्ण व्यवहार, धीमीगति से सीखने वाले , न्यूनतम अभिप्रेरित बच्चे, वाणी दोष, अधिगम दोष, दृष्टि दोष, शारीरिक विकलांगता तथा विशेष स्वास्थ्य समस्याएं इत्यादि सम्मिलित हैं । इनके लिये उपयुक्त उपचारात्मक विधियों का प्रयोग किया जाता है ताकि यथासमय इनका उपचार किया जा सके। गरीबी, सामाजिक पिछड़ेपन आदि के निवारण के लिए विशेष विधियों का विकास करना पड़ेगा।

अभ्यास प्रश्न

4. प्राथमिक स्तर पर निर्देशन सेवाओं का आयोजन किस वर्ष से किस वर्ष तक के बच्चों के लिए किया जाता है?
5. प्राथमिक स्तर पर निर्देशन सेवा के अन्तर्गत कराये गये किन्हीं दो क्रियाओं का नाम बताइए?

13.4.2 पूर्व माध्यमिक स्तर पर निर्देशन अथवा मार्गदर्शन सेवाओं के विशिष्ट उद्देश्य

कक्षा 6 से 8 तक को पूर्व माध्यमिक स्तर कहते हैं। इन कक्षाओं में 11 से 14 वर्ष की आयु समूह शामिल होता है। इन वर्षों में बच्चे किशोर अवस्था में प्रवेश कर जाता है तथा इन अवस्था को संघर्ष एवं तूफान की अवस्था कहते हैं । इस अवस्था में परिवार स्कूल तथा समाज में समायोजन समस्याएं प्रकट होनी शुरू हो जाती है। इस स्तर पर निर्देशन के उद्देश्य -

1. बालकों को परिवार, स्कूल और समाज में समायोजन में सहायता करना।

2. बालकों की योग्यताओं, अभिरूचियों और रूचियों को खोजना और उनका विकास करना।
3. बालकों को विभिन्न शैक्षिक और व्यावसायिक अवसरों और आवश्यकताओं के बारे में सूचनाएं प्राप्त करने के योग्य बनाना।
4. मुख्याध्यापक और अध्यापको को उनके बालकों को समझने तथ अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायता करना।
5. स्कूल छोड़ने वाले बालकों को उनके बालकों को समझने तथा अधिगम को प्रभावी बनाने में सहायता करना।

इस स्तर पर सूचना, ओरिएंटेशन, बचाव, परामर्श, परिसूची सेवाओं का आयोजन स्कूल स्तर पर समय-2 पर किया जाना चाहिए । इसकी सहायता से स्कूली बालकों को व्यक्तिगत, शैक्षिक, सामाजिक समायोजन करने मदद मिलती हैं।

इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये निम्नलिखित कार्यक्रम या क्रियाएं की जा सकती हैं

सामान्य क्रियाएँ

1. विद्यालय के मुख्याध्यापक के साथ निर्देशन कार्यक्रम पर विचार-विमर्श करना।
2. विद्यालय संकाय को परिचित कराना।
3. विद्यालय के मुख्यध्यापक द्वारा विद्यालय निर्देशन समिति बनाना जिस मे कैरियर अध्यापक, शरीरिक शिक्षा अध्यापक और अध्यापक-अभिभावक संघ का एक प्रतिनिधि शामिल हों।

विशिष्ट क्रियाएँ

1. बालकों के तथ्यों को इकट्ठा करना जैसे पहचान सम्बन्धी सूचनाएँ, घर और परिवार की पृष्ठभूमि सम्बन्धी सूचनाएँ, घर और परिवार की पृष्ठभूमि सम्बन्धी आंकड़े तथा शैक्षिक उपलब्धियाँ।
2. अभिविन्यास कार्यक्रमों का आयोजन कराना जेसै स्कूल वातावरण, पाठ्यक्रम, स्कूल में सुविधाओं के बारे में परिचय नियमित अध्ययन आदतों से परिचय या अभिविन्यास तथा सामाजिक समायोजन के बारे में तथा खाली समय के सदुपयोग के बारे अभिविन्यास।
3. नये बालकों के अभिभावकों का अभिविन्यास कार्यक्रम जैसे स्कूल और स्कसूल निर्देशन में माता-पिता की भूमिका के बारे में अभिविन्यास।
4. संचित अभिलेख पत्र शुरू कराना।
5. अल्प उपलब्धि वाले और विद्यालय छोड़ने वाले बालकों की पहचान कराना।
6. बुद्धि परीक्षण की व्यवस्था करना।
7. अधिगम -वातावरण की व्यवस्थ करना तथा इस व्यवस्था में सुधार करना
8. कमजोर बालकों के लिये उपचारात्मक कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता करना।

9. बालकों के लिये उपचारात्मक कार्यक्रमों के आयोजन में सहायता करना।
10. बालकों को परामर्श देना तथा समस्या को ध्यान में रखते हुए विशेषज्ञों के पास भेजना।

अभ्यास प्रश्न

6. पूर्व माध्यमिक स्तर पर निर्देशन सेवाएं किस आयु वर्ग के बालकों को दी जाती है?
7. पूर्व माध्यमिक स्तर किस कक्षा से किस कक्षा को कहा जाता है।

13.4.3 निम्न माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन अथवा निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन

निम्न माध्यमिक स्तर में 9 और 10वीं कक्षाएं शामिल होती है। इसमें 14 से 16वर्ष की आये के बालकों को सम्मिलित किया जाता है । इस स्तर पर 10 वर्ष की शिक्षा विद्यार्थी पूरी कर लेता है। इसके पश्चात विद्यार्थी तीन मार्ग का चुनाव कर सकते है-

- वे किसी कार्य-शक्ति में प्रवेश लें।
- वे किसी व्यावसायिक कोर्स में प्रवेश लें।
- वे उच्च शिक्षा प्राप्त करें ताकि वे किसी कालेज या यूनिवर्सिटी में दाखिला ले सके।

निम्न मध्यमिक स्तर पर सूचना, ओरिएंटेशन, परिसूची, बचाव, परामर्श, सलाह सेवाओं का आयोजन करना चाहिए। इन सेवाओं के आयोजन से स्कूली बालकों को सभी प्रकार की व्यक्तिगत, शैक्षिक, व्यवसायिक समायोजन मे मदद मिलती हैं जिसकी सहायता से उन्हे सफलता अर्जित करने मे मुश्किलों का सामना नही करना पड़ता हैं। अतः इस स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्य तथा क्रियाएँ इसप्रकार हैं ।

निम्न माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन अथवा निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन के विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार है

1. बालकों को उनकी दुर्बलताओं और शक्तियों को समझने के योग्य बनाना।
2. शैक्षिक और व्यवसायिक अवसरों और आवश्यकताओं के बारे में सूचना इकट्ठी करने के योग्य बनाना।
3. बालकों को शैक्षिक और व्यावसायिक चयन करने में सहायता करना।
4. बालकों को उनकी समस्याओं के समाधान में सहायता करना। इन समस्याओं में स्कूल और घर में व्यक्तिगत और सामाजिक समायोन की समस्याएं भी शामिल है।
5. व्यावसायिक सूचनाओं के अवसर प्रदान करना।
6. व्यावसायिक सूचनाओं के अवसर प्रदान करना।

7. बालकों को संचित अभिलेखों, परीक्षणों-परिणामों आदि से उनके बारे में उन्हीं को सूचनाएं उपलब्ध करानी
8. बालकों में स्वयं प्रत्यय विकसित करना।

निम्न माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन या निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन के विशिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने हेतु विशिष्ट क्रियाएं

i. योग्यताओं, अभिरूचियों, रूचियों, उपलब्धियों और अन्य मनोवैज्ञानिक चरों के बारे में आकड़े एकत्रित करना।
ii. कार्यो से परिचित कराना।
iii. क्षेत्र भ्रमणों का आयोजन करना।
iv. कैरियर कान्फ्रेन्सिस और कैरियर प्रदर्शनी का आयोजन।
v. कोर्स का चयन करने में सहायता करना।
vi. अल्प -उपलब्धि और विद्यालय छोड़ने वाले बालकों की पहचान करना।
vii. माता-पिता को निर्देशन प्रदान करना।
viii. समस्या को देखते हुए विशेषज्ञों और परामर्शदाता के पास भेजना।

अभ्यास प्रश्न

8. निम्न माध्यमिक स्तर के निर्देशन कार्यक्रम में किस कक्षा से किस कक्षा तक के विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं।
9. निम्न माध्यमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम के आयोजन के दो मुख्य उद्देश्य स्पष्ट करें?

13.4.4 उच्च माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन अथवा निर्देशन कार्यक्रम का आयोजन

इस स्तर में 11वीं और 12वीं कक्षाएं सम्मिलित हैं और इस स्तर का 15 से 18 वर्ष का आयु वर्ग शामिल होता है। इस स्तर की शिक्षा व्यवस्था मे सूचना, ओरिएंटेशन, बचाव, परामर्श, सलाह, स्थानन, परिसूची सेवाओं का आयोजन किया जाना चाहिए जोकि बालक को हर प्रकार के समायोजन मे सहायता प्रदान कर सके। इस स्तर के बालकों हेतु मार्गदर्शन तथा निर्देशन अति आवश्यक होती हैं क्योकि इस स्तर के बालक मानसिक रूप से परिपक्व हो जाते हैं तथा उच्च माध्यमिक स्तर के उपरांत ही बालक अपने रुचि अनुसार विषय का चयन करके मेडिकल, इंजेनियरिंग अथवा उच्च शिक्षा मे प्रवेश करते है अतः इस स्तर पर बालक को उसकी रुचि का ज्ञान होना अति आवश्यक हैं इस कार्य मे शिक्षक को बालकों की सहायता करनी चाहिए जिससे वों अपने निर्धारित उद्देश्य को प्राप्त कर सकें। उच्च माध्यमिक स्तर के मार्गदर्शन अथवा निर्देशन सेवा के उद्देश्य तथा क्रियाएँ इसप्रकार हैं।

उच्च माध्यमिक स्तर मार्गदर्शन कार्यक्रम के आयोजन के विशिष्ट उद्देश्य

- उनकी शैक्षिक रूचियों के संदर्भ में उनके कैरियर के चयन में सहायता करना।
- व्यक्तिगत सामाजिक समायोजन के क्षेत्र में सहायता करना।
- इन विशिष्ट उद्देश्यों के अतिरिक्त निम्न माध्यमिक स्तर के विशिष्ट उद्देश्य भी उच्च सेकेन्डरी स्तर में शामिल किये जाते हैं।

उच्च माध्यमिक स्तर पर विशिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने हेतु विशिष्ट क्रियाएं इस प्रकार है

1. **सूची सेवा**: व्यक्गित संचित अभिलेख पत्र रखना जारी रहता है । विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के बारे में सूचनाएं एकत्रित करने के लिये विभिन्न पक्षों के बारे में सूचनाएं एकत्रित करने के लिये विभिन्न परीक्षणों तथा विधियों का प्रयोग किया जा सकता है।
2. **व्यावसायिक सूचना सेवा**: इस स्तर पर स्थानीय व्यावसायिक अवसरों और स्वयं रोजगार अवसरों के बारे में सूचनाएं प्रदान करने पर अधिक बल दिया जाता है। इस उद्देश्य के लिये कैरियर कान्फ्रैसिस क्षेत्रीय यात्राएं, कैरियर वार्ताएं आदि की व्यवस्था की जाती हैं लोकल रोजगार अवसरों के बारे में सूचनाएं इकट्ठी करने के लिये निर्देशन -कार्यकर्ता को रोजगार कार्यालय से मिलकर कार्य करना पड़ेगा और इसी प्रकार क्षेत्र के विभिन्न उद्योगों से मेल-जोल रखना पड़ेगा। इस स्तर पर विद्यार्थी को उसकी रूचि के व्यवसाय के विस्तृत अध्ययन में भी सहायता की जायेगी।
3. **परामर्श सेवा:** व्यक्तिगत, सामाजिक और शैक्षिक व्यावसायिक समस्याओं के समाधान के लिये बालकों को परामर्श सेवा उपलब्ध कराई जाये। यदि प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध नहीं है तो बालकों को अन्य अभिकरणों के पास भेजन देना चाहिए। परामर्शदाता विभिन्न निर्देशन सेवाओं के द्वारा बालकों की सही कोर्स चुनने में और कैरियर चुनने मे तथा एक वयस्क की भूमिका निभाने की तैयारी में सहायता करता है।

अभ्यास प्रश्न

10. उच्च माध्यमिक स्तर के निर्देशन कार्यक्रम में कौन -2 सी कक्षाएं सम्मिलित है?
11. उच्च माध्यमिक स्तर के निर्देशन कार्यक्रम के विशिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने हेतु दो क्रियाएं बताइए?

13.4.5 उच्च शिक्षा स्तर पर मार्गदर्शन अथवा निर्देशन सेवा का आयोजन

उच्च शिक्षा स्तर से तात्पर्य स्नातक, परास्नातक तथ अन्य व्यावसायिक कोर्सों को करने से है। इस शिक्षा स्तर पर सूचना, ओरिएंटेशन, परामर्श, सलाह, स्थानन, परिसूची, शोध एवं मूल्यांकन सेवाओं

का आयोजन किया जाना चाहिए जिससे इस स्तर के बालकों को व्यक्तिगत, शैक्षिक, व्यवसाय चयन तथा विषय चयन मे सहायता मिल सके। इस स्तर पर निर्देशन सेवाओं का विद्यार्थी जीवन मे बहुत महत्त्व होता है। इस स्तर के बाद ही सभी बालकों का व्यवसायिक रोजगार की शुरुआत होती हैं। उच्च शिक्षा स्तर बालक के कैरियर के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण माना जाता है क्योकि कोई भी बालक इसी आधार पर भविष्य मे अपनी दिशा तय करता है, एक अच्छे शिक्षक की भूमिका उच्च शिक्षा स्तर पर बढ़ जाती हैं शिक्षक को हर संभव प्रयास से बालक की मदद उसकी दिशा तय करने मे करनी चाहिए। अतः इस स्तर के उद्देश्य तथा क्रियाएँ इसप्रकार हैं।

शिक्षा के इस स्तर पर मार्गदर्शन सेवाओं के आयोजन के विशिष्ट उद्देश्य इस प्रकार हैं

i. बालकों को उच्च माध्यमिक कक्षाओं के उपरान्त उच्च शिक्षा में प्रवेश लने में मदद करना।
ii. बालकों को उनके रुचि की पहचान कराके उनके विशिष्ट क्षेत्र जैसे-मेडीकल या इन्जिनियरिंग क्षेत्र में जाने हेतु उन्हे प्रोत्साहित तथा सहायता प्रदान करना।
iii. स्नातक तथा परास्नातक कक्षाओं में किन-किन विषयों का चयन किया जाए तथा उन विषयों का भविष्य में क्या-क्या संभावनाएं है इस बात से अवगत कराना।
iv. बालकों को व्यावसायिक कोर्सों के विषय में बताना तथा अच्छे व्यावसायिक कोर्स में एडमिशन लेने में सहायता प्रदान करना जिससे आगे चल कर उन्हें व्यवसाय चयन करने में सहायता मिले।
v. सर्वाधिक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि उच्च शिक्षा स्तर पर आने के बाद मार्गदर्शन सेवा की सहायता से प्रत्येक विद्यार्थी को अपने मनपसंद कार्यक्षेत्र में व्यवसाय अवश्य मिल जाएं। तथा इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि कोई विद्यार्थी बेरोजगार ना हो, उच्च शिक्षा प्राप्त करते-2 सभी को व्यवसाय मिल जाए।

उच्च शिक्षा स्तर पर विशिष्ट उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विशिष्ट क्रियाएं इस प्रकार हैं

i. बालकों को व्यवसाय उपलब्ध कराने हेतु समय-समय पर कैम्पस इंटरव्यू का आयोजन करना चाहिए।
ii. कमजोर बच्चों के लिए कालेजों मे पार्ट टाइम क्लास की व्यवस्था करना चाहिए जिससे कमजोर बालक क्लास मे समंजस्य स्थापित कर सकें।
iii. कालेज में समय-समय पर सेमीनार तथा वर्कशाप का आयोजन करना चाहिए जिससे बालकों को और लागों से मिलने तथा अपने ज्ञान में वृद्धि करने का अवसर प्राप्त हो सके।
iv. विज्ञान के बालकों के अच्छे-2 से अच्छे विज्ञान विशेषज्ञ से व्याख्यान का आयोजन कराना।
v. दूसरे कालेज में बालकों को ले जाकर विज्ञान तथा तकनीकी मे हो रहे कार्यों का अवलोकन कराना।

vi. स्कूलों में ले जाकर शिक्षक की भूमिका का अवलोकन कराना जिससे बालकों को शिक्षा क्षेत्र में व्यवसाय का चयन करने में मदद मिल सके।

vii. स्कूलों तथा कॉलेज मे प्रतियोगिता का समय-2 पर आयोजन करना चाहिए जिससे बालकों मे प्रतिस्पर्धा की भावना का विकास हो सके। आज का युग प्रतिस्पर्धा का युग हैं।

स्कूलों मे मार्गदर्शन सेवाओं के संगठन एवं आयोजन की ज़िम्मेदारी स्कूल प्रशासकों की होती है। इसलिए वो परामर्शदाता की नियुक्ति कर सकता है या स्कूल के ही शिक्षकों को इसकी ज़िम्मेदारी सौप सकता है । स्कूल मे मार्गदर्शन सेवाओं की सफलता प्राचार्य, सभी शिक्षकों एवं सभी वरिष्ठ बालकों की सक्रिय भूमिका पर निर्भर करती हैं । इस प्रकार आप उपरोक्त सूचनाओ के आधार पर आप यह जान गए हैं कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर निर्देशन कार्यक्रमों के क्या-क्या विशिष्ट उद्देश्य एवं क्रियाविधि क्या-2 हैं।

अभ्यास प्रश्न

12. उच्च शिक्षा स्तर में किन-किन कक्षाओं का समावेश होता है?
13. उच्च शिक्षा स्तर पर बालकों के लिए कोई दो विशिष्ट क्रियाओं के नाम बताइए?

13.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप यह जान चुके हैं कि मार्गदर्शन अथवा निर्देशन सेवा का सगठन तथा आयोजन का क्या महत्व एवं उपयोगिता है। आप यह आप जान चुके हैं कि किस प्रकार मार्गदर्शन सेवा का संगठन विद्यालयी वातावरण मे करना चाहिए तथा एक शिक्षकएवं प्रशिक्षक की क्या भूमिका होनी चाहिए। आप निर्देशन सेवाओं के संगठन के स्वरूप से भलीभांति परिचित हो चुके हैं। आप यह भी जान चुके हैं कि किस प्रकार मार्गदर्शन सेवाएँ विद्यार्थी जीवन में तथा उनके कैरियर में उपयोगी है।

आप यह भी जान चुके हैं कि शिक्षा के विभिन्न स्तर पर मार्गदर्शन सेवाओं का आयोजन किस प्रकार किया जाये तथा इसका क्या महत्व है। जैसे प्राथमिक स्तर पर मार्गदर्शन सेवाओं के आयोजन का विवरण उनके विशिष्ट उद्देश्य क्या हैं, इन विशिष्ट उद्देश्यों को पूरा करने हेतु किन-किन क्रियाओं को कराना होगा।

- पूर्व माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन सेवाओं का आयोजन, उनके विशिष्ट उद्देश्य तथा क्रियाविधि
- माध्यमिक स्तर पर मार्गदर्शन सेवाओं का आयोजन, उनके विशिष्ट उद्देश्य तथा क्रियाविधि क्या-2 हैं।
- उच्च शिक्षा स्तर पर मार्गदर्शन सेवाओं के विशिष्ट उद्देश्य तथा क्रियाविधि क्या-2 है। इसके साथ ही अब आप मार्गदर्शन तथा परामर्श के की भूमिका स्कूलों तथा कॉलेज मे क्या-

2होती हैं समझ गए हैं । इसलिए हर संभव प्रयास करके हमे स्कूलों तथा कॉलेज मे मार्गदर्शन अथवा निर्देशन तथा परामर्श विषयों पर बल तथा इसके महत्व का प्रचार करना चाहिए।

13.7 शब्दावली

1. **विशेष शिक्षा-** ऐसी शिक्षा जो शारीरिक तथा मानसिक रूप से असमर्थ बालकों के आवश्यकतानुसार आयोजित होती है।
2. **अभिविन्यास कार्यक्रम-** ऐसा कार्यक्रम जिसमें विद्यार्थी तथा उनके माता-पिता को स्कूल के विषय में बताया जाता है।
3. **संचित अभिलेख पत्र -** यह सूचनाओं का वह अभिलेख है जिनका सम्बन्ध विद्यार्थी के मूल्यांकन से होता है।
4. **उपचारात्मक कार्यक्रम-** ऐसा कार्यक्रम जिसमें शिक्षण के उपरान्त बालकों को हो रहे कठिनाइयों का निदान करते हैं।
5. **व्यावसायिक कार्स -** ऐसा कोर्स जो बालकों को व्यवसाय उपलब्ध कराता है।
6. **स्वयं प्रत्यय-** यह एक बहुआयामी संकल्पना है जो किसी विशेषता के संबंध में व्यक्ति का स्वयं का प्रत्यक्षीकरण प्रदर्शित करता हैं
7. **कैरियर कान्फ्रेन्सिस**- ऐसा सम्मेलन जिस मे कैरियर से जुड़े मुद्दे तथा विविध पक्षों की चर्चा की जाती है।
8. **कैम्पस इंटरव्यू-** शिक्षण संस्थान में आयोजित ऐसे साक्षात्कार जो बालकों को व्यवसाय दिलाने हेतु आयोजित किया जाता हैं।

13.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मार्गदर्शन कार्यक्रम स्कूली वातावरण में आयोजित करना चाहिए जिससे बालकों को अपने कैरियर में सहायता मिल सके।
2. मार्गदर्शन कार्यक्रम के सगठन से पूर्व सर्वप्रथम सभी कार्यों की सूची निर्मित कर लेनी चाहिए तथा मार्गदर्शन सेवा कार्यक्रम की सफलता हेतु सभी व्यक्तियों को उनके कार्यो का वितरण भली-भांति कर देना चाहिए तथा उन्हें कुछ अधिकार प्रदान कर देना चाहिए।
3. मार्गदर्शन सेवाओं के तीन स्वरूप होते है।
   (i) केन्द्रीय स्वरूप (ii) विकेन्द्रीय स्वरूप (iii) मिश्रित स्वरूप
4. प्राथमिक स्तर पर निर्देशन सेवाओं के आयोजन 6 से 11 वर्ष के बच्चों को लिए किया जाता है।

5. प्राथमिक स्तर पर बालकों के लिए अभिविन्यास कार्यक्रमों का आयोजन किया जाता है तथा बच्चों के लिए निदानात्मक एवं मूलभूत कौशलों का परीक्षण समय-2 पर किया जाता है।
6. पूर्व माध्यमिक स्तर पर निर्देशन सेवा 11वर्ष से 14 वर्ष के बच्चों को दी जाती है।
7. पूर्व माध्यमिक स्तर में कक्षा 6 से कक्षा 8 तक के बच्चे सम्मिलित होते हैं।
8. निम्न माध्यमिक स्तर के निर्देशन कार्यक्रम में कक्षा 9 से कक्षा 10 के विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं।
9. निम्न माध्यमिक स्तर पर निर्देशन कार्यक्रम बालकों को उनकी दुर्बलताओं एवं शक्तियों से परिचित कराने तथा बालकों को शैक्षिक एवं व्यावसायिक अवसरों का चयन करने में सहायता देने में कराना चाहिए।
10. उच्च माध्यमिक स्तर के निर्देशन मे कक्षा 11 तथा कक्षा 12 के विद्यार्थी सम्मिलित होते हैं।
11. उच्च माध्यमिक स्तर के निर्देशन को पूरा करने हेतु सूची सेवा, व्यावसायिक सूचना सेवा तथा परामर्श सेवा का आयोजन करना चाहिए।
12. उच्च शिक्षा स्तर में स्नातक, परास्नातक तथा व्यावसायिक कोर्स सम्मिलित होते हैं।
13. उच्च शिक्षा स्तर पर बालकों के लिए कैम्पस इंटरव्यू तथा सेमीनार एवं वर्कशाप का आयोजन करना चाहिए।

13.9 संदर्भ ग्रन्थ

1. ओबेराय, डॉ0 सुरेश चन्द्र (2006), शैक्षिक तथा व्यवसायिक निर्देशन एवं परामर्श, इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ,
2. मंगल, डॉ0 एस0 के0 एवं श्रीमती श्रुभ्रा (2003), मार्गदर्शन एवं परामर्श, आर्य बुक डिपो, मेरठ
3. गुप्ता, एस.पी. (2008), उच्चत्तर शिक्षा मनोविज्ञान, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद
4. सिंह, ए. के. (2010), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन पब्लिशर्स, पटना
5. जायसवाल, एस.(2008), शिक्षा में निर्देशन एवं परामर्श, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा
6. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi: Vikash Publishing House.
7. Das, B.N. (2010). Career Guidance and Counselling. Agra: Vinod Pustak Mandir
8. Kochhar, S.K, (1980) Guidance and Counselling, New Delhi: Sterling Publishers.

9. Mathur, S.S.(2012).Fundamentals of Guidance and Counselling.Agra: Vinod Pustak Mandir
10. NCERT(2008).Introduction to Guidance,Module-1, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
11. NCERT(2008).Career Information in Guidance,Module-5 and 12, New Delhi: National Council Of Educational Research and Training,
12. Pandey, K.P.(2009).Educationaland Vocational Guidance in India. Varanasi: Vishvidyalaya Prakashan.
13. Sharma, N.R. (2012). Educationaland and Vocational Guidance. Agra: Vinod Pustak Mandir

13.10 सहायक/ उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. Agarwal, J.C, (1985), Educational Vocational Guidance and Counseling, Doaba House, New Delhi.
2. Agrawal, R (2006). Educational, Vocational Guidance and Counselling, New Delhi, Sipra Publication.
3. Bhatnagar, A & Gupta, N (1999).Guidance and Counselling: A theoretical Approach(Ed), New Delhi, Vikash Publishing House.
4. Kapunan, R.R. (2004). Fundamentals of Guidance and Counselling, Rex Printing Company, Inc., Quezon City.
5. Kinra, A.K. (2008). Guidance and Counselling, Dorling Kindersley (India) Pvt. Ltd. New Delhi.
6. Mendoza, E. (2003), Guidance and Counselling Today. Rex Book Store (RBSI), Manila.
7. Nanda, S.K and Sharma S, (1992) Fundamentals of Guidance, Chandigarh.

Websites & E-links:-

- www.books.google.co.in
- www.education.go.ug/guidance
- http://encyclopedia2.thefreedictionary.com
- www.careersteer.com

- www.lotsofessays.com
- www.careerstrides.com
- www.wikipedia.org/wiki

13.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. निर्देशन कार्यक्रम के संगठन से क्या तात्पर्य है तथा निर्देशन कार्यक्रम के उद्देश्यों एवं स्वरूप की विस्तृत चर्चा कीजिए?
2. शिक्षा को विभिन्न स्तर पर निर्देशन सेवाओं को आयोजन का क्या महत्व है। तथा प्राथमिक स्तर पर निर्देशन सेवा के आयोजन के विशिष्ट उद्देश्य तथा क्रियाविधि को स्पष्ट कीजिए?
3. पूर्व माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर निर्देशन सेवाओं का आयोजन कैसे करेंगे तथा इन स्तर पर आयोजित निर्देशन सेवाओं में अन्तर स्पष्ट कीजिए?
4. निम्न माध्यमिक तथा उच्च माध्यमिक स्तर पर निर्देशन सेवाओं के आयोजन का तुलनात्मक अध्ययन किजिए तथा उच्च शिक्षा स्तर पर निर्देशन सेवा के विशिष्ट उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए?

इकाई 14 - समायोजन के मनोवैज्ञानिक आधार, समायोजन में अभिप्रेरणा और प्रत्यक्षीकरण की भूमिका

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 समायोजन के प्रकार
  14.3.1 समायोजन के अन्य प्रकार
14.4 समायोजन के मनोवैज्ञानिक आधार (रक्षा युक्तियां)
14.5 समायोजन में प्रेरणा का योगदान
  14.5.1 प्रेरणा एवं व्यवहार
  14.5.2 शारीरिक प्रेरणायें
  14.5.3 मनोवैज्ञानिक प्रेरणायें
  14.5.4 प्रेरणाओं का सामाजिक स्तर
14.6 प्रत्यक्षीकरण
  14.6.1 समायोजन में प्रत्यक्षीकरण का महत्व
14.7 सारांश
14.8 सन्दर्भ ग्रन्थ
14.9 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हमारे समाज में, परिवार में तथा आस-पास के वातावरण में जो व्यक्ति पूर्णतः समायोजित होता है अथवा अपने को वातावरण के अनुसार समायोजित कर लेता है सामान्य व्यक्ति कहलाता है। समायोजन के अनेक आधार हैं, जिन व्यक्तियों में सफलता प्राप्त करने के लिये बाधाओं का मुकाबला प्राप्त करने की क्षमता है जो प्रतिकूल दशाओं में भी अपना मानसिक संतुलन को बनाये रखते हैं तथा अपने को परिस्थितियों के अनुकूल बना लेते हैं। उन्हें निश्चित ही आत्म संतोष के साथ सफलता प्राप्त होती है। असंतुलित व्यक्तित्व के लिये सुरक्षा प्रक्रियाओं (मनोरचनाओं) का सहारा समायोजन का मुख्य आधार है जिसके द्वारा विपरीत परिस्थितियों पर

नियंत्रण पाया जा सकता है तथा मानसिक असंतुलन को नियंत्रण में रखते हुये संतुलित जीवन जिया जा सकता है। जब लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में व्यवधान आते हैं तो व्यक्ति के मन में मस्तिष्क में अस्त-व्यस्तता (असुंतलन) की स्थिति आ जाती है तथा बाधाओं को दूर करने में जब अपने को असमर्थ पाता है तो उसके मन में हीनता (Inferiority) क्रोध (Anger) अथवा निराशा (Pessimism) की भावना उत्पन्न होती है जिससे उसके व्यक्तित्व में असंतुलन पैदा हो जाता है तथा इनसे बचने के लिये व्यक्ति सुरक्षा युक्तियों (Defence Mechanism) का सहारा लेता है जिससे उसका संतुलन बना रहे एवं समाज या वातावरण में उपयुक्त रूप से अपने आपको समायोजित कर सके। जो कि उसके समायोजन के प्रमुख मनोवैज्ञानिक आधार है।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. समायोजन एवं समायोजन के प्रकार के बारे में समझ सकेंगे।
2. अपने वातावरण में समायोजन के लिये रक्षा युक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
3. समायोजन में प्रेरणा का महत्व एवं उसकी भूमिका के बारे में समझ सकेंगे।
4. प्रत्यक्षीकरण एवं समायोजन में प्रत्यक्षीकरण का महत्व समझ सकेंगे।
5. अध्ययन के पश्चात वे अपने आप को अच्छे तरीके से समायोजन करने का प्रयास कर सकेंगे।

समायोजन का तात्पर्य सामाजिक वातावरण की उन प्रतिक्रियाओं से है जो व्यक्ति के ऊपर थोप दी जाती हैं। वे आवश्यकतायें जिनके लिये व्यक्ति प्रतिक्रिया करता है, वाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार की हो सकती हैं। मनोवैज्ञानिकों ने दो महत्वपूर्ण दृष्टियों से समायोजन पर विचार किया है। एक दृष्टि में समायोजन एक उपलब्धि है तथा दूसरी दृष्टि में यह प्रक्रिया है। पहला दृष्टिकोण समायोजन की गुणवत्ता तथा दक्षता पर बल देता है तथा दूसरा प्रक्रिया को प्रमुख मानता है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपने वाह्य वातावरण के साथ सामंजस्य स्थापित करता है।

समायोजन शब्द काफी सामान्य और प्रचलित अर्थ है। इसके अर्थ को और अच्छी तरह स्पष्ट रूप से समझने के लिए हमें विभिन्न मनोवैज्ञानिकों द्वारा दी गई निम्न परिभाषाओं पर विचार करना अधिक उपयुक्त होगा:

1. एल.एस.शेफर (L.S. Shaffer)- ‘‘समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कोई जीवधारी अपनी आवश्यकताओं तथा इन आवश्यकताओं की संतुष्टि से संबंधित परिस्थितियों में संतुलन बनाये रखता है’’

Adjustment is the process by which living organism maintains a balance between its need and the circumstances that influence the satisfaction of these needs.

2. **गेट्स, जैरसिल्ड एवं अन्य** ;ळमजेए श्रमतेपसक ्रदक व्जीमतेद्ध - ''समायोजन एक ऐसी सतत् प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपने व्यवहार में इस प्रकार से परिवर्तन करता है कि उसे स्वयं तथा अपने वातावरण के बीच और अधिक मधुर संबंध स्थापित करने में मदद मिल सके''।

   Adjustment is a continual process by which a person varies his behaviour to produce a more harmonious relationship between himself and his environment. **Gates, Jersild and Others**

14.3 समायोजन के प्रकार (Types of Adjustment)

सब प्रकार से समायोजित व्यक्ति वह होता है जो पहले तो अपने आप से ही संतुष्ट एवं समायोजन हो तथा अपने चारों ओर के वातावरण या परिवेश से उसका उचित तालमेल हो। समायोजन के क्षेत्र व्यक्ति के इर्द-गिर्द ही घूमती है।

व्यक्तिगत समायोजन **Personal Adjustment**

i. शारीरिक विकास एवं स्वास्थ्य संबंधी समायोजन (Adjustment to Physical Development and Health)
ii. मानसिक विकास एवं स्वास्थ्य समायोजन (Adjustment with Regard to Mental) Development and Health)
iii. संवेगात्मक समायोजन
iv. लैंगिक समायोजन
v. व्यक्तिगत आवश्यकताओं से संबंधित समायोजन

सामाजिक समायोजन (Social Adjustment)

i. घर परिवार से समायोजन (Home and Family Adjustment)
ii. भिन्न एवं संबंधियों से समायोजन (Adjustment with Friend and Relatives)
iii. पड़ौसियों तथा समुदाय के अन्य सदस्यों से समायोजन(Adjustment with Neighbours and Other Members of the Community)

व्यावसायिक समायोजन (Occupational Adjustment)

14.3.1 कुछ अन्य प्रकार Some Other Types

i. रचनात्मक समायोजन (Constructive Adjustment)

ii. स्थानापन समायोजन (Substitute Adjustment)

iii. मानसिक मनोरचनायें (Mental Mechanism)

1. **रचनात्मक समायोजन (Constructive Adjustment)-** जब कोई बालक लक्ष्य की प्राप्ति में कठिनाई का अनुभव करता है, तो वह कोई रचनात्मक काम करके सफलता प्राप्त करने की चेष्टा करता है। यदि बालक आन्तरिक परीक्षा में कम अंक प्राप्त करता है, तो वह रचनात्मक कार्य करके सफलता प्राप्त करने का प्रयास करता है। वह किसी मेधावी मित्र की सहायता लेकर कठिनाई को दूर करता है, अथवा पुस्तकालय में बैठकर भिन्न-भिन्न पुस्तकों को लेकर नोट्स तैयार करता है।
2. **स्थानापन समायोजन (Substitute Adjustment)-** जब कोई बालक किसी एक क्षेत्र में सफलता नहीं प्राप्त कर सकता, तो वह किसी दूसरे क्षेत्र में सफलता प्राप्त करके समायोजन कर लेता है। जब बालक पढ़ाई में अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं कर पाता, तो वह खेलों में प्रवीणता प्राप्त कर समायोजन कर लेता है।
3. **मानसिक मनोरचनायें (Mental Mechanism)-** ब्राउन ने मानसिक मनोरचनाओं की परिभाषा इस प्रकार से की है:''मनोरचनायें वे चेतन और अचेतन प्रक्रियाएं हैं, जिनमें आन्तरिक संघर्ष कम हो जाता है या समाप्त हो जाता है।''

   ब्राउन ने उन मनोरचनाओं का वर्णन करते हुए लिखा है कि उनके द्वारा इदम् (Id),अह् (Ego) और नैतिक मन (Super Ego) के बीच चेतन या अचेतन संघर्ष या अर्न्तद्वन्द भी समाप्त हो जाता है।

14.4 समायोजन के लिये सुरक्षा प्रक्रियायें(मनोवैज्ञानिक आधार)

सुरक्षा प्रक्रियायें समायोजन स्थापित करने में केवल आंशिक रूप से सहायक होती हैं। इनके सहारे समायोजन स्थापित करने में व्यक्ति जीवन के यथार्थ से दूर हो जाता है। इनका अत्यधिक उपयोग मानसिक रोग का कारण बन जाता है। सुरक्षा युक्तियों द्वारा व्यक्ति को दुखद अनुभूतियों से बहुत कुछ छुटकारा मिलता है तथा परिस्थितियों से आंशिक रूप से समायोजन स्थापित करने में सहायता मिलती है। लगभग सभी व्यक्ति किसी न किसी रूप में कमोवेश इन युक्तियों का प्रयोग करते हैं ये युक्तियां व्यक्ति का आन्तरिक संतुलन बनाये रखने में सहायक होती है। किन्तु जब इनका अत्यधिक प्रयोग होने लगता है, तब ये साधन न होकर साध्य हो जाती हैं। इससे व्यक्ति का व्यवहार असामान्य

हो जाता है, उसमे कुसमायोजन उत्पन्न होने लगता है। व्यक्ति को अपने वातावरण में समायोजन के लिये निम्न रक्षा युक्तियों का आधार लेना पड़ता है जिससे वह समायोजित हो ये निम्न प्रकार हैं:

युक्तिकरण (औचित्य स्थापन्न) Rationalisation

इस सुरक्षा प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार के कारणों के स्थान पर जो उसे मान्य नहीं होते ऐसे कारण ढूंढ निकालता है जो उसे मान्य हो । इस मनोरचना में व्यक्ति अपने आत्मसम्मान और सामाजिक एवं व्यक्तिगत प्रतिष्ठा की रक्षा करता है। यह अचेतन मन का सुरक्षात्मक प्रयास है। यह ऐसी युक्ति है जिसमें व्यक्ति अपने तर्क द्वारा अपने को सदैव उचित ठहराकर अपने को समायोजित करने का प्रयास करता है। यह एक आवरण है जिसमें मनुष्य अपनी बुराइयों को छिपाने का प्रयास करता है और त्रुटियों की झूठे कारणों के द्वारा सही ठहराने का प्रयास करता है। इसके द्वारा अचेतन का तनाव कम होता है।

"By rationalization we mean the invention of consciously acceptable motives by the ego to cover up those unconscious motives, which it cannot accept, rationalization means to make rational." (J.F. Brown op, cit, p-173).

उदाहरण - कोई व्यक्ति परीक्षा में फेल होने पर कहता है प्रश्न-पत्र ही पाठ्यक्रम से बाहर का था इत्यादि।

उन्नयन या उदात्तीकरण Sublimation

यह वह उक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी मूल इच्छाओं की अतृप्ति के कारण उत्पन्न होने वाली कुण्ठाओं की तृप्ति उन कार्यों या लक्ष्यों से करता है जिनकी स्वीकृति समाज ने दे रखी है। यह वह मनोरचना है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी मूल इच्छाओं की अतृप्ति के कारण उत्पन्न होने वाली कुण्ठाओं की तृप्ति उनके कार्यों या लक्ष्यों से करता है जिसकी स्वीकृति समाज ने दे रखी है।

फिशर का कथन है कि मूल प्रवृत्तियों अथवा प्रेरणों को नैतिक, सामाजिक, साहित्यिक विषयों की ओर प्रेरित करने की क्रिया ही उदात्तीकरण है। उदाहरणस्वरूप-गोस्वामी तुलसीदास ने अपने वासनात्मक प्रेम को साहित्य की ओर मोड़ दिया और उन्होंने रामचरित मानस जैसे अद्भुत महाकाल की रचना की, जिसमें पग-पग पर उनका श्रीराम-प्रेम झलकता है।

क्षतिपूर्ति Compensation

किसी क्षेत्र में अपनी कमी की पूर्ति के लिये व्यक्ति उसी क्षेत्र में या अन्य किसी क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करने का प्रयास करता है जिसमें उसमें हीनता की भावना न आने पाये। कुरूप स्त्री-पुरुष अपनी शारीरिक हीनता की भावना को छिपाने के लिये शानदार, उच्च कोटि के कीमती कपड़ों एवं श्रृंगार

का सहारा लेते हैं, जो अध्यापक कक्षाओं में पढ़ाते-लिखाते नहीं वे छात्रों के साथ दोस्तों सा व्यवहार करता है, जो बुद्धि में पिछड़े होते हैं वे परिश्रम के द्वारा सफलता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार क्षतिपूर्ति वह मनोरचना है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी अवदमित इच्छाओं की तृप्ति किसी अन्य व्यवहार के द्वारा करता है।

James Drever said a mechanism by which the individual covers up a weakness or defect by exaggerating the manifestation of a relatively less defective, or more desirable characteristics.

इस प्रकार क्षतिपूर्ति की मनोरचना के द्वारा व्यक्ति अपनी उस भावना की रक्षा करता है जो उसे हीन और अनुपयुक्त कर (inferior and inadequate) होने की अनुभुति कराती है। यह प्रक्रिया सदैव लाभदायक नहीं होती है।

स्थानान्तरण Transfer

इस मनोरचना में प्रेम या घृणा की संवेगात्मक भावनायें एक व्यक्ति से हटकर दूसरे व्यक्ति पर केन्द्रित हो जाती है। कभी-कभी आक्रामक प्रवृत्तियों का भी स्थानान्तरण हो जाता है। यह मनोरचना उस समय अधिक महत्वपूर्ण हो जाती है जबकि परिवार या समाज के द्वारा व्यक्ति के जीवन में कामशक्ति से संबंधित अनेक कुण्ठायें उत्पन्न होने लगती हैं। ब्राउन ने कहा है, Transference signifies the shifting of the feeling of love-the erotic cathexis from one object or person to another.

तादात्म्य Identification

इस सुरक्षा प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति अपने विचारों तथा क्रियाओं को दूसरों के अनुरूप बनाने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति जिससे तादात्म्य स्थापित करता है उसकी विशेषताओं या गुणों का अनुकरण करता है। छोटे बच्चे इसी प्रक्रिया द्वारा अपने माता-पिता एवं शिक्षकों के गुणों तथा विशेषताओं का अनुकरण करते हैं।

ब्राउन का विचार है कि तादात्म्य एक ऐसी मानसिक रचना है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने अहं को दूसरे के सांचे में ढ़ालने का प्रयास करता है और अपने व्यक्तित्व को उस व्यक्ति के अनुकूल बनाता है जिस पर उसे विश्वास होता है उसने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किये -

Identification refers to the mechanism through which a person attempts the mould his own ego or self after that someone else or believes himself to have some other person's personality.

तादात्म्य की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्तित्व का विकास होता है। अहं की भावना बलवती होती है। अपने आदर्श व्यक्ति की प्रशंसा करके उसके अनुकूल आचरण करता है। अपनी हीनता की भावना और तनावपूर्ण स्थिति से मुक्ति पाता है। अनेक कुण्ठाओं का निराकरण करता है।

कल्पना Fantasy

वास्तविक जीवन की निराशाजनक परिस्थितियों तथा कुण्ठा से बचने के लिये व्यक्ति दिवास्वप्न (Day dreaming) का सहारा लेता है। कल्पना लोक का निर्माण करके उसमें विचरण करके अतृप्त इच्छाओं की तृप्ति करता है तथा निराशा एवं कुण्ठापूर्ण स्थिति से कुछ समय के लिये छुटकारा पाता है एवं समायोजन करता है। व्यक्ति मन में हवाई किले बनाने लगता है। अन्तर्द्वन्द एवं कुण्ठा की स्थिति में व्यक्ति अपना मानसिक संतुलन बनाये रखने की चेष्टा करता है। परीक्षा में कम अंक लाने वाला किशोर दिवास्वप्न लेता है कि वह विश्वविद्यालय मे प्रथम आया है, उसे पुरुस्कार मिल रहे हैं और उसकी जय-जयकार हो रही है।

सुलह Compromise

जब किसी लक्ष्य प्राप्ति में व्यक्ति के सामने कोई कठिनाई होती है वह उस कठिनाई पर विजय प्राप्त करने के लिये सुलह करता है। उदाहरण-बच्चा यदि टॉफी चाहता है एवं पैसे नहीं हैं तो वह माँ या बाप जो भी टॉफी खरीद कर दे सकता है उसकी खुशामद करता है तथा घर में किसी को राजी कर पैसे प्राप्त करता है।

अपने आपको हटा लेना Withdrawl

यदि विजय या लक्ष्य प्राप्ति में कठिनाई महसूस कर रहा है या पहुंच के बाहर है तो वह वहां से अपने आपको हटा लेता है।

आक्रामक Aggression

कभी-कभी लक्ष्य प्राप्ति हेतु आक्रामकता का सहारा भी लिया जाता है, जब देखता है कि चीज का प्राप्त करने में कठिनाई हो रही है और खुशामद से भी वस्तु प्राप्त नहीं हो पा रही है तो वह छीन कर वस्तु प्राप्त करने की कोशिश करता है एवं रोना-पीटना भी शुरू कर सकता है।

दमन Repression

व्यक्ति की जो इच्छायें या आवश्यकतायें पूर्ण नहीं होती, उन्हें अचेतन मन में दबा दिया जाता है, इससे आंशिक रूप में यथार्थ जीवन में समायोजन स्थापित हो जाता है किन्तु यदि इस प्रकार दमन अधिक किया जाय तो दमित इच्छायें अचेतन मन में एकत्र होकर विस्फोट कर सकती हैं जो

मानसिक रोग को जन्म देता है। अवदमन एक ऐसी सुरक्षात्मक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा की जाती है। अवदमन के द्वारा चिन्ताओं से कुछ हद तक मुक्ति मिल सकती है। यह अवदमन एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है।

कोलमैन-मनोरचना वह है जिसके द्वारा खतरनाक इच्छायें और असह्य स्मृतियों आदि चेतना से वहिष्कृत कर दी जाती है। फ्रायड का मत है कि दमित सामग्री अचेतन मन में पहुंच जाती है और व्यकित की स्थायी विस्मृति बन जाती है।

प्रक्षेपण Projection

इस सुरक्षा प्रक्रिया में व्यक्ति अपनी भावनाओं तथा दोषों को दूसरों पर आरोपित करता है। अपने दोषों या त्रुटियों के लिए दूसरों को दोष देना एक सामान्य प्रवृत्ति है इसके द्वारा अचेतन मन अपने दोषों तथा कमियों को दूसरे के सिर मढ़कर अपना भार हल्का करता है। Page ने प्रक्षेपण की परिभाषा इस प्रकार दी है।

“Attributing to and observing to others one’s own impulse and traits is called projection”.

उदाहरण - रिश्वत लेने वाला व्यक्ति कहता है रिश्वत तो बड़े-बड़े मंत्री एवं अफसर भी लेते हैं इत्यादि।

रूपान्तरण Conversion

रूपान्तरण वह मनोरचना है जो आधारभूत इच्छाओं की कुण्ठाओं से संबंधित अवदमित ऊर्जा (Repressed Energy) को शारीरिक रोगों के लक्षणों में बदल लेती है।

Conversation is the mechanism through which repressed energy connected with the frustration of basic drives is changed (converted) into the function symptoms of bodily disease.

प्रतिकरण या प्रतिक्रिया निर्माण Reaction Formation

बहुत सी ऐसी अतृप्त इच्छायें होती हैं जिनसे उत्पन्न दुखद अनुभूति से बचने के लिये व्यक्ति ठीक इनकी विरोधी वृत्तियों को चेतन स्तर पर अपना लेता है जिन मूल प्रवृत्तियों को अहं स्वीकार नहीं करता है, उनके दुख से बचने के लिये व्यक्ति अन्य विरोधी मूल प्रवृत्तियों को अपनाता है जैसे-जब अहं कामुकता की मूल प्रवृत्ति को स्वीकृति नहीं देता है तब व्यक्ति आदर्श की बात करने लगता है। प्रतिकरण अचेतन मन की प्रक्रिया है। यह अवदमन की प्रक्रिया को शक्ति प्रदान करती है। प्रतिकरण के द्वारा अनेक चरित्र विकृतियों के कारण और लक्षणों को आसानी से समझा जा सकता है। इस

प्रकार अचेतन मन की इच्छाओं के प्रति विरोध प्रकट करने के लिये जिस व्यवहार का प्रदर्शन किया जाता है वह प्रतिकरण का ही रूप होता है।

प्रतिगमन Regression

जब व्यक्ति अपनी जीवन परिस्थितियों से असंतुष्ट रहता है और सुख एवं असंतोष के अभाव में सहन नहीं कर पाता है तो प्रतिगमन की स्थिति उत्पन्न होती है। इस युक्ति के अन्तर्गत कुण्ठा से उत्पन्न तीव्र दुखद अनुभूति से मुक्ति पाने के लिये व्यक्ति अपने जीवन के पुराने अनुभवों की ओर लौट लड़ता है। वयस्क बच्चों सा व्यवहार करने लगता है, जब वर्तमान परिस्थिति असहनीय हो जाती है तो व्यक्ति शैशवकाल या बाल्यकाल के विकास के सोपानों की पुनरावृत्ति करने लगता है जिससे उसे परिस्थिति से छुटकारा मिले। प्रतिगमन के कारण प्रौढ़ व्यक्ति अपने मानसिक स्तर पर होने वाली प्रक्रियाओं का बाल्यावस्था की प्रक्रियाओं से समायोजन करता है। प्रतिगमन की मनोरचना के द्वारा व्यक्ति के मानसिक चिंतन के प्रवाह की दिशा को पीछे की ओर मोड़ दिया जाता है। इस प्रकार प्रतिगमन में व्यक्ति वर्तमान की अवस्था से बाल्यावस्था में लौटकर अपना समायोजन करता है।

संक्षेप में प्रतिगमन अचेतन ढंग का पलायन है। इसके द्वारा आत्मसम्मान की रक्षा की जा सकती है। यह मनोरचना मानसिक परिपक्वता में बाधक है। मनोस्नायुविकृतियों और मनोवृत्तियों में इसका महत्व है।

विस्थापन Displacement

इस प्रक्रिया में व्यक्ति अपने किसी संवेग इच्छा एवं भावनाओं को जिनका संबंध वास्तविक रूप में संबंधित व्यक्तियों या पदार्थों से होता है, वहां से हटाकर नयी स्थिति पर लक्षित कर लेता है, पिता जब अपने पुत्र को पीटता है तो वह माँ के पास जाकर या तो खिलौने को तोड़ता है या अपने छोटे भाई-बहिन को धक्का देकर गिरा देता है। यहां बालक ने अपने क्रोध को जो पिता के प्रति उत्पन्न हुआ था खिलौने या छोटे भाई-बहिन पर उतारा। इस प्रकार के बदले हुये संवेग की स्थिति को विस्थापन कहते हैं।

यह प्रक्रिया अचेतन एवं चेतन दोनों प्रकार की स्थिति में काम करती है, बहुत सी भय एवं चिन्तायें, अतृप्त इच्छायें तथा विचलित भावनायें विस्थापन की प्रक्रिया का मुख्य कारण होती है। जब विवशता के कारण संवेगों की अभिव्यक्ति हम किसी व्यक्ति पर प्रत्यक्ष रूप से नहीं कर पाते तो उसकी अभिव्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर परोक्ष रूप से करते हैं।

अर्न्तनिवेश Introjections

इस प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति दूसरों के गुणों तथा विशेषताओं को अपने ही गुण अथवा विशेषताये समझने लगता है। यह तादात्मीकरण से भिन्न है। उदाहरण मनोविदलता (Schizophrenia) के रोगी में जब इस प्रकार के व्यामोह (Delusions) उत्पन्न हो कि वह अपने को देश के सबसे बड़े उद्योगपति,

नेता, कलाकार, साहित्यकार आदि स्वयं समझने लगे तो इस प्रकार की स्थिति का अर्न्तनिवेश कहते हैं। इस मनोरचना के द्वारा परम् अहम् ; (Super Ego) का विकास होता है यह समायोजन में सबसे अधिक सहायक होती है।

14.5 समायोजन में प्रेरणा की भूमिका (Role of Motivation in Adjustment)

प्रेरणा (Motivation) शब्द की उत्पत्ति व्यवहार से प्रदर्शित करने के लिये साधारण भाषा में हुयी है। मनोविज्ञान में इस शब्द का अर्थ और प्रयोग कुछ अलग प्रकार से होता है। मनोविज्ञानी यह जानने का प्रयत्न करता है कि व्यवहार क्या होता है। व्यवहार की उत्पत्ति मनुष्य की जीने की इच्छा पर आश्रित रहती है। सभी प्राणियों में बहुधा यह कहा जाता है कि जीने की इच्छा एक प्रधान और महत्वपूर्ण व्यापक प्रेरक है, किन्तु मनोविज्ञान यह मानकर चलता है कि मनुष्य में जीने की इच्छा ही प्रथम नहीं होती है, बल्कि वातावरण के साथ सक्रिय समायोजन बनाये रख जीने के लिये संघर्ष करना ‘जीने की इच्छा से कहीं अधिक आवश्यक है।

यदि व्यक्ति वातावरण से सही एवं स्वस्थ समायोजन नहीं कर पाता है तो उसके व्यक्तित्व में असमायोजन की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। व्यावहारिक रूप से यदि विभिन्न प्रकार के व्यक्तित्व की एक सूची तैयार की जाय तो वह सूची कभी भी पूर्ण नहीं की जा सकेगी जितने गुण होते हैं उतने ही व्यक्तित्व होते हैं कुछ गुणी हैं, कुछ अवगुणी (समाज द्वारा निर्धारित मानकानुसार) कुछ समायोजित है, कुछ असमायोजित। दोनों प्रकार के व्यक्तित्व का विकास अपने ढंग से होता है।

व्यक्तित्व विकास के मुख्य स्रोत तीन हैं:

i. जैवकीय प्रेरणा (Biological Motivation)
ii. मनोवैज्ञानिक प्रेरणा (Psychological Motivation)
iii. सामाजिक प्रेरणा (Social Motivation)

अन्य शब्दों में कह सकते हैं कि किसी समायोजित व्यक्तित्व का विश्लेषण करने के लिये उपरोक्त तीनों के स्तर की जानकारी अति आवश्यक है।

14.5.1 प्रेरणा एवं व्यवहार

व्यवहार की भिन्नता व्यक्तित्व की प्रकृति पर आधारित होती है और व्यक्तित्व की गतिशीलता प्रेरकों (Motives) पर प्रत्येक व्यक्तित्व के विकास में प्रेरक की शक्ति बुनियाद का कार्य करती है। प्रेरकों की निष्क्रियता असंतुलन और अतृप्ति मानव व्यवहार के लिये असमायोजन पैदा कर मानव व्यवहार को छिन्न-भिन्न कर देती है जिसके कारण मानसिक अवस्था विकृतपूर्ण हो जाती है। इस

प्रकार मानव जीवन में समायोजन के लिये प्रेरकों का सबसे अधिक महत्व है। प्रेरक सम्पूर्ण व्यवहार के संचालक है। बिना प्रेरणों के मनुष्य निष्क्रिय रहता है। मानव प्रेरणा में मनुष्य की मूलभूत आवश्यकतायें हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति होते रहने के कारण व्यक्ति अपने वातावरण के साथ समायोजन बनाये रखता है। ये आवश्यकतायें दो प्रकार की होती हैं। संतुलन बनाये रखने के लिये मनुष्य जीवन में प्रेरणाओं की बहुत बड़ी भूमिका होती है।
आवश्यकतायें दो प्रकार ही होती हैं:

i. जैविक आवश्यकतायें (Biological Needs)
ii. मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें (Psychological Needs)

मनोवैज्ञानिक भाषा में मूलभूत आवश्यकतायें प्रेरणाओं का ही स्वरूप होती हैं। शारीरिक आवश्यकतायें जैसे भूख, प्यास, काम नींद आदि जैविक आवश्यकतायें कहलाती हैं। इन शारीरिक आवश्यकताओं को जैविक प्रेरणाओं के नाम से भी पुकारा जाता है। इस प्रकार जैविक स्तर पर आवश्यकता एवं प्रेरणा में कोई अन्तर नहीं होता है। कोलमैन ने आवश्यकता को निम्न वर्गों में बांटा है, जो व्यक्ति के समायोजन में भूमिका निभाती है।

i. आंतरांग आवश्यकतायें (Visceral Needs) - भोजन, पानी, ऑक्सीजन, नींद, मल-मूल निष्कासन आदि।
ii. सुरक्षा (Safety) - शारीरिक क्षय एवं हानिक से बचने के लिये सुरक्षात्मक आवश्यकतायें
iii. काम (Sex) - जननेन्द्रियों द्वारा उदित काम वासना की तृप्ति एवं कामोत्तेजना।
iv. संवेदी तथा गतिवाही (Sensory and Motor) - जो शारीरिक कार्यों को समुचित रूप से संचालित करती है।

14.5.2 शारीरिक प्रेरणायें (Psychological Motivation)

आन्तरिक प्रेरक बिना सीखे हुये स्वाभाविक प्रेरक होते हैं। आन्तरिक प्रेरणायें वे शारीरिक आवश्यकतायें हैं जिनको लेकर व्यक्ति संसार में जन्म लेता है। मनोविज्ञान की भाषा में इनको जन्मजात प्रवृत्ति कहा जा सकता है। ये प्रेरणायें प्राण रक्षा एवं सामान्य जीवन मे व्यक्ति को समायोजित करती हैं, ये अत्यन्त आवश्यक हैं। ये भिन्न हैं।

1. **लैंगिक प्रेरक (Sex Motives)** -शारीरिक संतुलन बनाये रखने के लिये और मानसिक क्रियाओं की सामान्यता के लिये कामेच्छा संबंधी प्रेरक जीवन हेतु महत्वपूर्ण अंग हैं। फ्रायड एवं उनके अनुयायियों ने काम शक्ति को एक व्यापक प्रेरक माना है। जीने की इच्छा काफी सीमा तक प्रेरणा का ही रूप है।
2. **भूख प्रेरक (Hunger Motives)** -भूख एक ऐसी भयानक स्थिति है जिसके द्वारा व्यक्ति का शारीरिक एवं मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है। भूख एक शारीरिक अवस्था है। भूख से

प्राणी चिड़चिड़ा हो जाता है। यह एक ऐसी प्रेरणा है जो संवेगात्मक है। भूख के कारण अनेक शारीरिक परिवर्तन होते हैं।

3. **प्यास प्रेरक (Thrust Motives)**- जीव के लिये भूख जितनी आवश्यक स्थिति है, प्यास भी उससे अधिक मानी जाती है। यदि कुछ समय जीवन को पानी न मिले जो उसके प्रत्येक अंग में बेचैनी एवं तनाव उत्पन्न होता है। पानी की कमी से कोशकीय क्रियायें असंतुलित हो जाती हैं।
4. **अन्य मूलभूत प्रेरणात्मक दशायें (Other Basic Motivational Condition)**- प्रेरणात्मक व्यवहार में वह एक विशेषता पायी जाती है कि शारीरिक अंग, जो प्रेरणाओं के कारण कार्य करते हैं, जब तक अपने लाभ की प्राप्ति नहीं करपाते तब तक निरन्तर उनकी क्रियायें चलती रहती हैं।

   प्रेरणात्मक शक्ति मनुष्य के व्यवहार में कार्य कर रही हैं या नहीं, यह इस बात का प्रमाण, प्राणी की बैचेनी से मिलता है। वह अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये जिस प्राणी में जितनी ज्यादा बेचैनी होगी उसके अन्दर की प्रेरणा की मात्रा भी उतनी ही अधिक कार्य करेगी।

14.5.3 मनोविज्ञान प्रेरणायें (Psychological Motivation)

शारीरिक आवश्यकतायें मानव जीवन की बुनियादी प्रेरणायें हैं। लेकिन मनोवैज्ञानिक प्रेरणायें भी महत्वपूर्ण हैं। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति यदि होती रहे तो व्यक्ति स्वस्थ बना रहता है। परन्तु मन की आवश्यकताओं की तृप्ति न होने के कारण मानसिक विकृतियां उत्पन्न होने लगती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ये प्रेरणायें महत्वपूर्ण हैं। कुछ महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रेरणायें निम्न हैं जो समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

1. **प्रेम (Love)** -व्यक्ति की जन्मजात प्रवृत्तियों में सबसे महत्वपूर्ण प्रेम की प्रकृति है। जन्म से मृत्यु तक वह प्रेम दूसरों से तथा दूसरे उसे प्रेम करें ऐसी आकांक्षा रखता है। फ्रायड ने प्रेम को मूल प्रवृत्ति माना है। यह एक ऐसी प्रेरणा है जो मनुष्य को जीने के लिए प्रेरित करती है। जब भी प्रेम रूपी प्रेरणा मन्द पड़ती है वह असंतुलित होकर असमायोजित हो जाता है। कुल मिलाकर प्रेम एक ऐसी प्रेरणा है जो व्यक्ति को समायोजन में मदद करती है।
2. **आत्म गौरव (Self-Esteem)**- व्यक्ति अपनी मान-मर्यादा, प्रतिष्ठा एवं सम्मान को सुरक्षित रखने के लिये सब कुछ कर सकता है। वह हार या दूसरे के सामने हीन नहीं दिखना चाहता। वह सदैव आत्म सम्मान के साथ जीना और उसे बरकरार रखना चाहता है।
3. **सामाजिक प्रतिष्ठा (Social Approval)**- प्रत्येक समायोजित व्यक्ति की यह प्रबल इच्छा होती है कि वह अपने समाज में एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के रूप में जाना जाय, इसकी

पूर्ति हेतु वह अपने स्तर से परिश्रम करता है, शिक्षा धन एवं सामाजिक कार्यों में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेता है। वह समाज द्वारा अपने अस्तित्व की स्वीकृति चाहता है।

4. **पर्याप्तता एवं सुरक्षा (Adequacy Competency)-** यह एक ऐसी प्रेरणा है जिसका संबंध मनुष्य की उस सामर्थ्य से होता है जिसके द्वारा वह विपरीत परिस्थितियों और वातावरण के साथ अपना समायोजन बना लेता है। जब उसे यह विश्वास हो जाता है कि वह कठिन परिस्थिति पर विजय प्राप्त कर सकता है तो उसे अनुभूति होती है कि वह एक कुशल और पर्याप्त (उपयुक्त) व्यक्ति है।
5. **सुरक्षा (Secutiry)-** सुरक्षा एक ऐसी प्रेरणा है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने को संतुलित बनाये रखता है। समाज में रहकर वह धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक स्तर पर पूर्णतया सुरक्षित रहना चाहता है। वह स्वतंत्रता चाहता है, खुद को सुरक्षित रखकर सुनिश्चित होना चाहता है।

14.5.4 प्रेरणाओं का सामाजिक स्तर (Social Aspects of Motivations)

समाज की आवश्यकतायें भी महत्वपूर्ण हैं जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार की रूपरेखा निश्चित होती है। मनुष्य समाज में रहकर प्रत्येक विपरीत परिस्थिति में जीता है और समायोजित होने का प्रयास करता है। वह उसकी सामाजिक प्रेरणा का द्योतक है। मनुष्य की कुछ प्रेरणायें तो सदैव वातावरण के द्वारा संचालित और नियमित होती रही हैं, यही कारण है कि समय-समय पर मनुष्य की इच्छा शक्ति में परिवर्तन होता रहता है। समाज में रहकर व उससे प्रभावित होकर अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित करता है। सामाजिक वातावरण में रहकर वह अपने को प्रेरित कर समायोजित करने का प्रयास करता है। प्रायः मनुष्य अपने लक्ष्य का निर्धारण अपनी आवश्यकता के अनुसार नहीं करता बल्कि वह सामाजिक वातावरण से प्रेरित होकर भी जीवन लक्ष्य निर्धारित करता है। सामाजिक मान्यताओं और नियमों के द्वारा मनुष्य के मूल्यों का विकास होता है। वह अपनी मनोवृत्तियों, आदतों और मान्यताओं का आधार सामाजिक आवश्यकताओं को मानता है। मनुष्य सामाजिक वातावरण से प्रेरित होकर अच्छे कार्य करता है।

14.6 प्रत्यक्षीकरण Perception

वुडवर्थ के अनुसार 'वाह्य उद्दीपक के प्रति मस्तिष्क की प्रथम क्रिया संवेदन होती है। प्रत्यक्षीकरण का क्रम संवेदन के बाद आता है।

आइनजैक (Eyensenk, et al. 1972) ने लिखा है कि प्रत्यक्षीकरण वह मनोवैज्ञानिक प्रकार्य है जिसके द्वारा प्राणी वातावरण की स्थिति या परिवर्तन की सूचना ग्रहण करना है या सूचना की प्रोसेस करता है।

प्रत्यक्षीकरण परिस्थिति का अपरोक्ष ज्ञान करने वाली मानसिक प्रक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण बालक के जीवन में अति महत्वपूर्ण इसलिये है कि प्रत्यक्षीकरण के द्वारा ही प्रत्ययों का निर्माण होता है। प्रत्यय बालकों को उसकी विचार क्रिया में सहायता करते हैं। प्रत्ययों का निर्माण बालकों की समझ में बहुत अधिक सहायक है। एक अध्ययन में (H. Haynes, B. L. White and R. Held, 1965) से यह स्पष्ट हुआ कि एक माह आयु के शिशु की आंखों में व्यवस्थापन (Accommodation) अर्थात उद्दीपक की भिन्न दूरी के अनुसार आंखों का समायोजन नहीं पाया जाता है परन्तु दो माह की आयु में यह व्यवस्थापन प्रारम्भ कर देता है। लगभग चार माह की अवस्था तक वह लगभग बड़े व्यक्तियों की भांति व्यवस्थापन कर लेता है।

बालक में उचित प्रत्यक्षीकरण का निर्माण करने वाले माता-पिता अथवा अध्यापक ही हुआ करते हैं। जब प्रत्यक्षीकरण का उद्गम स्थल संवेदना ही है तब यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के उचित व ठीक अनुभव ही बालकों को प्रदान करने चाहिए जिससे उनमें उचित व ठीक संवेदना का ही विकास हो सके। गलत अनुभव अथवा संवेदना गलत दृष्टिकोण या प्रत्यक्षीकरण का सृजन करेंगे। बालक को पुरातत्व, संग्रहालय, ऐतिहासिक इमारतों तथा भ्रमण इत्यादि स्थानों में ले जाकर ज्ञानेन्द्रियों संबंधी शिक्षा देनी चाहिए जिससे उनमें समायोजन ठीक प्रकार से हो सके।

बहुत से प्रत्यक्षीकरण ऐसे होते हैं जिन्हें बालक सुगमता व सरलता से सीख लेता है। उदाहरण के लिए नारंगी का आकार परिणाम, रंग एंव स्वाद आदि के बारे में आसानी से प्राप्त कर लेगा परन्तु गतिगामी वस्तुओं की चाल आदि के विषय में पूर्ण व ठीक प्रत्यक्षीकरण बालक के लिए आसान नहीं होते हैं। इसके लिए वस्तु की एक दूसरे से दूरी का जानना जरूरी है। इसके लिये ठीक व पूर्ण प्रत्यक्षीकरण करने हेतु दीर्घकालीन अनुभव की आवश्यकता पड़ती है। उसकी शिक्षा इसी प्रकार से हो कि वह अपने वातावरण के साथ प्रत्यक्षीकरण कर उचित समायोजन कर सके।

सामाजिक समायोजन के लिये तटस्थ और वस्तुनिष्ठ प्रत्यक्षीकरण की आवश्यकता होती है। व्यवहार की प्रक्रियायें तथा अधिगम, परिपक्वता, संवेदन, प्रत्यक्षीकरण तथा उत्प्रेरणा हमारे जीवन के लिए महत्वपूर्ण है क्योंकि अच्छे समायोजन की प्रक्रिया में इनका योगदान है। व्यक्तियों के बारे में हमारा प्रत्यक्षीकरण कि वे हमारे दृष्टिकोण से किस प्रकार के लगते हैं तथा हम उनके बारे में क्या सोचते हैं। प्रत्यक्षीकरण दूसरों के साथ व्यवहार करने और संबंधों का स्वरूप निश्चित करने में हमारा मार्गदर्शन करता है। दूसरे लोगों के बारे में जैसी जानकारी होती है उसके अनुसार ही उनके प्रति हमारे समायोजन का ढंग होता है।

बाल्यावस्था में प्रत्यक्षीकरण का उद्देश्य वातावरण की घटनाओं और उद्दीपकों को समझना है एवं प्रत्यक्षीकरण करना है। वह मुख्यतः चार प्रकार के उद्दीपकों का प्रत्यक्षीकरण करता है।

i. स्थिर भौतिक वस्तुयें जैसे-वस्तुएं, रंग, गंध आदि
ii. संख्यात्मक घटनायें-जो एक निश्चित समय पर घटित होती हैं। एक व्यक्ति किस प्रकार और कितनी देर में कुर्सी पर बैठता है, कितनी देर में कुर्सी से उठता है आदि।
iii. वस्तुओं के दो आयामों वाले चित्र।

iv. कूट संकेत जैसे-अक्षर, अंक और शब्द आदि।

किशोर अवस्था में प्रत्यक्षीकरण की प्रकृति में कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन होते हैं इसमें विशिष्टता आ जाती है। प्रत्यक्षीकरण अधिक तीव्र (Faster), अधिक दक्ष (Efficient)और अधिक शुद्ध (Accurate)होता जाता है।

14.6.1 प्रत्यक्षीकरण का महत्व

1. प्रत्यक्षीकरण बालक के ज्ञान को स्पष्टतया प्रदान कर उसे समायोजन में मदद करता है।
2. प्रत्यक्षीकरण बालकों के विचारों का विकास करता है।
3. Reyburn के अनुसार प्रत्यक्षीकरण व्याख्या करने की प्रक्रिया है। अतः वह बालक को व्याख्या करने योग्य बनाता है।
4. Reyburn के अनुसार प्रत्यक्षीकरण बालक को ध्यान केन्द्रित करने का प्रशिक्षण देता है।
5. प्रत्यक्षीकरण बालकों को विभिन्न बातों का वास्तविक ज्ञान देता है। अतः उसका परोक्ष ज्ञान प्रभावपूर्ण होता है।
6. प्रत्यक्षीकरण का आधार ज्ञानेन्द्रियां है। अतः बालक की ज्ञानेन्द्रियों को सबल रखने और स्वस्थ रखने का प्रयास करना चाहिए।
7. प्रत्यक्षीकरण बालक की स्मृति एक कल्पना की प्रक्रियाओं को क्रियाशील करता है जैसे किसी मैच को देखने के बाद वह उस पर निबन्ध लिख सकता है।
8. भाटिया के अनुसार प्रत्यक्षीकरण ज्ञान का वास्तविक आरम्भ है, इस हेतु ज्ञान प्राप्ति के लिए ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
9. प्रत्यक्षीकरण के विकास हेतु बालक को उसके आस-पास के वातावरण संग्रहालय प्रसिद्ध इमारतों और अन्य उपयोगी स्थानों को दखने के अवसर देने चाहिए।
10. Dumville के अनुसार प्रत्यक्षीकरण एवं गति में गहरा संबंध है। बालक के प्रत्यक्षीकरण के विकास हेतु शारीरिक गतिविधि (खेलकूद दौड़ भाग) आदि की व्यवस्था करनी चाहिए जिससे वह समायोजन कर सके।
11. प्रत्यक्षीकरण के विकास हेतु स्वयं क्रिया द्वारा ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रोत्साहन देना चाहिए जिससे वह उस प्राप्त ज्ञान से जीवन में संतुलन स्थापित कर सके।

14.7 सारांश

यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि हमारे समाज में, परिवार में तथा आस-पास के वातावरण में जो व्यक्ति पूर्णतः समायोजित होता है अथवा अपने को वातावरण के अनुसार समायोजित कर लेता है सामान्य व्यक्ति कहलाता है। समायोजन का तात्पर्य सामाजिक वातावरण की उन प्रतिक्रियाओं से

है जो व्यक्ति के ऊपर थोप दी जाती हैं। वे आवश्यकतायें जिनके लिये व्यक्ति प्रतिक्रिया करता है, वाह्य एवं आन्तरिक दोनों प्रकार की हो सकती हैं। सब प्रकार से समायोजित व्यक्ति वह होता है जो पहले तो अपने आप से ही संतुष्ट एवं समायोजन हो तथा अपने चारों ओर के वातावरण या परिवेश से उसका उचित तालमेल हो। समायोजन के क्षेत्र व्यक्ति के इर्द-गिर्द ही घूमती है। समायोजन के प्रकार-व्यक्तिगत समायोजन, सामाजिक समायोजन, व्यावसायिक समायोजन एवं कुछ अन्य प्रकार के समायोजन जैसे रचनात्मक समायोजन, स्थानापन्न समायोजन एवं मानसिक मनोरचनायें हैं। समायोजन के लिये सुरक्षा प्रक्रियायें (मनोवैज्ञानिक आधार)-सुरक्षा प्रक्रियायें समायोजन स्थापित करने में केवल आंशिक रूप से सहायक होती हैं। इनके सहारे समायोजन स्थापित करने में व्यक्ति जीवन के यथार्थ से दूर हो जाता है। इनका अत्यधिक उपयोग मानसिक रोग का कारण बन जाता है। सुरक्षा युक्तियों द्वारा व्यक्ति को दुखद अनुभूतियों से बहुत कुछ छुटकारा मिलता है तथा परिस्थितियों से आंशिक रूप से समायोजन स्थापित करने में सहायता मिलती है। व्यक्ति को अपने वातावरण में समायोजन के लिये निम्न रक्षा युक्तियों का आधार लेना पड़ता है जिससे वह समायोजित हो सके, इस प्रकार हैं: युक्तिकरण (औचित्य स्थापन), उन्नयन या उदात्तीकरण, क्षतिपूर्ति, स्थानान्तरण, तादात्म्य, कल्पना, सुलह, अपने आपको हटा लेना, आक्रामक, दमन, प्रक्षेपण, रूपान्तरण, प्रतिकरण या प्रतिक्रिया निर्माण, प्रतिगमन, विस्थापन, अर्न्तनिवेश। समायोजन में प्रेरणा की भूमिका-प्रेरणा शब्द की उत्पत्ति व्यवहार से प्रदर्शित करने के लिये साधारण भाषा में हुयी है। मनोविज्ञान में इस शब्द का अर्थ और प्रयोग कुछ अलग प्रकार से होता है। मनोविज्ञानी यह जानने का प्रयत्न करता है कि व्यवहार क्या होता है। व्यवहार की उत्पत्ति मनुष्य की जीने की इच्छा पर आश्रित रहती है। सभी प्राणियों में बहुधा यह कहा जाता है कि जीने की इच्छा एक प्रधान और महत्वपूर्ण व्यापक प्रेरक है, किन्तु मनोविज्ञान यह मानकर चलता है कि मनुष्य में जीने की इच्छा ही प्रथम नहीं होती है, बल्कि वातावरण के साथ सक्रिय समायोजन बनाये रख जीने के लिये संघर्ष करना 'जीने की इच्छा से कहीं अधिक आवश्यक है। कोलमैन ने आवश्यकता को निम्न वर्गों में बांटा है, जो व्यक्ति के समायोजन में भूमिका निभाती है-आंतरांग आवश्यकतायें-भोजन, पानी, ऑक्सीजन, नींद, मल-मूल निष्कासन आदि। सुरक्षा- शारीरिक क्षय एवं हानिक से बचने के लिये सुरक्षात्मक आवश्यकतायें, काम- जननेन्द्रियों द्वारा उदित काम वासना की तृप्ति एवं कामोत्तेजना, संवेदी तथा गतिवाही-जो शारीरिक कार्यों को समुचित रूप से संचालित करती है। शारीरिक प्रेरणायें-लैगिक प्रेरक, भूख प्रेरक, प्यास प्रेरक एवं अन्य मूलभूत प्रेरणात्मक दशायें, मनोविज्ञान प्रेरणायें-प्रेम, आत्म गौरव, सामाजिक प्रतिष्ठा, पर्याप्तता एवं सुरक्षा तथा सुरक्षा आदि। प्रेरणाओं का सामाजिक स्तर-समाज की आवश्यकतायें भी महत्वपूर्ण हैं जिसके द्वारा व्यक्ति के व्यवहार की रूपरेखा निश्चित होती है। मनुष्य समाज में रहकर प्रत्येक विपरीत परिस्थिति में जीता है और समायोजित होने का प्रयास करता है। बालक में उचित प्रत्यक्षीकरण का निर्माण करने वाले माता-पिता अथवा अध्यापक ही हुआ करते हैं। जब प्रत्यक्षीकरण का उद्गम स्थल संवेदना ही है तब यह आवश्यक है कि विभिन्न प्रकार के उचित व ठीक अनुभव ही बालकों को प्रदान करने चाहिए जिससे उनमें उचित व ठीक संवेदना का ही

विकास हो सके। गलत अनुभव अथवा संवेदना गलत दृष्टिकोण या प्रत्यक्षीकरण का सृजन करेंगे। बालक को पुरातत्व, संग्रहालय, ऐतिहासिक इमारतों तथा भ्रमण इत्यादि स्थानों में ले जाकर ज्ञानेन्द्रियों संबंधी शिक्षा देनी चाहिए जिससे उनमें समायोजन ठीक प्रकार से हो सके। प्रत्यक्षीकरण परिस्थिति का अपरोक्ष ज्ञान करने वाली मानसिक प्रक्रिया है। प्रत्यक्षीकरण बालक के जीवन में अति महत्वपूर्ण इसलिये है कि प्रत्यक्षीकरण के द्वारा ही प्रत्ययों का निर्माण होता है। प्रत्ययों का निर्माण बालकों की समझ में बहुत अधिक सहायक है। एक अध्ययन में से यह स्पष्ट हुआ कि एक माह आयु के शिशु की आंखों में व्यवस्थापन अर्थात उद्दीपक की भिन्न दूरी के अनुसार आंखों का समायोजन नहीं पाया जाता है परन्तु दो माह की आयु में यह व्यवस्थापन प्रारम्भ कर देता है। लगभग चार माह की अवस्था तक वह लगभग बड़े व्यक्तियों की भांति व्यवस्थापन कर लेता है।

14.8 सन्दर्भ ग्रंथ

1. मंगल, एस0के0 (2008): शिक्षा मनोविज्ञान, प्रेंटिस हॉल ऑफ इडिया प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 110001
2. ओझा, राजकुमार (1972): असामान्य मनोविज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, प्रकाशक एवं मुद्रक शिवाजी रोड, मेरठ-2
3. वर्मा, प्रीती एवं श्रीवास्तव डी0एन0 (1984): बाल मनोविज्ञान, बाल विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2
4. पाठक, पी0डी0 (1986-87): शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2
5. शमार्, रामनाथ एवं शर्मा रचना (2004): उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, एटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली।
6. माथुर, एस0एस0: शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-7
7. भाई योगेन्द्र जीत: शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2
8. पचौरी, गिरीश: शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।

14.9 निबंधात्मक प्रश्न

1. समायोजन के प्रकार के बारे में लिखिये।
2. व्युक्तिकरण एवं क्षतिपूर्ति युक्तियों के बारे में लिखिये।
3. शारीरिक प्रेरणाओं से आप क्या समझते हैं?
4. प्रत्यक्षीकरण के बारे में अपने विचार व्यक्त कीजिये।
5. समायोजन के लिये रक्षा युक्तियों (आधार) के बारे में विस्तारपूर्वक लिखिये।
6. समायोजन में प्रेरणा का क्या महत्व है? वर्णन कीजिये।

इकाई 15 - मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की अवधारणा एवं अर्थ, मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के सिद्धान्त तथा प्रभावशाली समायोजन, मानसिक स्वास्थ्य व समन्वित व्यक्तित्व विकास हेतु उसके अनुप्रयोग

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान
15.3.1 मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ एवं परिभाषा
15.3.2 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की विषेशताऐं
15.4 मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता
15.4.1 मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक
15.4.2 बालक के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में शिक्षक की भूमिका
15.5 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ एवं परिभाषाऐं
15.5.1 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के उद्देश्य
15.5.2 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के बारे में प्रमुख तथ्य
15.6 सारांश
15.7 शब्दावली
15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
15.9 संदर्भ ग्रन्थ
15.10 सहायक उपयोगी पाठय सामग्री
15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

15.1प्रस्तावना

शिक्षा का प्रमुख कार्य एवं उद्देश्य व्यक्ति का सर्वागींण विकास करना है। यह कथन है कि स्वस्थ शरीर में स्वस्थ्य मन का वास ही शिक्षा है। व्यक्ति के शरीर में मस्तिष्क का महत्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि व्यक्ति जो भी कार्य करता है वह अपने मस्तिष्क के संकेत पर या मन के अनुसार करता है। जिन लोगों का मस्तिष्क स्वस्थ नहीं रहता वे जीवन की विभिन्न परिस्थितियों का सामना सफलतापूर्वक नहीं कर पाते, वे सदा एक प्रकार से मानसिक परेशानी या उलझन में रहते हैं। इसका कारण मानसिक दुर्बलता या किसी प्रकार का विकार होता है। उन्हें जीवन में पग-पग पर कठिनाइयों, निराशाओं का सामना करना पड़ता है। मानसिक उलझनों के कारण वे समाज में अपने को समायोजित नहीं कर पाते। संसार में वे ही व्यक्ति भौतिक और सामाजिक परिस्थितियों मे अपने को समायोजित कर पाते हैं जिनका मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है। मानव जीवन में शारीरिक स्वास्थ्य के साथ ही मानसिक स्वास्थ्य की ओर ध्यान दिया जाना आवष्यक है। व्यक्तित्व का विकास तभी सम्भव है जब बालक का शरीर और मन पूर्ण रूप से स्वस्थ हो, क्योंकि शरीर और मन का घनिष्ट सम्बंध है।

15.2 उद्देश्य

1. मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
2. मानसिंक स्वास्थ्य का अर्थ, परिभाशाएं व मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की विषेशताओं का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
3. मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता व मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारकों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
4. मानसिक स्वास्थ्य में शिक्षक की भूमिका का ज्ञान कर सकेगे।
5. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ, परिभाषाएं व उद्देश्यो का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
6. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के प्रमुख तथ्यों को जान सकंगे।

15.3 मानसिक स्वास्थ्य और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान Mental Health and Mental Hygiene

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक ऐसा विज्ञान है जो व्यक्तियों में मानसिक स्वास्थ्य (mental Health) को सुदृढ़ रखने तथा मानसिक बीमारी (Mental Illness) न होने देने संबंधित तथ्यों को उजागर करता है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के बारे में हमें अतीत काल में भी चर्चा का प्रसंग मिलता है, परन्तु इसकी वैज्ञानिक शुरूआत किल्फोर्ड बीयर्स (Clifford Bears) द्वारा 1990 में हुई। बीयर्स

येल विष्वविद्यालय (Yale University) के स्नातक थे जो अनावश्यक मानसिक तनाव के कारण आत्महत्या कर लेना चाहते थे, परन्तु उन्हें आत्महत्या नहीं करने दी गई। जब वे मानसिक रूप से स्वस्थ होकर निकले तो उन्होंने अपनी आत्मकथा (Autobiography) 1908 में लिखी, जिसमें उन्होंने अमानवीय व्यवहारों का भी जिक्र किया, जो अस्पताल में उन्हें सहने पड़े थे। इसका परिणाम यह हुआ कि उस समय मानसिक अस्पतालों में रोगियों के साथ मानवीय व्यवहार किये जाने पर एडोल्फ मायर्स (Adolf Meyers) के नेतृत्व में एक आन्दोलन चलाया गया, तभी से मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का विधिवत प्रयोग होने लगा। 1911 में मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के लिए पहला संघ (First Society) की भी स्थापना की गई। सन् 1919 में अमेरिका में स्वास्थ्य विज्ञान के लिए एक राष्ट्रीय संघ का निर्माण किया गया और आगे चलकर अंतर्राष्ट्रीय कमेटी (International Committee) में बदल गया।

15.3.1 मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ (Meaning of Mental Health)

मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ मानसिक रोगों की अनुपस्थिति नहीं है। इसके विपरीत यह व्यक्ति के दैनिक जीवन का सक्रिय और निष्चित गुण है। यह गुण उस व्यक्ति के व्यवहार में व्यक्त होता है, जिसका शरीर और मस्तिष्क एक ही दिशा में साथ-साथ कार्य करते हैं। उसके विचार, भावनाएं और क्रियाएं एक ही उद्देश्य की ओर सम्मिलित रूप से कार्य करती है। मानसिक स्वास्थ्य, कार्य की ऐसे आदतों और व्यक्तियों तथा वस्तुओं के प्रति ऐसे दृष्टिकोणों को व्यक्त करता है। जिनसें व्यक्ति को अधिकतम संतोष और आनन्द प्राप्त होता है। और व्यक्तियों तथा वस्तुओं के प्रति ऐसे दृष्टिकोणों को व्यक्त करता है। जिनमें व्यक्ति को अधिकतम संतोष और आनन्द प्राप्त होता है। व्यक्ति को यह संतोष और आनन्द उस समूह या समाज से जिसका कि वह सदस्य होता है तनिक भी विरोध किये बिना प्राप्त करना पड़ता है। इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य, समायोजन की यह प्रक्रिया है। जिसमें समझौता और सामजस्य, विकास और निरन्तरता का समावेश् रहता है।

मानसिक स्वास्थ्य की परिभाषाएं (Definition of Mental Health)

कार्ल मेंनिगर (Karle Menninger) 1945 के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य अधिकतम खुश् तथा प्रभावशीलता के साथ वातावरण एवं उसके प्रत्येक दूसरे व्यक्तियों के साथ मानव का समायोजन है। यह एक संतुलित मनोदशा, सतर्क बुद्धि, सामाजिक रूप से मान्य व्यवहार तथा खुश्मिजाज बनाये रखने की क्षमता है।''

स्ट्रेज (Strange) 1965 के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य एक ऐसी सीखे गए व्यवहार के वर्णन के अलावा कुछ नहीं है जो सामाजिक रूप से समायोजी होता है और जो व्यक्ति को जिन्दगी के साथ पर्याप्त रूप से अनुकूलन में मदद करता है।''

हेडफील्ड (Healdfield) के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूर्ण सांमजस्य के साथ कार्य करना है।''

लैडेल (Ladel) के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है वास्वविकता के धरातल पर वातावरण से पर्याप्त सांमजस्य करने की योग्यता''

कुप्पूस्वामी (Kupuswami) के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है दैनिक जीवन में भावनाओं, इच्छाओं, महत्वाकांक्षाओं, आदर्षो में सन्तुलन रखने की योग्यता। इसका अर्थ है जीवन की वास्तविकताओं का सामना करने और स्वीकार करने की योग्यता।''

15.3.2 मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की विषेश्ताएं Characteristics of a Mentally Health Person

मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की विषेश्ताएं निम्नलिखित हैं-

i. **आत्मज्ञान Self Knowledge**- मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक प्रमुख विशेषताए यह है कि उसे अपनी प्रेरेणा, इच्छा, भाव, आकांक्षाओं आदि का पूर्ण ज्ञान होता है। वह क्या कर रहा है, क्यों इसमें इस ढंग का भाव उत्पन्न हो रहा है, उसकी आकाक्षाएं क्या हैं आदि-आदि।

ii. **आत्म मूल्यांकन Self Evolution**- मानसिक रूप से स्वस्थ्य व्यक्ति आसानी से अपने गुण-दोष की परख कर लेता है। वह अपने व्यवहार का तटस्थ होकर अध्ययन करता है तथा अपने व्यवहार की परिसीमाओं (Limitation) की परख करता है।

iii. **आत्म श्रद्धा Self Steam-** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में आत्म श्रद्धा काफी होती है, जिसके कारण उसमें आत्मविश्वास (Self Confidence) आत्मबल तथा अपने भावों (Feeling) को स्वीकार करते हुए कार्य करने की क्षमता होती है।

iv. **संतोषनक संबंध बनाएं रखने की क्षमता (Ability to From Satisfying Relationship)** - मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक विषेश्ता यह है कि वह दूसरों के साथ संतोषनक सम्बंध बनाए रखने में सक्षम होता है। वह कभी दूसरों के सामने अवास्तविक मांग नहीं पेश् करता। अर्थात उसक सम्बंध दूसरों के साथ हमेशा संतोषनक बना रहता है।

v. **शारारिक इच्छाओं की संतुष्टि (Satisfaction of Body Desire)-** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति की एक विषेश्ता है कि वह अपन शारीरिक अंगों के कार्यों के प्रति एक

स्वस्थ एवं धनात्मक मनोवृत्ति रखता है। वह इनके कार्यों से पूर्ण रूप से अवगत रहते हुए भी उनमें किसी भी आश्क्ति (Indulgence)नहीं दिखाता है।

vi. **उत्पादी एवं खुश् रहने की क्षमता (Ability to be Productive and Happy)-** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति अपनी क्षमता को उत्पादी कार्य (Productive Work) में लगाते हैं तथा उस कार्य से वे काफी खुश् रहते हैं। वह ऐसे कार्य में अच्छा उत्साह एवं मनोबल दिखाते हैं और अपने को खुश्मिजाज दिखाते हैं।

vii. **स्पष्ट जीवन लक्ष्य Clear Life Goal-** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति का एक स्पष्ट जीवन लक्ष्य होता है। वह जीवन लक्ष्य को निर्धारित कर उसे प्राप्त करने का हर सम्भव प्रयास करता है। प्रायः वह अपने जीवन लक्ष्य का निर्धारण करने में अपनी क्षमताओं, योग्यताओं एवं दुर्बलताओं को मजेदार रखता है।

viii. **वास्तविक प्रत्यक्षण (Realistic Perception)-** मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति किसी वस्तु, घटना या चीज का प्रत्यक्षण वस्तुनिष्ठ ढंग से करते हैं। वे इन चीजों का प्रत्यक्षण ठीक उसी ढंग से करने की कोशिश करते हैं जो हकीकत होती है। वे अपनी ओर से प्रत्यक्षण करते समय कुछ काल्पनिक तथ्यों का सहारा नहीं लेते।

ix. **व्यक्तिगत सुरक्षा की भावना (Sense of Personal Safety)-** ऐसे व्यक्ति में व्यक्तिगत सुरक्षा की भावना होती है। वह अपने समूह में अपने को सुरक्षित समझता है। वह अपने समूह में अपने को सुरक्षित समझता है। वह जानता है कि उसका समूह उससे प्रेम करता है और उसे उसकी आवश्यकता है।

अभ्यास प्रश्न

1. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का आरम्भ किलफोर्ड बीयर्स द्वारा किया गया- (सत्य/ असत्य)
2. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के लिए प्रथम संघ बनाया गया-

   (अ) सन् 1910 (ब) 1911 (स) 1919 (द) 1921
3. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान हेतु सन् 1919 में राष्ट्रीय संघ का निर्माण किस देश् में हुआ?
4. मानसिक रोगी व्यक्ति को स्वयं निर्णय करने की श्क्ति होती है- (सत्य/ असत्य)
5. मानसिक रोगी का आत्मज्ञान सामान्य व्यक्ति से श्रेष्ठ स्तर का होता है- (सत्य/ असत्य)
6. ______________के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ है वास्वविकता के धरातल पर वातावरण से पर्याप्त सांमजस्य करने की योग्यता''

15.4 मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता Need of Mental Health

बालक तथा शिक्षक के मानसिक स्वास्थ्य का शिक्षा में अत्यधिक ध्यान रखा जाता है। बालक भविष्य की नींव है, इसलिए उसका मानसिक रूप से बने रहना आवश्यक होता है। शिक्षक भविष्य का निर्माता है। इसलिए, अगर निर्माता मानसिक रूप से स्वस्थ नहीं होगा तो भावी समाज विकृत हो जाएगा। क्योंकि बालक तथा शिक्षक दोनों के मानसिक स्वास्थ्य का ध्यान रखना आवष्यक है। फ्रेंडसन के अनुसार-'' मानसिक स्वास्थ्य और अधिगम से सफलता का बहुत अधिक घनिष्ठ सम्बंध है।'' उन श्ब्दों से यह स्पष्ट होता है कि बालक और शिक्षक दोनों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होना अनिवार्य है। यदि शिक्षक प्रभावशाली, त्याग, कर्तव्यपरायण, नैतिक, सदाचारी है, तब इन गुणों का प्रभाव छात्रों के मस्तिष्क पर सकारात्मक रूप से पड़ता है, जिससे समाज का सही विकास होता है।

15.4.1 मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले कारक Factor Influencing of Mental Health

बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं:-

1. **शारीरिक स्वास्थ्य Physical Health** - मनौवैज्ञानिक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो गया है कि श्रीरिक स्वास्थ्य तथा मानसिक स्वास्थ्य मे बहुत ही घनिष्ठ सम्बंध है। जिस बालक का शरीर निरोग होता है व स्वस्थ्य होता है। सह अत्यधिक खुश् रहता है, तथा साथ ही साथ उसमें किसी प्रकार की चिन्ता, संघर्ष एवं विरोधाभास जैसे तत्व नहीं होते हैं।
2. **घरेलू वातावरण (Home Environment)-** हेडफील्ड (Headfield) 1962 के अनुसार जब बालक का घरेलू वातावरण ऐसा होता है जहाँ उसे विषेश् दुलार-प्यार, स्नेह आदि मिलता है तथा उसकी अधिकतर आवश्यकताओं की पूर्ति होती है, तो ऐसे बालक का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा होता है। यदि घरेलू वातावरण में झगड़ा अधिक व षांति कम पायी जाती है तो बालक तनावग्रस्त जीवन यापन करता है।
3. **स्कूल का वातावरण (School Environment)-** यदि बालक ऐसे स्कूल में पढ़ता है जहाँ का वातावरण अधिक सख्त होता है, तथा अनुशासन पर जरूरत से ज्यादा बल दिया जाता है तथा जहाँ के शिक्षक के व्यवहार छात्रों के प्रति नरम न होकर हृदयविदारक होते हैं वहाँ के बालकों का मानसिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता है।
4. **माता-पिता का मानसिक रोग से पीड़ित होना(Mentally ill Person)-** यदि बालक ऐसा है जिसके माता-पिता दुर्भाग्यवश् स्वयं ही मानसिक रोग से पीड़ित हैं तो उनका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता तथा उसमें भी मानसिक रोग से पीड़ित हो जाने की सम्भावना

अधिक बढ़ जाती है। इसके दो कारण हैं पहला कारण अनुवांषिकता है तथा दूसरा कारण ऐसे माता-पिता द्वारा एक दोषपूर्ण मॉडल (Faulty Model) के रूप में बालकों के समक्ष पेश् आना माना जाता है।

5. **मुख्य आवश्यकताओं की संतुष्टी (Satisfaction of Primary Need)**-जब बालकों की मुख्य आवश्यकताएं- भूख, प्यास आदि, तथा अन्य प्राथमिक आवश्यकताएं- जैसे कागज, पेंसिल की आवश्यकता, स्कूल आने जाने की सुविधा, समय पर स्कूल फीस जमा करने आदि की आवश्यकता पूर्ति समय पर हो जाती है तब बालक का मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहता है अन्यथा मानसिक स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।
6. **वास्तविक मनोवृति की कमी (Lack of Relist ice Attitude)** यदि बालकों में घटनाओं, तथ्यों एवं अन्य व्यक्तियों के प्रति वास्तविक एवं वस्तुनिष्ठ मनोवृति की कमी पायी जाती है तो इसमें बालकों में अवास्तविक एवं काल्पनिक चिन्तन को अधिक बढ़ावा मिलता है तब उसमें अन्तर्गस्ता (Involvement) बढ़ जाती है।

15.4.2 बालक के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में शिक्षक की भूमिका (Role of Teacher in Improvement Mental Health of Children)

निम्नलिखित उपायों के माध्यम से शिक्षक बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं:-

i. **अच्छी आदतों का निर्माण (Fostering Good Habit)** - शिक्षक छात्रों में अच्छी आदतों का निर्माण करके उनके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं। समय से स्कूल आना, गृहकार्य करके लाना, साफ सुथरे वस्त्र पहनना, नाखून तथा बाल न बढ़ने देना, ध्यान से शिक्षक की बात को सुनना आदि आदतें छात्रों में डालकर उनके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं।

ii. **संतुलित पाठयक्रम (Balance Curriculum)** - शिक्षक छात्रों के मानसिक स्वास्थ्य को एक अच्छा एवं संतुलित पाठयक्रम बनाकर भी उन्नत बना सकते हैं। पाठयक्रम संतुलित होने से बालक उसे पढ़ने एवं समझने में रूचि दिखाता है। इससे उनमें षैक्षिक उपलब्धि बढ़ती है तथा उनमें आत्मविष्वास पनपता है।

iii. **अच्छे अनुशासन पर बल (Emphasis Upon Good Discipline)** - शिक्षक छात्रों में अच्छे आत्म अनुशासन की आदत डालकर उनके मानसिक स्वास्थ्य को मजबूत बना सकते हैं। स्कूल का अनुशासन यदि वे ऐसा रखते हैं जिसका पालन छात्र आसानी से कर सकते हैं तो निश्चित है उनका मानसिक स्वास्थ्य ठीक रहेगा।

iv. **स्नेहपूर्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार Affecting and Sympathetic Behavior** - छात्र शिक्षकों के स्नेहपूर्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार के भूखे होते हैं शिक्षकों द्वारा इस तरह के व्यवहार मिलने से उन्हें इस ढंग की मानसिक शाति मिलती है। जैन्डन (Zanden)

1982 ने अपने अध्ययन में पाया कि जब शिक्षकों द्वारा लगातार बालकों के प्रति स्नेहपूर्ण एवं सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार किया जाता है तो इससे छात्रों में आत्मसम्मान (Self Respect) एवं आत्मविष्वास बढता है तथा उनका मानसिक स्वास्थ्य मजबूत होता है।

v. **शिक्षक निर्देश्न (Education Guidance)** - शिक्षक छात्र को उचित षैक्षिक निर्देश्न देकर भी उनके मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बना सकते हैं। इस प्रकार उचित निर्देश्न पाकर छात्र सही दिशा की ओर बढ़कर अपने लक्ष्य की प्राप्ति शीघ्र कर सकते हैं।

vi. **व्यक्तिगत निर्देश्न (Personal Guidance)** - अनेक छात्र ऐसे होते हैं जिनकी व्यक्तिगत समस्याऐं एवं उलझनें इतनी अधिक होती हैं कि वे काफी कुंठित और निराश् रहते हैं। शिक्षक छात्रों को व्यक्तिगत निर्देश्न देकर उनकी कुंठा एवं निराशा को दूर कर सकते हैं। इस तरह व्यक्तिगत समस्या का हल कर अध्यापक उनके मानसिक संतुलन को सही बनाये रख सकते हैं।

अभ्यास प्रश्न

7. क्या मानसिक स्वास्थ्य का अधिगम पर प्रभाव पड़ता है? (हाँ /नहीं / बहुत कम)
8. मानसिक रोगी को समाज से बहिस्कृत करना सही है?
    a. छोड़ देना चाहिए
    b. उपचार कराना चाहिए
    c. कोड़े लगाना चाहिए
    d. भगवान के भरोसे छोड़ना चाहिए
9. घरेलू वातावरण भी मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव डालता है-? (हाँ /नहीं)
10. मानसिक रोगी छात्र के लिए पाठयक्रम होना चाहिए-
    a. कठिन पाठ्यक्रम
    b. सरल पाठ्यक्रम
    c. संतुलित पाठ्यक्रम
    d. श्रेष्ठ पाठ्यक्रम

15.5 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ (Meaning of Mental Hygiene)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का शाब्दिक अर्थ मानसिक क्रियाओं से सम्बंधित निरोग या रोगहीन दशा को कायम करने वाला विज्ञान है। जैसे-शारीरिक आरोग्य शरीर को स्वस्थ रखने के नियम तथा उपाय

प्रतिपादित करता है वैसे ही मानसिक आरोग्य मन को स्वस्थ रखने के नियम तथा उपाय निकालता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान वह विज्ञान है जो मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने, मानसिक रोगों को दूर करने और इन रोगों की रोकथाम के उपाय बताता है। मानसिक आरोग्य का काम केवल मानसिक चिकित्सकों के हाथ में नहीं है। अध्यापक, माता-पिता, संरक्षक समाज सुधारक और साधु-संत आदि धार्मिक व्यक्तियों का भी उसमें महत्वपूर्ण योगदान है। सत्य तो यह है कि मानव मनोविज्ञान का ज्ञान और अन्तदृष्टि होने पर कोई भी व्यक्ति मानसिक आरोग्य में सहायक हो सकता है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की परिभाशाएं (Definition of Mental Hygiene)

क्रो एव क्रो के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान वह विज्ञान है जिसका सम्बंध मानव कल्याण से है और जो मानव सम्बंधों के सब क्षेत्रों को प्रभावित करता है।''

ड्रेबर के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ-मानसिक स्वास्थ्य की रक्षा और मानसिक अव्यवस्थापन को दूर करने से है।''

कालसनिक के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान नियमों के समूह है जो व्यक्ति को स्वयं तथा दूसरों के साथ शाति से रहने के योग्य बनाता है।''

वेबस्टर्स डिक्सनरी (Webster's Dictionary) के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान वह विज्ञान है जिसके द्वारा हम मानसिक स्वास्थ्य को स्थिर रखते हैं तथा पागलपन और स्नायु सम्बंधित रोगों को पनपने से रोकते हैं। साधारण स्वास्थ्य विज्ञान से केवल शारीरिक स्वास्थ्य पर ही ध्यान दिया जाता है परन्तु मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी सम्मिलित किया जाता है।''

ए.जे. रोजानफ के अनुसार- ''मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान व्यक्ति की कठिनाइयों को दूर करने मे सहायता करता है तथा कठिनाइयों के समाधान के लिए साधन प्रस्तुत करता है।''

15.5.1 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के उद्देश्य (Aims of Mental Hygiene)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के विशिश्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं -

i. **मानसिक बीमारियों का निरोध (Presentation of Mental Health)** -मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान उन सभी उपायों का वर्णन करता है, जिनसे व्यक्ति में किसी प्रकार की मानसिक बीमारी या मानसिक व्याधि उत्पन्न ही न हो। इनके लिए यह विज्ञान मानसिक तनाव को कम करने तथा मानसिक संघर्षों से छुटकारा पाने की मनोवैज्ञानिक एवं अन्य

विधियों का विस्तृत रूप से उल्लेख करता है। इन विधियों को अपनाकर व्यक्ति अपने आपको चिन्ता एवं संघर्ष से दूर रखता है।

ii. **मानसिक रोग का उपचार (Treatment of Mental Health)**- यदि कोई व्यक्ति मानसिक रोग का षिकार हो गया है तो उपयुक्त उपायों द्वारा उस व्यक्ति के रोग का उपचार करके पुनः उसे एक स्वस्थ्य व्यक्ति बना दें। ऐसा करने के लिए मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान में उन तमाम प्रविधियों का उल्लेख होता है जिनका उपयोग नैदानिक मनोवैज्ञानिक (Clinical Psychology) एवं मनोचिकित्सक (Psychiatristics) लोग करते हैं।

iii. **अपनी अन्तःश्क्तियों से अनुभव कराना Realization of Owen Potentialities)** मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का एक प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति को अपने अन्दर छिपी अन्तःश्क्तियों (Potentialities) से परिचय कराना है ताकि व्यक्ति अपने आपको एक सही परिप्रेक्ष्य में समझ सके तथा मानसिक स्वास्थ्य की बागडोर को मजबूत कर सकें।

iv. **मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा (Preservation of mental Health)** -मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को सुरक्षा प्रदान करता है। मानसिक विज्ञान के द्वारा कोई भी व्यक्ति व्यक्तिगत, सामाजिक एवं सांवेगिक समायोजन ठीक ढंग से करके अपने मानसिक स्वास्थ्य को बचाये रख सकता है।

v. **मानसिक अस्पताल की अवस्थाओं में सुधार लाना (To Improve the Condition of Mental Health)**- मानसिक अस्पतालों में रोगियों के साथ मानवीय संबंधों में सुधार लाया जाए, क्योंकि यह विज्ञान मानसिक रोग को एक रोग मानता है भूत-प्रेत या पिशाच का प्रकोप नहीं। जब तक उनके साथ मानवीय व्यवहार नहीं किये जायेंगे, उनका रोग ठीक नहीं हो पाएगा।

vi. **व्यक्तियों के आत्मविष्वास में परिवर्तन लाना (To Bring a change in General Belief of the People)**-मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का एक उद्देश्य यह भी है कि आम लोगों के इस विष्वास को गलत साबित कर दिया जाये कि मानसिक रोग असाध्य (Incurve) है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के कारण आम लोगों की वह पुरानी धारणा बदलने जा रही है जिसमें वे सोचा करते थे कि मानसिक रोग किसी पाप का परिणाम है और यह एक तरह का असाध्य रोग होता है।

15.5.2 मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के बारे में प्रमुख तथ्य (Some Main fact of Mental Hygiene)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के बारे में कुछ प्रमुख तथा निम्नलिखत हैं -

i. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान में मानसिक एवं सांवेगिक कठिनाइयों को प्रारंभिक अवस्था में ही पता लगा लेने की कोशिश की जाती है।

ii. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान यथासम्भव जल्द से जल्द मानसिक बिमारियों की पहचान कर उसे दूर करने के उपायों पर बल देता है।
iii. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान मूलतः एक शैक्षिक कार्यक्रम है।
iv. इस विज्ञान में व्यक्तियों का मानसिक स्वास्थ्य बना रहे, इसके लिए उपयुक्त रहन-सहन पर भी बल दिया जाता है।
v. मानसिक विज्ञान में व्यक्तियों को आधुनिक समाज के एक सदस्य के रूप में जीवन व्यतीत करने पर अधिक बल दिया जाता है।
vi. इस विज्ञान में मानसिक रोगियों के प्रति आम लोगों की एक वस्तुनिष्ठ एवं सहानुभूतिपूर्ण मनोवृति विकसित करने का भरसक प्रयास किया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

11. मानसिक आरोग्य का कार्य किया जाता है-

(अ) अध्यापक द्वारा (ब) मानसिक चिकित्सक द्वारा (स) अभिभावक द्वारा (द) सभी के द्वारा

12. क्या मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान में मानसिक स्वास्थ्य के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य को भी सम्मिलित किया जाता है ? (हाँ / नहीं)
13. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान भूत-प्रेत या पिशाच को महत्व देता है- (सत्य/ असत्य)
14. मानसिक रोग असाध्य (incurable) है -(सत्य/ असत्य)
15. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान व्यक्तियों के सभी बिमारियों का इलाज करता है- (सत्य/ असत्य)

15.6 सारांश

मानव एक चिन्तनषील प्राणी है। वह हमेशा मानव विकास के बारे में चिन्तन करता रहता है। उसके इस चिन्तन का वह स्वयं व आने वाली पीढी लाभ उठाती है, लेकिन यह चिन्तन तभी सम्भव हो पाता है जब उसका मानसिक व शारीरिक स्वास्थ्य स्वस्थ बना रहे। यदि व्यक्ति किसी मानसिक रोग से ग्रस्त हो जाता है तब उसकी कार्यकुश्लता में कमी महसूस की जा सकती है। आज के तनाव व भागदौड़ भरी जिन्दगी में व्यक्ति स्वयं अपने स्वास्थ्य व खाने-पीने की ओर ध्यान न देकर केवल कार्य को महत्व दे रहा है, जिससे जिससे उसके स्वास्थ्य में गिरावट आ जाती है। शारीरिक स्वास्थ्य का मानसिक स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव पड़ता है। मानसिक अस्वस्थता के कारण व्यक्ति के सम्मान, सामाजिक सहयोग, कार्यकुश्लता, शिक्षण कार्य, कार्यक्षमता आदि में कमी पायी जाती है। इस कमी को पूरा करने के लिए स्वास्थ्य मानव विज्ञान व्यक्ति को स्वस्थ बनाने व रोग से निदान करने के उपाय बताता है, जिससे वह व्यक्ति निरोगी होकर पुनः कार्य करने लग जाता है। वह सामान्य व्यक्तियों की

तरह अपना व्यवहार करता है। आज किसी भी बीमारी का उपचार सम्भव है, यदि हम उसका सही समय पर समाधान कर सके।

15.7 शब्दावली

1. **मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान (Mental Hygiene)** -मानसिक रोगों का उपचार करने वाला विज्ञान अमानवीय व्यवहार: ऐसा व्यवहार जो व्यक्ति के साथ निर्दयता, क्रूरता, पषुता जैसा व्यवहार अमानवीय व्यवहार है।
2. **आत्म ज्ञान (Self Knowledge)** -अपनी इच्छा, प्रेरणा, भाव, आकांक्षाओं आदि का पूर्ण ज्ञान।
3. **आत्म श्रद्धा (Self Esteem)** - आत्मविष्वास, आत्मबल अपने भावों के स्वीकार करने की क्षमता, आत्म श्रद्धा कहलाती है।

15.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. अ-सत्य
2. ब-1911
3. द-अमरीका
4. अ-सत्य
5. ब-असत्य
6. लैडेल
7. हाँ
8. उपचार कराना चाहिए,
9. हाँ
10. संतुलित पाठ्यक्रम
11. सभी के द्वारा
12. हाँ
13. असत्य
14. असत्य
15. असत्य

15.9 संदर्भ ग्रंथ

1. सिंह अरूण कुमार (1998), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, पटना, पृष्ठ 593-605
2. पाठक पी.डी., (2005) शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. सारस्वत (डां) मालती (1997) शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाश, आगरा, पृष्ठ-524-335
4. शार्मा डां वी.एल. सक्सेना, डा. आर.एन. शिक्षा शास्त्र, सूर्या प्रकाश्न, मेरठ।

15.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. शिक्षा मनोविज्ञान, सिंह अरूण कुमार (1998), भारती भवन, पटना, पृष्ठ 593-605
2. शिक्षा मनोविज्ञान, पाठक पी.डी., (2005) विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा।
3. शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, सारस्वत (डां) मालती (1997) आलोक प्रकाश, आगरा, पृष्ठ-524-335
4. शिक्षा शास्त्र, शर्मा डां वी.एल. सक्सेना, डा. आर.एन. सूर्या प्रकाश्न, मेरठ।
5. शोध पत्र पत्रिकाएं, जरनल, इन्टरनेट, सीडी, टेप आदि।

15.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्तियों की विशेष्ताओं का वर्णन किजिए।
2. बालकों के मानसिक स्वास्थ्य को उन्नत बनाने में शिक्षक की भूमिका का वर्णन किजिए।
3. मानसिक स्वास्थ्य का अर्थ बताते हुए इसके प्रमुख उद्देश्यो का वर्णन लिखिए।
4. मानसिक स्वास्थ्य की परिभाशाएं लिखिए व मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यकता पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
5. मानसिक स्वास्थ्य को प्रभावित करने वाले प्रमुख कारकों का वर्णन लिखिए।
6. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के उद्देश्यो का विस्तृत वर्णन किजिए।
7. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के प्रमुख तथ्यों का विस्तृत वर्णन किजिए।

इकाई 16 समायोजन प्रक्रिया एवं उसकी विशेषताऐं कुण्ठा, अर्न्तद्वन्द और उनके समाधान

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 समायोजन का अर्थ
16.4 समायोजन प्रक्रिया
16.5 भलीभांति समायोजित व्यक्ति की विशेषतायें
16.6 कुण्ठा या भग्नाशा
16.6.1 परिभाषायें
16.6.2 कुण्ठा के स्रोत
16.7 अर्न्तद्वन्द: परिभाषायें
16.7.1 द्वन्दों के प्रकार
16.7.2 अर्न्तद्वन्द बचने के उपाय
16.8 सारांश
16.9 सन्दर्भ ग्रन्थ एवं उपयोगी पुस्तकें
16.10 निबंधात्मक प्रश्न

16.1 प्रस्तावना

मनुष्य जीवन चुनौतियों एवं संघर्षों से भरा पड़ा है अर्थात परिपूर्ण है। बचपन से हमें जीवन की अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो मनुष्य या व्यक्ति जितने अच्छे ढंग से चुनौतियों का सामना करता जाता है वह उतनी ही सफलता या संतोषजनक जीवन व्यतीत करता है। प्रत्येक व्यक्ति या बालक किसी न किसी सामाजिक वातावरण में रहता है। इस वातावरण से ही उसकी विभिन्न मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। मूलभूत आवश्यकताओं के अतिरिक्त भी जीवन में हमें बहुत कुछ वस्तुओं की आवश्यकता होती है। बालक के चारों ओर के वातावरण में व्यक्ति और वस्तुयें समान रूप से महत्वपूर्ण नहीं होती इनमें से कुछ अधिक महत्वपूर्ण एवं कुछ कम। बालक की इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की पूर्ति कभी बहुत सरल ढंग से हो जाती है तथा कभी इस पूर्ति में बाधा पड़ जाती है या समय अधिक लगता है जिससे उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है। तनाव की इस

स्थिति में वह दुखी एवं निराश हो जाता है तथा कभी-कभी उसे इन परिस्थितियों में क्रोध आ जाता है। कुछ दशाओं में और कुछ लोगों के साथ उसे प्रसन्नता एवं संतुष्टि मिलती है उनके साथ उसका अच्छा समायोजन होता है। कुछ लोगों एवं दशाओं में उसे अप्रसन्नता एवं असन्तुष्टि मिलती है उनके साथ उसका समायोजन अच्छा नहीं होता है।

दुखी निराश एवं क्रोधी बालक (व्यक्ति) का समायोजन अपने परिवेश के साथ ठीक नहीं होता जबकि प्रसन्न एवं संतुष्ट बालक का समायोजन अपने परिवेश के साथ ठीक-ठीक होता है। व्यक्ति का भावी एवं वर्तमान जीवन कितना सुखी होगा कितना आनन्दपूर्ण होगा इस बात पर निर्भर करता है कि उसका अपने वातावरण के साथ समायोजन किस प्रकार का है।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप-

1. समायोजन के बारे में समझ सकेंगे।
2. समायोजन की प्रक्रिया के बारे में समझ सकेंगे।
3. भली-भांति समायोजित व्यक्ति की विशेषताओं के बारे में समझ सकेंगे।
4. कुण्ठा या भग्नाशा तथा उसके स्रोत के बारे में समझ सकेंगे।
5. अन्र्तद्वन्द, उसके प्रकार तथा उससे बचाव के बारे मे समझ सकेंगे।

16.3 समायोजन का अर्थ

समायोजन को सामंजस्य, व्यवस्थापन या अनुकूलन भी कहते हैं। यह दो शब्दों से मिलकर बना है- सम और आयोजन, सम का अर्थ है भली-भांति अच्छी तरह या समान रूप से और आयोजन का अर्थ है व्यवस्था अर्थात अच्छी तरह व्यवस्था करना। अतः समायोजन का अर्थ हुआ, सुव्यवस्था या अच्छे ढंग से परिस्थितियों को अनुकूल बनाने की प्रक्रिया जिससे कि व्यक्ति की आवश्यकतायें पूरी हो जाय एवं मानसिक द्वन्द न उत्पन्न हो।

समायोजन का अर्थ स्पष्ट करते हुये गेट्स एवं अन्य विद्वानों ने लिखा है कि समायोजन शब्द के दो अर्थ हैं, एक अर्थ के निरन्तर चलने वाली एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति स्वयं और पर्यावरण के बीच अधिक सामंजस्यपूर्ण संबंध रखने के लिये अपने व्यवहार में परिवर्तन कर देता है। दूसरे अर्थ में समायोजन एक संतुलित दशा है जिस पर पहुंचने पर हम उस व्यक्ति को सुसमायोजित कहते हैं। समायोजन वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने व्यवहार में परिवर्तन कर अपने वातावरण में सामंजस्य स्थापित करता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से जीवन एक निरन्तर चलने वाला क्रम है जिसके द्वारा व्यक्ति वाह्य वातावरण एवं स्वयं की शारीरिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में

लगा रहता है। व्यक्ति खाने-पीने के लिये, आश्रय एवं प्रेम ढूँढने के लिये, सहमति एवं मैत्री पाने सुरक्षा एवं सम्मान पाने इत्यादि में हमेशा लगा रहता है। समायोजन को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं और परिस्थितियों की मांगों के मध्य शारीरिक एवं मानसिक सन्तुलन स्थापित करता है।

16.4 समायोजन प्रक्रिया

सभी जीवित प्राणी क्रियाशील होते हैं। मनुष्य भी दिन-रात क्रियाशील रहता है। सोना, जागना, चिन्तन करना, खेलना, कार्य करना वे सभी विभिन्न प्रकार की क्रियायें हैं। सहज क्रियाओं **(Reflex Actions)** के अतिरिक्त व्यक्ति के सभी व्यवहार प्रेरकों **(Motives)** पर आधारित होते हैं और उनका लक्ष्य होता है प्रेरकों के मूल में आवश्यकतायें होती हैं। इन्हीं आवश्यकताओं से प्रेरित होकर मनुष्य लक्ष्य-प्राप्ति की ओर अग्रसर होता है। जब तक लक्ष्य प्राप्ति नहीं हो जाती उसमें एक प्रकार का तनाव बना रहता है। जब लक्ष्य प्राप्ति हो जाती है तनाव समाप्त हो जाता है और मनुष्य संतोष का अनुभव करता है। इस प्रकार मनुष्य के अन्दर पुनः समस्थिति **(Homeostasis)** स्थापित हो जाती है।

बालक या व्यक्ति एक ऐसा प्राणी है जो विकास की अवस्था में है उसकी कुछ इच्छायें या कामनायें एवं आवश्यकतायें उसे क्रियाशील बनाती हैं इसके कारण ही वह व्यवहार करता है यह सर्वविदित है कि बिना आवश्यकताओं (और प्रेरणाओं के व्यक्ति व्यवहार नहीं करता है उसके प्रत्येक व्यवहार के पीछे कुछ न कुछ आवश्यकतायें अवश्य होती हैं। बालक का व्यवहार इन आवश्यकताओं की पूर्ति वाले साधनों या लक्ष्यों अी ओर अग्रसर होता है। यदि लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है तो निश्चित रूप से उसकी आवश्यकता की संतुष्टि हो जाती है। किसी भी आवश्यकता पूर्ति से संबंधित लक्ष्य का चुनाव करना एक जटिल कार्य है। बालकों के लिये यह कार्य और भी जटिल होता है क्योंकि उनमें अनुभवों की कमी के साथ-साथ उनकी शारीरिक एवं मानसिक योग्यतायें भी सीमित होती हैं। बालक के लक्ष्य का चयन कुछ प्रमुख कारकों से संबंधित होती है जैसे प्रत्यक्षपरक योग्यता **(Perceptional Ability)**, अभिवृत्तियां **(Attitudes)**] लक्ष्य या मूल्य **(Value of Goals or Object)** तथा आकांक्षा स्तर **(Level of Aspiration)**आदि। अध्ययनों में पाया जाता है कि वह बालक लक्ष्यों का चुनाव अधिक कुशलता में करते हैं जिनमें यह कारक जितनी अधिक मात्रा में उपलब्ध (विद्यमान) रहते हैं।

बालक अपने जन्म के उपरान्त ही वातावरण के साथ समायोजन स्थापित करना प्रारम्भ कर देता है लेकिन लक्ष्य प्राप्त करने में कुछ न कुछ बाधायें उत्पन्न होती रहती हैं ये रूकावटें लम्बे समय या कम समय के लिये हो सकती हैं जो कि बालक में तनाव व अर्न्तद्वन्द उत्पन्न कर देती है। ये स्थितियां उत्पन्न होना इस बात पर निर्भर करता है कि उस व्यक्ति या बालक की लक्ष्य प्राप्ति की वस्तु कितनी

प्रिय एवं महत्वपूर्ण है। यदि लक्ष्य प्राप्ति हेतु बाधाओं की सफलतापूर्वक सम्पन्न होता है तो उस अवस्था में वातावरण के साथ उसका समायोजन सामान्य एवं अच्छा होता है। लक्ष्य प्राप्ति पर उसे संतुष्टि एवं सफलता का अनुभव होता है। यह स्वस्थ व्यक्ति समायोजन **(Healthy Personal Adjustment)** है। जब लक्ष्य प्राप्ति में बालक की सामाजिक समर्थन या सामाजिक स्वीकृति भी होती है तो उसे सामाजिक समायोजन में रखते हैं। यदि लक्ष्य प्राप्ति के समय अधिक या असफलता मिलती है तो अन्तर्द्वन्द और तनाव उत्पन्न होता है और वातावरण के साथ उसका ठीक प्रकार से समायोजन स्थापित नहीं हो पाता। फलस्वरूप वह मानसिक रूप से अस्वस्थता की स्थिति में होता है।

समायोजन क्रिया (Adjustment Mechanism)

मनोरचनायें-ब्राउन के अनुसार दो प्रकार की होती हैं। ये मनोरचनायें व्यक्ति को अपने वातावरण से या व्यक्तित्व से समायोजन को भली प्रकार से व्यवस्थित करती हैं-

i. प्रधान मनोरचनायें **(Major Mechanism)**
ii. गौण मनोरचनायें **(Minor Mechanism)**

प्रधान मनोरचनायें - ये वे मनोरचनायें हैं जो अन्तर्द्वन्द का स्वयं ही समाधान करती हैं-

i. अवदमन **(Repression)**
ii. उदात्तीकरण **(Sublimation)**
iii. प्रत्यागमन **(Regression)**
iv. औचित्य स्थापन्न **(Rationalisation)**

गौण मनोरचनायें

i. दिवास्वप्न **(Day Dreaming)**
ii. तादात्म्य **(Identification)**
iii. विस्थापन **(Displacement)**
iv. क्षतिपूर्ति **(Compensation)**
v. प्रक्षेपण **(Projection)**

16.5 भली-भांति समायोजित व्यक्ति के गुण (Characteristics of Well Adjusted Person)

1. शारीरिक दृष्टि से समायोजित
2. संवेगात्मक रूप से समायोजित
3. अपनी अच्छाईयों तथा कमजोरियों का ज्ञान।
4. अपने आपको पर्याप्त सम्मान देना तथा दूसरों का भी सम्मान करना।

5. सामाजिक रूप से समायोजित
6. महत्वाकांक्षा का उचित स्तर
7. मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति
8. आलोचक तथा दोष निकालने की प्रकृति का नहीं होना
9. व्यवहार का लचीलापन
10. अपने वातावरण संबंधी हालतों से संतुष्टि
11. हालातों से संघर्ष करने की क्षमता
12. वह स्वयं तथा पर्यावरण के बीच सन्तुलन बनाये रखता है।
13. वह अपनी आवश्यकता एवं इच्छा के अनुसार पर्यावरण एवं वस्तुओं का लाभ उठाता है।
14. अपनी आवश्यकता की पूर्ति हेतु समाज के अन्य लोगों को बाधा नहीं पहुंचाता है।
15. सुसमायोजित व्यक्ति पर्यावरण एवं परिस्थितियों का ज्ञान और नियंत्रण रखने वाला तथा उन्हीं के अनुकूल आचरण करने वाला होता है।
16. वह स्पष्ट उद्देश्य वाला साहसपूर्ण व ठीक ढंग से कठिनाईयों तथा समस्याओं का सामना करने वाला होता है।
17. सामाजिकता की भावना से युक्त आदर्श चरित्र वाला संवेगात्मक रूप से संतुलित और उत्तरदायित्व स्वीकार करने वाला होता है।
18. संक्षेप में सुसमायोजित व्यक्ति वह है जिसकी आवश्यकतायें एवं तृप्ति सामाजिक दृष्टिकोण तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की स्वीकृति के साथ संगठित हो।

एक स्वस्थ तथा समायोजित व्यक्ति में कुछ प्रेक्षणीय व्यवहारगत प्रतिमान प्रतिविंबित होने चाहिए। ये व्यवहारगत प्रतिमान व्यक्ति की सामाजिक आकांक्षाओं के अनुरूप होने चाहिए जो निम्न हैं:

1. चिन्तन में परिपक्वता 2. भावनात्मक संतुलन 3.दूसरों के प्रति संवेदी समझ 4. दैनिक घटनाओं द्वारा जनित तनाव से मुक्ति 5. स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम

16.6 कुण्ठा या भग्नाशा (Frustration)

व्यक्ति की अनेक इच्छायें और आवश्यकतायें होती हैं। वह उनको संतुष्ट करने का प्रयास करता है, लेकिन आवश्यक नहीं है कि वह ऐसा करने में सफल हो, उसके मार्ग में बाधायें आ सकती हैं। ये बाधायें उसकी आशाओं को पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से भंग कर सकती है। ऐसी दशा में व्यक्ति ‘भग्नाशा’ का अनुभव करता है। सभी व्यक्तियों में सामान्यतया स्वभाववश आगे बढ़ने एवं कुछ न कुछ पाने की तमन्ना रहती है। बहुत सी महत्वाकांक्षाओं से व्यक्ति घिरा रहता है अपनी इच्छाओं को पूरा करने के लिये पूरी तरह से संघर्ष भी करते हैं। परन्तु अच्छी सी अच्छी योजना बनाकर कार्यपथ

पर पूरे जोर-शोर से आगे बढ़ने पर कभी-कभी जैसे सोचा जाता है वैसी संतोषजनक उपलब्धि उन्हें नहीं मिल पाती। कभी ऐसी भी स्थितियों से उन्हें गुजरना पड़तता है और आशा की कोई किरण नजर नहीं आती तथा अपने प्रयत्नों में लगातार मिलने वाली विफलता उन्हें उस स्थिति या हालात में लाकर खड़ा कर देती है जिसे मनोविज्ञान की भाषा में कुण्ठा, भग्नाशा या नैराश्य की स्थिति से संबोधित किया जाता है।

कुण्ठाओं की उत्पत्ति प्रायः दो प्रकार से होती है, एक तो हम जब किसी निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के रास्ते में बाधाओं से ग्रसित हो जाते हैं और दूसरा जब हमारा कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता है जो कुछ भी है, जब प्रेरणाओं की पूर्ति नहीं होती है तो कुण्ठाओं का जन्म होता है।

कोलमैन ने एक उदाहरण के द्वारा कुण्ठाओं की उत्पत्ति को इस प्रकार बताया है मानिये एक युवा लड़की अपने कॉलेज की पार्टी में जाने को तैयार हो जाती है, परन्तु माता-पिता जाने से रोक देते हैं, इस स्थिति में लड़की में कुण्ठा का जन्म हो जायेगा क्योंकि उसके उद्देश्य की प्राप्ति के रास्ते में बाधा उत्पन्न हो गयी है।

दूसरा उदाहरण हम प्रातःकाल 4 बजे की गाड़ी से दिल्ली जाना चाहते हैं हम समय से पहले उठने के लिये अलार्म लगा देते हैं, किसी कारणवश वह नही बज पाता एवं हम जाग नहीं पाते हैं एवं दिल्ली जाने से रह जाते हैं या हम समय पर स्टेशन नहीं पहुंच पाते, पर भीड़ के कारण टिकट हमें नहीं मिल पाता एवं हम गाड़ी पर बैठ नहीं पाते वह चली जाती है। दोनों ही दशाओं में दिल्ली जाने की हमारी इच्छा में अवरोध उत्पन्न होता है। वह पूर्ण नहीं होती है जिसके फलस्वरूप हम 'भग्नाशा' का शिकार हो जाते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'भग्नाशा' तनाव और असमायोजन की वह दशा है, जो हमारी किसी इच्छा या आवश्यकता के मार्ग में बाधा आने से उत्पन्न होती है। कुण्ठा व्यक्ति की वह मानसिक स्थिति एवं भावात्मक दशा है जो उसे अनेक अवरोध और परस्पर विरोधी विकल्पों का सामना करने पर प्राप्त होती है। एक विद्वान के अनुसार-कुण्ठा वह तीव्र अनुभूति है जो व्यक्ति को असफल होने पर या असंतुष्ट होने पर होती है।

कुण्ठा से जुड़ी हुयी यह स्थिति कैसी होती है इसे स्पष्ट करने के लिये कुछ मनोवैज्ञानिकों एवं लेखकों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का उल्लेख आवश्यक है।

16.6.1 परिभाषायें

एन.एल.मन - कुण्ठा से आशय व्यक्ति विशेष की अपनी किसी मूलभूत आवश्यकता की पूर्ति में मिलने वाली विफलता है जो उसकी स्वयं की या बाहरी बाधाओं द्वारा उत्पन्न परिस्थितियों के कारण प्राप्त होती है।

Frustration is a state of organism resulting when the satisfaction of motivated behaviour is rendered difficult or impossible. **Munn, 1964**

कैरोल-"कुण्ठा को किसी भी अभिप्रेरक की संतुष्टि में आने वाली बाधा के फलस्वरूप उत्पन्न होने वाली स्थिति या परिस्थिति के रूप में जाना जा सकता है"

A frustration is the condition of being thwarted in the satisfaction of motives **Carrol**

एमसल (Amsel) -कुण्ठा कुछ परिस्थितियों से उत्पन्न होती है ये परिस्थितियां हैं-

i. लक्ष्य प्राप्ति में आंशिक या पूर्ण बाधायें
ii. पुरस्कार समाप्त करना या कम करना
iii. लक्ष्य प्राप्ति में विलम्ब
iv. सफलता की आशा होने पर असफलता या दण्ड मिलना।

गुड "कुण्ठा से अभिप्राय किसी भी इच्छा या आवश्यकता की पूर्ति में आने वाली बाधा से उत्पन्न संवेगात्मक तनाव से है"

"Frustration means emotional tension resulting from the blocking of a desire or need" **Good 1959**

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि -

कुण्ठा को पैदा करने के कारण व्यक्ति विशेष तथा उसके वातावरण दोनों में ही निहित पाये जाते हैं।

1. कुण्ठा व्यक्ति विशेष की उस अवस्था या स्थिति का द्योतक है जिसमें उसके प्रयत्नों के ऊपर विफलता का ही बोलबाला है।
2. लक्ष्य या आवश्यकतापूर्ति में बाधा या कठिनाई का स्तर जितना अधिक होता है, कुण्ठा की मात्रा में भी उसी अनुपात में वृद्धि होती रहती है।
3. लक्ष्य जितना महत्वपूर्ण होता है या आवश्यकतापूर्ति की चाह जितनी बलवती होती है उसकी प्राप्ति या पूर्ति न होना उतनी ही कुण्ठा पैदा करने वाला सिद्ध होता है।

कुण्ठा या भग्नाशा निम्नलिखित दो प्रकार की होती है -

i. वाह्य **(External)**-वाह्य भग्नाशा इस परिस्थिति का परिणाम होती है जिसमें कोई वाह्य बाधा, व्यक्ति को अपना लक्ष्य प्राप्त करने से रोकती है।

उदाहरण-भौतिक बाधाओं, नियमों, कानूनों या दूसरे के अधिकारों या इच्छाओं का परिणाम-वाह्य भग्नाशा हो सकती है।

ii. आन्तरिक **(Internal)**- आन्तरिक भग्नाशा उस बाधा का परिणाम होती है जो व्यक्ति के भीतर होती है। **उदाहरण**-भय जो व्यक्ति को अपने लक्ष्य प्राप्ति करने से रोकती है या व्यक्तिगत कमियों-पर्याप्त ज्ञान, शक्ति, साहस या कुशलता का अभाव-आन्तरिक भग्नाशा हो सकती है।

16.6.2 कुण्ठा के स्रोत Source of Frustration

प्राणी की क्रियायें मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करती है-

i. Strength of motivation
ii. Distance from Goal

व्यक्ति में कितनी कुण्ठा होगी, कुण्ठा की मात्रा भी मुख्यतः इन्हीं दो बातों पर निर्भर करती है। यहां कुण्ठा उत्पन्न करने वाले सामान्य स्रोतों का संक्षिप्त विवरण निम्न है -

1. **प्रतिस्पर्धा Competition-** सामाजिक प्राणी के रूप में व्यक्ति की जो सुविधाएं और साधन उपलब्ध होते हैं, यह सभी व्यक्तियों के लिए समान नहीं होते हैं। समाज के अधिकांश व्यक्ति अपने पद प्रतिष्ठा आर्थिक स्तर आदि को दूसरों के बराबर करने हेतु एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा या होड़ करते हैं। प्रतिस्पर्धा की दौड़ में अक्सर एक व्यक्ति आगे निकल जाता है तथा दूसरा पीछे रह जाता है, पीछे रह जाने वाला व्यक्ति जब बाधाओं पर सफलता पाने में अपने को असमर्थ समझता है तब उस अवस्था में उसमें कुण्ठा उत्पन्न होती है। सफलता की आशा में असफलता की परिस्थिति भी व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न करती है।
2. **उच्च आकांक्षा स्तर High Level of Aspiration-** जब व्यक्ति का आकांक्षा स्तर उसकी योग्यताओं की अपेक्षा बहुत अधिक उच्च होता है जब इस अवस्था में भी व्यक्ति सफलता की अनेक आशाएं करता है। परन्तु योजनाओं के अभाव में अक्सर उसे सफलता या निराशा ही मिलती है। इस प्रकार की परिस्थिति व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न कर देता है। उच्च आकांक्षा स्तर और योग्यताओं के अभाव में सफलता के प्रयास में व्यक्ति को नुकसान या दण्ड भी उठाने पड़ सकते हैं यह परिस्थिति भी व्यक्ति में कुण्ठा उत्पन्न करती है।
3. **जन्मजात अयोग्यताएं Inborn Disabilities** - कुछ जन्मजात अयोग्यताएं, जैसे-अंधापन, बहरापन, लंगड़ापन, हकलाना या कोई गंभीर असाध्य रोग आदि अयोग्यताएं जन्मजात भी हो सकती हैं, अथवा जन्म के कुछ समय उपरान्त यह अयोग्यताएं उत्पन्न हो सकती हैं। इन अयोग्यताओं की उपस्थिति में व्यक्ति जीवन-संघर्ष में अपने आपको दूसरों से हीन पाता है तथवा इस प्रकार की कल्पना करता है। हीनता की भावना की कल्पना की

व्यवस्था में व्यक्ति जब किसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयास करता है जब असफल होना उसके लिए स्वाभाविक हो जाता है। हीनता की भावना और असफलता की अवस्था में व्यक्ति मे कुण्ठा का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

4. **वाह्य कारक (External Factors)** वाह्य कारक निम्न हैं:

i. प्राकृतिक पर्यावरण से संबंधित कारक **Natural Environmental Factors**: जेसे बाढ़, भूकम्प, महामारी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अग्नि प्रकोप, महामारी आदि भी व्यक्तियों की लक्ष्य प्राप्ति में गंभीर बाधाएं हैं जिनमें कुण्ठा उत्पन्न होने की बहुत अधिक संभावनाएं होती हैं।

ii. दुर्घटनाएं **Accidents**: विभिन्न प्रकार की दुर्घटनाएं भी व्यक्ति को आर्थिक, शारीरिक तथा मानसिक रूप से कमजोर कर सकती हैं और इस कमजोरी की अवस्था में व्यक्ति बाधाओं पर सफलता प्राप्त करने में असहाय हो जाता है तो कुण्ठा के उत्पन्न होने की संभावनाएं बढ़ जाती हैं।

iii. राजनैतिक कारण **Political Causes**

iv. सामाजिक बाधाएं **(Social Obstacles)** आदि भी कुण्ठा के अच्छे स्रोत हैं।

कुण्ठा के प्रति प्रतिक्रिया के तरीके

कठिनाईयों और कुण्ठा के प्रतिक्रिया करने के जो प्रत्यक्ष तरीके हैं उनका उपयोग व्यक्ति बहुधाछोटी कठिनाईयों या हल्की कुण्ठा की अवस्था में ही करता है। यह तरीके मुख्यतः तीन हैं - आक्रमण, सुलह, परिस्थिति में पीछे हटना।

जब बालकों के सामने समायोजन की समस्या आती है तो आमतौर पर वे तीन प्रकार से अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं:

1. **परिस्थिति के साथ समझौता (Compromise)-** जब कोई बालक लक्ष्य प्राप्ति के मार्ग में कोई बाधा देखता है, तो वह परिस्थिति के साथ समझौता कर लेता है। मान लीजिए कोई बालक घर से बाहर खेलने के लिए जाना चाहता है परन्तु माँ मना कर रही है तो उस समय वह माँ की बात मान लेता है। कुछ समय के बाद जब माँ का मूड ठीक होता है तो वह माँ की खुशामद करके कहता है-‘माँ, तुम कितनी अच्छी हो! स्बसे अधिक प्यार तो मैं तुम्हे ही करता हूँ। थोड़ी देर के लिए बाहर खेलने चला जाऊं? जल्दी आ जाऊँगा।’ इस प्रकार वह माँ को मना कर बाहर खेलने चला जाता है।
2. **प्रत्यागमन Withdrawal-** जब बालक के सामने कोई कठिनाई होती है तो वह परिस्थति से समझौता करके, कठिनाई से अपने आपको हटा लेता है। जब बालक देखता है कि

खुशामद करने पर भी माँ उसे बाहर जाने की आज्ञा नहीं देती, तो वह बाहर जाकर खेलने का विचार छोड़ देता है। वह या तो पढ़ाई में लग जाता है, अथवा घर में ही अपने भाई-बहिनों से खेलने लगता है।

3. **आक्रामकता Aggressive**- कई बार देखा जाता है कि जब बालक की बात नहीं मानी जाती, तो उसका व्यावहार आक्रामक हो जाता है। जब खुशामद करने पर भी माँ बालक को बाहर जाने की आज्ञा नहीं देती, तो वह अपने छोटे भाई-बहिनों का पीटने लगता है या वस्तुओं की तोड़-फोड़ करने लगता है।

फिशर ने कुण्ठा के प्रति प्रतिक्रियाओं के स्थान पर चार प्रतिक्रियायें बतायी हैं:

i. Adjustive Reactions
ii. Partially Adjustive Reactions
iii. Non-adjustive Reactions
iv. Maladjustive Reactions

भग्नाशा से बचने के उपाय निम्न हैं:

i. आवश्यकताओं की पूर्ति।
ii. अनुचित इच्छाओं को न उठने देना।
iii. असंगत लक्ष्यों को कम करना।
iv. निर्देशन-1. शैक्षिक निर्देशन, 2. व्यवसायिक निर्देशन
v. विद्यालय का वातावरण अच्छा होना चाहिए।
vi. समाज का वातावरण भी अच्छा होना चाहिए।

16.7 अन्तर्द्वन्द Conflict

द्वन्द या संघर्ष शब्द का प्रयोग हम दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में कई रूपों में करते रहते हैं। किन्हीं दो या दो से अधिक संस्कृतियों, मतावलम्बियों, धर्मों या संगठनों में हम प्रायः विभिन्न प्रकार के वैचारिक एवं सामाजिक संघर्ष देखने में मिल सकते हैं। परिवार एवं समाज में भी पति-पत्नी, बाप-बेटा, भाई-बहिन, गुरू एवं शिष्यों के बीच द्वन्द तथा संघर्ष की अनेक परिस्थितियां पैदा हो सकती हैं। संघर्ष का सामान्य अर्थ है - विपरीत विचारों, इच्छाओं, उद्देश्यों, आदि का विरोध। संघर्ष की दशा में व्यक्ति में संवेगात्मक तनाव उत्पन्न हो जाता है। उसकी मानसिक शक्ति नष्ट हो जाती है और वह किसी प्रकार का निर्णय करने में अपने आपको असमर्थ पाता है। संघर्ष के अनेक रूप हो सकते हैं। जैसे-एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से संघर्ष, व्यक्ति का उसके वातावरण से संघर्ष, पारिवारिक संघर्ष,

सांस्कृतिक संघर्ष आदि। यह संघर्ष व्यक्ति के विचारों, संवेगों, इच्छाओं, भावनाओं, दृष्टिकोणों आदि में होता है।

यह सदैव आवश्यक नहीं है कि कुण्ठाओं का जन्म बाधाओं के कारण हो बल्कि दो आवश्यकताओं या मूल्यों में द्वन्द छिड़ जाने के कारण भी कुण्ठाओं का विकास संभव है। जब कभी दो उद्देश्यों की प्राप्ति या दो आवश्यकओं की पूर्ति में एक ही उद्देश्य की प्राप्ति हो या किसी एक की आवश्यकता की पूर्ति हो तो हमारे मस्तिष्क मे एक विशेष प्रकार का अन्तर्द्वन्द उत्पन्न हो जाता है। अन्तर्द्वन्द से कुण्ठा उत्पन्न होने की अधिक संभावना होती है। अन्तर्द्वन्द में व्यक्ति कभी तो एक प्रेरणा से संबंधित प्रत्युत्तर को चुनता है तथा कभी-कभी यह होता है कि वह दोनों प्रत्युत्तरों को नहीं चुनता है। अन्तर्द्वन्द चेतन एवं अचेतन दोनों स्तरों पर हो सकते हैं परन्तु अधिकांश अन्तर्द्वन्द चेतन स्तर पर ही होते हैं। अचेतन स्तर के अन्तर्द्वन्द अधिकांशतः मानसिक रोगियों में अधिक पाये जाते हैं। अन्तर्द्वन्द में दो इच्छायें, महत्वाकांक्षायें, कतिपय आदर्श और विश्वास आदि कुछ भी हो सकते हैं परन्तु यह अन्तर्द्वन्द में उपस्थित प्रेरणाओं से संबंधित होते हैं।

संघर्ष का मुख्य आधार उचित और अनुचित का विचार होता है। उदाहरणार्थ-बालक जानता है कि उसके पिताजी के पैसे आलमारी में रखे रहते हैं वह उसके बारे में सोचने लगता है वह उनमें से कुछ पैसे निकालना चाहता है पर वह यह समझता है कि चोरी करना अनुचित कार्य है और यदि उसकी चोरी का पता लग जायेगा तो उसको दण्ड मिलेगा, वह इन विरोधी बातों पर विचार करता है फलस्वरूप उसमें मानसिक संघर्ष शुरू हो जाता है।

इस मानसिक संघर्ष में व्यक्ति के मन में एक प्रकार की उथल-पुथल मच जाती है, वह क्या करें? क्या न करें? वह जिस दिशा में पड़ जाता है उसे ही मनोवैज्ञानिक भाषा में मानसिक द्वन्द या संघर्ष कहते हैं।

परिभाषायें

क्रो एवं क्रो – "संघर्ष उस समय उत्पन्न होते हैं जब व्यक्ति को अपने वातावरण में ऐसी शक्तियों का सामना करना पड़ता है जो उसके स्वयं के हितों और इच्छाओं के विरुद्ध कार्य करती हैं"

Conflicts arise when an individual is faced with forces in his environment that act in opposition to his own interests and desires. Crow & Crow, p. 546

डगलस एवं होलेण्ड - अन्तर्द्वन्द एक ऐसी पीड़ादायक संवेगात्मक अवस्था है जो एक दूसरे को काटने वाली और विरोधी इच्छाओं से उत्पन्न तनाव के कारण अस्तित्व में आती है।

Conflicts means a painful emotional state which results from a tension between opposed and contradictory wishes) Douglas & Holland, 1947, p.216.

फ्रायड- "मानसिक द्वन्द का अर्थ स्पष्ट करते हुए फ्रायड ने लिखा है इदम, अहम एवं परम, अहम के बीच सामंजस्य का अभाव होने से मानसिक द्वन्द होता है"

"Mental conflict if caused by the lack of adjustment between id, ego and super ego" **Freud**

लेविन (Lavin. K.) अन्तर्द्वन्द व्यक्ति की वह अवस्था है, जिसमें विरोधी और समान शक्ति वाली प्रेरणायें एक ही समय में क्रियाशील होती हैं।

हानर और ब्राउन (Haner, C.F. & Brown, P.A.)- व्यक्ति के सामने दो या दो से अधिक उदीप्तीकरण के प्रतिफल होते हैं जिनमें संघर्ष होता है।

बोरिंग, लैगफील्ड और वैल्ड (Boring Langfield & Weld)- अन्तर्द्वन्द व्यक्ति की वह अवस्था है जिसमें दो विरोधी और समान शक्तिशाली प्रेरणायें पैदा होती हैं तथा जिनको एक साथ तृप्त करना संभव नहीं होता।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कहा जा सकता है -

i. अन्तर्द्वन्द की अवस्था में व्यक्ति को अधिक तीव्र संवेगात्मक तनाव से गुजरना पड़ता है।
ii. अन्तर्द्वन्द अवस्था की परिस्थिति मानसिक अस्वस्थता में हो सकती है।
iii. किसे पूरा किया जाय किसे छोड़ा जाय इस तरह का निर्णय न ले पाने की असहायता से ही अन्तर्द्वन्द नामक यह विषम स्थिति पैदा होती है।
iv. अन्तर्द्वन्द व्यक्ति विशेष के द्वारा अनुभव की जाने वाली एक पीड़ादायक स्थिति या अवस्था होती है।
v. इस स्थिति में व्यक्ति अव्यक्त तनाव एवं मानसिक पीड़ा से गुजरता हुआ एक ऐसी असमंजस एवं नियुक्ति अवस्था में पहुंच जाता है जहां क्या किया जाय यह निर्णय उसके लिये बेहद कठिन हो जाता है।

द्वन्द दो परस्पर विरोधी कार्यपद्धतियों की संक्रिया है। यह प्रेरणा, आवश्यकता, मूल्य, प्रवृत्ति और आवेग हो सकते हैं। एक व्यक्ति में दो द्वंदात्मक (परस्पर विरोधी) अवस्थाओं में से एक का वरण करना कठिन हो जाता है।

द्वन्द दो अवस्थाओं के कारण होता है। यह तब उत्पन्न होता है, जब दो समान रूप से महत्वपूर्ण लक्ष्यों आवश्यकताओं, प्रेरणाओं, मूल्यों, प्रवृत्तियों और आवेगों की पूर्ति की इच्छा होती है। द्वन्द

की इस स्थिति को हम निम्नांकित उदाहरण द्वारा स्पष्ट करते हैं। मि0 सिंह एक पुलिस निरीक्षक हैं, वे अपने काम में सच्चे और ईमानदार हैं समाज में उनकी अच्छी प्रतिष्ठा है। किसी भी जिम्मेदार पिता की तरह वे अपनी बेटी के विवाह की व्यवस्था करते हैं। दुर्भाग्य से विवाह का खर्चा उनके हिसाब से (बजट) से ज्यादा हो जाता है। उस समय उनकी पत्नी यह सलाह देती है कि वे अपने मित्रों से धन उधार ले लें। परन्तु श्री सिंह किसी से उधार लेने की सोच भी नहीं सकते हैं, क्योंकि वे आत्म सम्मान को बहुत महत्व देते हैं। अतः इस स्थिति में उनके मस्तिष्क में एक द्वन्द की स्थिति पैदा हो जाती है। अतः इस उदाहरण में आप देख सकते हैं कि आत्म सम्मान की मनोवैज्ञानिक आवश्यकता, सामाजिक आवश्यकता अथवा समाज में प्रतिष्ठा की भावना के बीच असंगति है।

दूसरे प्रकार के द्वन्द की स्थिति तब पैदा होती है जब एक आवश्यकता की पूर्ति के लिए दो विभिन्न प्रकार के लक्ष्य उपलब्ध हों। उदाहरणार्थ, एक युवती स्वयं को एक समाजविज्ञानों के रूप से स्थापित करना चाहती है। वह एक प्रतिबद्ध शोधार्थी के रूप में कठिन परिश्रम करके अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकती है। वह विभाग के उच्च प्राधिकारियों की सहायता बिना भी अपने शैक्षिक सम्मान को अर्जित कर सकती है। वह एक भ्रम की स्थिति में है कि वह गंभीरतापूर्वक परिश्रम करके अथवा सरल उपायों के द्वारा अपने लक्ष्य को प्राप्त करे। प्रायः लोग जीवन में आगे आने के लिए सरल उपायों का ही आश्रय लेते हैं। अंततोगत्वा वे प्राप्त तो करते हैं इसके परिणामस्वरूप उनमें तनाव तथा चिंता उत्पन्न हो जाती है।

परीक्षा में उत्तम श्रेणी प्राप्त करने के दो मार्ग हैं, एक तो आप अपने विषय का गंभीरता तथा विस्तारपूर्वक अध्ययन करके तथा दूसरा मोटा-मोटा परन्तु परीक्षा में अपेक्षित विषय सामग्री का अध्ययन करके कर सकते हैं। विस्तृत अध्ययन से आपको उत्तम ज्ञान प्राप्त होगा, परन्तु विस्तृत अध्ययन में समय का प्रतिबंध अथवा दबाव है। अतएव गंभीर अध्ययन करने वाले छात्रों के मस्तिष्क में संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस उदाहरण में आप देखते हैं कि छात्र को अपना लक्ष्य प्राप्त करने के लिए द्वन्द की स्थिति का सामना करना होता है।

16.7.1 द्वन्दों के प्रकार Types of conflict

द्वन्दों को तीन प्रकारों में बांटा जा सकता है। विभिन्न प्रकार के द्वन्दों को समझने के लिए निम्नांकित उदाहरण हैं:

1. **उपागम-उपागम द्वन्द:** उपागम-उपागम द्वन्द वह समस्या है जिसमें एक व्यक्ति दो परस्पर अपवर्जक लक्ष्यों के बीच फंस जाता है। ये दोनों ही लक्ष्य वांछित हैं किन्तु एक साथ प्राप्त करने के लिए असंभव है, उदाहरण के लिए एक छात्र अपनी परीक्षा के लिए तैयारी करता है तथा उच्च अंक प्राप्त करने के लिए उत्सुक रहता है। वह अपने परमप्रिय मित्र की शादी में भी सम्मिलित होना चाहता है, परीक्षा तथा मित्र की शादी दोनों कार्य एक ही दिन सम्पन्न होने हैं।

2. **उपागम-परिहार द्वन्द:** इसको निम्न उदाहरण से स्पष्ट किया जा सकता है कि एक पच्चीस वर्ष की लड़की एक ऐसे लड़के से विवाह करना चाहती है तो उच्च शिक्षा प्राप्त तथा अच्छे पद पर कार्यरत है। वह इस लक्ष्य को प्राप्त करने में भी हिचकिचा रही है, क्योंकि लड़के की जीवनशैली लड़की की जीवनशैली से पूरी तरह भिन्न है। वह सिगरेट तथा शराब पीता है। इसी प्रकार एक लड़का अपने पिता के पास इसी विचार से जाता है कि वह उसे दो विषयों में कृपा अंक दिलवाएं। वह पिता के पास जाने में संकोच करता है क्योंकि उसने पिता को आश्वासन दिया था कि वह कक्षा में कोई उच्च स्थान लेकर दिखाएगा। इससे छात्र के मस्तिष्क में द्वन्द की स्थिति उत्पन्न हो जाती है इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि जो व्यक्ति एक ही समय में किसी लक्ष्य का प्राप्त भी करना चाहता है और उसी समय उसे छोड़ देना भी चाहता है।
3. **परिहार-परिहार द्वन्द:** परिहार-परिहार द्वन्द एक समस्या है, जिसमें एक व्यक्ति दोनों ही लक्ष्यों से दूर हटने के लिए प्रेरित होता है। एक द्विविधात्मक स्थिति देखिए, कर्ण के मित्रों ने एक नई फिल्म देखने के लिए जोर दिया जिसे वह देखने का इच्छुक नहीं था। साथ ही वह अपने मित्रों को यह कहकर अप्रसन्न नहीं करना चाहता है कि वह फिल्म देखने नहीं जाएगा। इस परिस्थिति में वह दोनों ही लक्ष्यों को छोड़ना चाहता है और अंत में एक द्वंदात्मक समस्या का सामना करता है।

16.7.2 अन्तर्द्वन्द से बचने के उपाय Solution of Avoiding Conflicts

मन का कथन है निरन्तर रहने वाला संघर्ष कष्टदायक होने के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य के लिये भी हानिकारक है।

“Continued conflict in addition to being unpleasant, is also dangerous to physical health” **Munn, p. 216**

सोरन्सन के अनुसार इसके समाधान हेतु निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जा सकता है-

1. बालकों के समक्ष किसी प्रकार की समस्या उपस्थित नहीं होनी देनी चाहिए।
2. बालकों को समूहों के सदस्यों के रूप में विभिन्न परिस्थितियों का सामना करने के अवसर दिये जाने चाहिए।
3. बालकों को असंतोषजनक परिस्थितियों का सामना करने और उनको उपयुक्त समायोजन करने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
4. बालकों की शक्तियों को किसी लक्ष्य की प्राप्ति की दशा में निर्देशित करना चाहिए ताकि उनके मस्तिष्क संघर्षों के निवास स्थान न बन सकें।

5. बालकों की निराशाओं और असफलताओं का सामना करने के लिये प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
6. बालकों के समक्ष विरोधी बातों और विरोधी प्रश्नों में चुनाव करने की परिस्थिति नहीं आनी देनी चाहिए।
7. बालकों के सामने न तो उच्च आदर्श प्रस्तुत किये जाने चाहिए और न उनसे उनके पालन की आशा की जानी चाहिए।
8. परिवार एवं विद्यालय के वातावरण में किसी प्रकार का तनाव नहीं होना चाहिए, क्योंकि तनाव संवेगों में उथल-पुथल मचाकर संघर्ष को जन्म देता है।
9. बालकों को अपने से संबंधित मामलों पर निर्णय करने के लिये प्रोत्साहित करना चाहिए, पर निर्णय करने के बाद उनको उसके कारणों पर विचार करने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए।
10. परिवार एवं विद्यालय का वातावरण विवके एवं समझदारी पर आधारित होना चाहिए।
11. भय एवं चिन्ता से उत्पन्न बालकों की मानसिक चिकित्सा की जानी चाहिए।

अन्तर्द्वन्द का समाधान करने के अन्य उपाय निम्न हैं -

1. प्रथम यह है कि जिन व्यक्तियों की अभिवृत्ति समाधान **(Problem Solving Attitude)** वाली होती है, उनमें अन्तर्द्वन्द अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा कम उत्पन्न होता है। यदि किसी व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द उत्पन्न होता है तो उस व्यक्ति को उस अन्तर्द्वन्द का समाधान करने के लिये प्रयास में समस्या समाधान अभिवृत्ति **(Problem Solving Attitude)** अपनानी चाहिए।
2. अन्तर्द्वन्द परिस्थिति के संबंध में व्यक्ति जो भी निर्णय लें, निर्णय का दृढ़ता से पालन करना चाहिए अन्यथा अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति पुनः उत्पन्न हो जाती है।
3. जब किसी व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति उत्पन्न हो तो उसे तुरन्त ही उस अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति तथा तर्क-वितर्क प्रारम्भ कर देना चाहिए तथा जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति के संबंध में दृढ़ निर्णय कर लेना चाहिए।
4. क्षतिपूर्ति प्रतिक्रियाओं, मनोरंचनाओं (Compensatory Reactions or Mental Mechanism) द्वारा भी अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति का समाधान होता है।
5. वास्तविकता स्वीकार करना।
6. समस्या स्थिति का विश्लेषण।
7. लक्ष्यों को प्राथमिकता प्रदान करना।
8. मूल्य निर्णय व विकास।
9. रुचि अपसरण।

16.8 सारांश

प्रस्तुत इकाई में समायोजन, उसका अर्थ एवं समायोजन प्रक्रिया भली-भांति समायोजित व्यक्ति के गुण, कुण्ठा, कुण्ठा के स्रोत, कुण्ठा के प्रति प्रतिक्रिया के तरीके, अन्तर्द्वन्द, उसके प्रकार तथा उससे बचने के उपायों की चर्चा की गयी है। मनुष्य जीवन चुनौतियों एवं संघर्षों से भरा पड़ा है अर्थात परिपूर्ण है। बचपन से हमें जीवन की अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है जो मनुष्य या व्यक्ति जितने अच्छे ढंग से चुनौतियों का सामना करता जाता है वह उतनी ही सफलता या संतोषजनक जीवन व्यतीत करता है। कुछ दशाओं में और कुछ लोगों के साथ उसे प्रसन्नता एवं संतुष्टि मिलती है उनके साथ उसका अच्छा समायोजन होता है। कुछ लोगों एवं दशाओं में उसे अप्रसन्नता एवं असन्तुष्टि मिलती है उनके साथ उसका समायोजन अच्छा नहीं होता है। समायोजन को सामंजस्य, व्यवस्थापन या अनुकूलन भी कहते हैं। यह दो शब्दों से मिलकर बना है-सम और आयोजन, सम का अर्थ है भली-भांति अच्छी तरह या समान रूप से और आयोजन का अर्थ है व्यवस्था अर्थात अच्छी तरह व्यवस्था करना। समायोजन प्रक्रिया- सभी जीवित प्राणी क्रियाशील होते हैं। मनुष्य भी दिन-रात क्रियाशील रहता है। सोना, जागना, चिन्तन करना, खेलना, कार्य करना वे सभी विभिन्न प्रकार की क्रियायें हैं। मनोरचनायें-ब्राउन के अनुसार दो प्रकार की होती हैं। ये मनोरचनायें व्यक्ति को अपने वातावरण से या व्यक्तित्व से समायोजन को भली प्रकार से व्यवस्थित करती हैं-प्रधान मनोरचनायें गौण मनोरचनायें। एक स्वस्थ तथा समायोजित व्यक्ति में चिन्तन में परिपक्वता, भावनात्मक संतुलन, दूसरों के प्रति संवेदी समझ, दैनिक घटनाओं द्वारा जनित तनाव से मुक्ति, स्वतंत्र निर्णय लेने में सक्षम की योग्यता होनी चाहिए। 'भग्नाशा' तनाव और असमायोजन की वह दशा है, जो हमारी किसी इच्छा या आवश्यकता के मार्ग में बाधा आने से उत्पन्न होती है। कुण्ठा व्यक्ति की वह मानसिक स्थिति एवं भावात्मक दशा है जो उसे अनेक अवरोध और परस्पर विरोधी विकल्पों का सामना करने पर प्राप्त होती है। एक विद्वान के अनुसार-कुण्ठा वह तीव्र अनुभूति है जो व्यक्ति को असफल होने पर या असंतुष्ट होने पर होती है। कुण्ठा उत्पन्न करने वाले सामान्य स्रोत-प्रतिस्पर्धा, उच्च आकांक्षा स्तर, जन्मजात अयोग्यतायें, वाह्य कारक जिसमें प्राकृतिक पर्यावरण से संबंधित कारक, दुर्घटनायें, राजनैतिक कारण तथा सामाजिक बाधायें हैं। कुण्ठा के प्रति जब बालकों के सामने समायोजन की समस्या आती है तो आमतौर पर वे तीन प्रकार से अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हैं-परिस्थिति के साथ समझौता, प्रत्यागमन और आक्रामकता। भग्नाशा से बचने के उपाय हैं-आवश्यकताओं की पूर्ति, अनुचित इच्छाओं को न उठने देना, असंगत लक्ष्यों को कम करना, शैक्षिक एवं व्यवसायिक निर्देशन, विद्यालय का वातावरण अच्छा होना चाहिए, समाज का वातावरण भी अच्छा होना चाहिए। द्वन्द या संघर्ष शब्द का प्रयोग हम दिन-प्रतिदिन की जिंदगी में कई रूपों में करते रहते हैं। किन्हीं दो या दो से अधिक संस्कृतियों, मतावलम्बियों, धर्मों या संगठनों में हम प्रायः विभिन्न प्रकार के वैचारिक एवं सामाजिक संघर्ष देखने में मिल सकते हैं। परिवार एवं समाज में भी पति-पत्नी, बाप-बेटा, भाई-बहिन, गुरू एवं शिष्यों के बीच द्वन्द तथा संघर्ष की अनेक परिस्थितियां पैदा हो सकती हैं। द्वन्दों के प्रकार हैं-उपागम-उपागम द्वन्द, उपागम-परिहार द्वन्द,

परिहार-परिहार द्वन्द। अन्तर्द्वन्द का समाधान करने के अन्य उपाय-प्रथम यह है कि जिन व्यक्तियों की अभिवृत्ति समाधान वाली होती है, उनमें अन्तर्द्वन्द अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा कम उत्पन्न होता है। यदि किसी व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द उत्पन्न होता है तो उस व्यक्ति को उस अन्तर्द्वन्द का समाधान करने के लिये प्रयास में समस्या समाधान अभिवृत्ति अपनानी चाहिए, अन्तर्द्वन्द परिस्थिति के संबंध में व्यक्ति जो भी निर्णय लें, निर्णय का दृढ़ता से पालन करना चाहिए अन्यथा अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति पुनः उत्पन्न हो जाती है, जब किसी व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति उत्पन्न हो तो उसे तुरन्त ही उस अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति तथा तर्क-वितर्क प्रारम्भ कर देना चाहिए तथा जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति के संबंध में दृढ़ निर्णय कर लेना चाहिए, क्षतिपूर्ति प्रतिक्रियाओं, मनोरंचनाओं द्वारा भी अन्तर्द्वन्द की परिस्थिति का समाधान होता है इसके अलावा. वास्तविकता स्वीकार करना, समस्या स्थिति का विश्लेषण, लक्ष्यों को प्राथमिकता प्रदान करना, मूल्य निर्णय व विकास, रुचि अपसरण आदि भी हैं

16.9 सन्दर्भ सूची एवं उपयोगी पुस्तकें

1. मंगल, एस0के0 (2008): शिक्षा मनोविज्ञान, प्रेंटिस हॉल ऑफ इडिया प्रा0 लि0, नई दिल्ली, 110001
2. ओझा, राजकुमार (1972): असामान्य मनोविज्ञान, रस्तोगी पब्लिकेशन्स, प्रकाशक एवं मुद्रक शिवाजी रोड, मेरठ-2
3. वर्मा, प्रीती एवं श्रीवास्तव डी0एन0 (1984): बाल मनोविज्ञान, बाल विकास, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2
4. पाठक, पी0डी0 (1986-87): शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-2
5. शर्मा रामनाथ एवं शर्मा रचना (2004): उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, एटलांटिक पब्लिशर्स एवं डिस्ट्रीव्यूटर्स, नई दिल्ली।
6. माथुर, एस0एस0: शिक्षा मनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा-7
7. भाई योगेन्द्र जीत: शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा-2
8. पचौरी, गिरीश: शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार, आर0लाल बुक डिपो, मेरठ।

16.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. समायोजन का क्या अर्थ होता है? सुसमायोजित व्यक्ति के गुण लिखिए?
2. कुण्ठा या भग्नाशा की विवेचना कीजिये।
3. अन्तर्द्वन्द से आप क्या समझते हैं? विस्तार पूर्वक लिखिए।

इकाई 17 कुसमायोजन के कारण एवं लक्षण

17.1 प्रस्तावना
17.2 उद्देश्य
17.3 कुसमायोजन के कारण एवं लक्षण
17.4 कुसमायोजन का अर्थ
17.5 बालकों में कुसमायोजन के कारण
17.5.1 भग्नाशा या कुण्ठा का अर्थ
17.5.2 भग्नाशा के कारण
17.6 मानसिक द्वन्द का अर्थ
17.6.1 मानसिक द्वन्द या संघर्ष के दुष्प्रभाव
17.6.2 संघर्ष की परिभाषा
17.6.3 द्वन्द या संघर्ष से बचने के सामान्य उपाय
17.7 कुसमायोजन के लक्षण
17.7.1 समायोजित व्यक्ति के लक्षण
17.7.2 मानसिक द्वन्द को सुलझाने एवं तनावों को कम करने के विशिष्ट उपाय
17.8 सारांश
17.9 शब्दावली
17.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
17.11 सन्दर्भ ग्रंथ
17.12 सहायक/उपयोगी पुस्तकें
17.13 निबन्धात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

समायोजन की विपरीत स्थिति कुसमायोजन या विषमायोजन (Maladjustment) की स्थिति कहलाती है। समायोजन के विरूद्ध इस स्थिति में जीवित प्राणी अपनी आवश्यकतओं और उन

आवश्यकताओं की तुष्टि को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों के संतुलन नहीं रख पाता। अतः इस स्थिति में ऐसे प्रतिक्रियायें दिखलाई पड़ती हैं जिनमें यह संतुलन बनने की अपेक्षा और भी बिगड़ता है। इस प्रकार की प्रतिक्रियाओं में से वे सभी व्यवहार आते हैं जो असामान्य कहे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए सभी तरह के मानसिक रोग कुसमायोजित प्रतिक्रियाओं में गिने जायेंगे। इसी तरह अपराधी और किशोर अपराधी व्यवहार तथा समाज विरोधी व्यवहार कुसमायोजित माना जाएगा। कुसमायोजित व्यक्ति अपनी परिस्थितियों में समायोजन नहीं कर पाता और वस्तुस्थिति का सामना करने की बजाए उससे भागने का प्रयास करता है। उसमें नाना प्रकार के असामान्य भय और मानसिक रचनायें दिखलाई पड़ती हैं। उसमें सहयोग की सामर्थ्य बहुत कम होती है। वह दूसरों के साथ मिल-जुलकर नहीं रह सकता। बहुदा व अकेला रहना पसन्द करता है। और कल्पनालोक में डूबा रहता है। अत्यधिक दिवास्वपन देखना एक कुसमायोजित प्रतिक्रया है।

17.2 उद्देश्य

1. कुसमायोजन का अर्थ व बालकों मे कुसमायोजन के कारणों को जान सकेंगे।
2. भग्नाशा या कुन्ठा के कारणों को जान सकेंगे।
3. मानसिक द्वन्द या संघर्ष के दुष्प्रभाव के कारणों को जान सकेंगे।
4. द्वन्द या संघर्ष से बचने के उपायों को जान सकेंगे।
5. कुसमायोजन को लक्षणों को जान सकेगे।
6. समायोजित व्यक्ति के लक्षणों को जान सकेंगे।

17.3 कुसमायोजन के कारण एवं लक्षण Problem of Mail adjusting Cause and Symptoms

व्यक्ति को सफल जीवन व्यतीत करने के लिए अपने वातावरण और परिस्थितियों के साथ समायोजन स्थापित करना आवश्यक हो जाता है। व्यक्ति के जीवन में अनेक प्रकार की अनुकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियां आती रहती हैं जिनका उसे सामना करना पड़ता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी अलग-अलग क्षमता के अनुसार समायोजन करने का प्रयत्न करते हैं। कुछ लोग प्रतिकूल परिस्थतियों का सामना करने में सफल हाते हैं और कुछ लोग अपना मानसिक संतुलन खो बैठते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति असंतोष या भग्नाशा, मानसिक द्वन्द एवं तनाव का शिकार बन जाते हैं। और अपने को असमायोजित पाते हैं, जिससे वे समाज विरोधी कार्य करने लगते हैं, जिसका प्रभाव उन्हें जीवन के प्रत्येक पक्ष में देखने को मिलता है।

17.3.1 कुसमायोजन का अर्थ Meaning of Maladjustment

जब व्यक्ति अपनी आवश्यकताओं (Needs) एवं इच्छाओं तथा वातावरण के उन कारकों, जिनसे उन इच्छाओं एवं आवश्यकाताअें की सही ढंग से संतुष्टि होती है, के बीच एक संतुलन (Balance) बनाए रखता है, तब हम इस प्रक्रिया को समायोजन की संज्ञा देते हैं। परन्तु जब किसी कारणों से यह संतुलन बिगड़ जाता है तब इस अवस्था को कुसमायोजन (Maladjustment) कहा जाता है। शिक्षा मनोवैज्ञानिकों का मत है कि कुसमायोजन छात्रों में भी हो सकता है, तथा शिक्षकों में भी। अध्ययनों से पता चलता है कि कुसमायोजन की समस्या छात्रों में शिक्षकों की कुसमायोजन की समस्या के अधिक गंभीर होती है। यदि छात्र या शिक्षक में कुसमायोजन की स्थिति लम्बे अरसे से बनी रहती है तो इससे उसके व्यक्तित्व मे असामान्यता (Abnormality) उत्पन्न होने की संभावना बढ़ जाती है।

17.3.2 बालकों में कुसमायोजन के कारण Cause of Maladjustment in the Children

प्रमुख मनोवैज्ञानिक फ्राइड (Freud) एडलर (Adler) युग (Jung) आदि ने बालकों में कुसमायोजन के प्रमुख कारणों का वर्णन निम्नलिखित बतायें हैं -

1. **कुंठा (Frustration)**- जब बालक की प्रमुख आवश्यकताओं (Needs) की संतुष्टि नहीं हो पाती, तो उनमें कुंठा उत्पन्न होती है। जब कुंठा की मात्रा धीरे-धीरे असहनीय हो जाती है तो बालकों का व्यवहार कुसमायोजित होने लगता है। अन्य बालकों के अलावा उनमें चिड़चिड़ापन एवं अक्रामकता बढ़ जाती है।
2. **गरीबी (Poverty)**- कुसमायोजन तथा गरीबी में घनात्मक सहसम्बंध (Positive Correlation) है। अधिकतर कुसमायोजित बालक निम्न आर्थिक, सामाजिक स्तर वाले परिवार से आते हैं। इसका मूल कारण है कि ऐसे परिवार के माता-पिता या अभिभावक अपने बच्चों की उचित आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ रहते हैं, जिससे इनमें कुसमायोजन की समस्या पैदा हो जाती है।
3. **ब्रोकेन होम्स (Broken Homes)**- ब्रोकेन होम्स से हमारा अभिप्राय ऐसे घरों से होता है जो माता-पिता में सम्बंध विच्छेद हो जाने के कारण, मृत्यु हो जाने के कारण, न्यायालय से माता-पिता से अलगाव हो जाने के कारण, बालकों को अपने माता-पिता या परिवार के अन्य सदस्यों से उचित प्यार, स्नेह, सहानुभूति, सुरक्षा आदि नहीं मिल पाता है। ऐसे बच्चों में कुसमायोजन विकसित होने लगता है।
4. **माता-पिता की मनोवृति (Parental Attitude): -** माता-पिता की प्रतिकूल मनोवृति (Unfavorable Attitude) से बालकों का व्यवहार कुसमायोजित हो जाता है। जब माता-पिता बालकों को अस्वीकृत कर देते हैं तो इससे उनके अहम को चोट पहुंचती है और वे अपना न्यूनांकलन (Underestimate) करने लगते हैं। उनमें असुरक्षा लाचारी

एवं अकेलापन का भाव उत्पन्न हो जाता है। ऐसे भाव बालकों को धीरे-धीरे कुसमायोजित बना देते हैं।

5. **शरीरिक (Physique)-** गिलवर्ग (1963) ने अध्ययन मे पाया है कि जब बालकों की शरीरिक बनावट सामान्य बालक से हटकर कुछ अलग होती है तो ऐसे बालक की अन्य बालकों द्वारा खिल्ली उड़ायी जाती है। इससे बालक में हीनता का भाव पनपता है और वह कुसमायोजित हो जाता है।
6. **अंगीकरण (Adoption)-** अध्ययनों के आधार पर यह देखा गया है कि दत्तकी बालक (Adopted) सामान्य बालकों की अपेक्षा अधिक कुसमायोजित हो जाता है। इसका कारण यह है कि ऐसे बालक को जब उनके और माता-पिता के सम्बंधों की वास्तविकता का पता चलता है तो उसे मानसिक आघात लगता है और बालक कुसमायोजित हो जाता है।
7. **बालकों के प्रति यौन आधारित व्यवहार (Sex Behavior Towards Children)-** जिस परिवार में माता-पिता द्वारा लड़कों पर लड़कियों की अपेक्षा अधिक ध्यान दिया जाता है और उनको शिक्षा के अलावा अन्य कार्यो में वरीयता दी जाती है, तब लड़कियों मे हीनता व कुण्ठा की भावना पनपने लगती है, जिसके कारण वे कुसमायोजित हो जाती हैं।
8. **मनोरंजन के साधन में कमी (Sex Based Behavior towards Children)-**जब बालकों के लिए मनोरंजन के पर्याप्त साधन स्कूल या घर में नहीं होते, तो उनमें एक तरह का घुटन हो जाती है, उनमें संवेगात्मक तनाव बढ़ जाता है और उनका व्यवहार चिड़चिड़ा तथा अन्य दृष्टिकोण से कुसमायोजित हो जाता है।
9. **धार्मिक विश्वास (Religious Beliefs)-** प्रत्येक बालक को अपने माता-पिता के धर्म को मानना होता है और उनके धार्मिक विश्वास के अनुकूल कुछ व्यवहार करना पड़ता है। कभी-कभी बालक को ऐसी क्रियायें, कर्मकांड करने पड़ते हैं जिसको बालक न तो समझ पाता है और न ही वह उसको करना चाहता है, ऐसी स्थिति में बालक में कुसमायोजन के गुण पैदा हो जाते हैं।

17.3.3 भग्नाशा या कुण्ठा का अर्थ (Meaning of Frustration)

व्यक्ति दिन में प्रतिक्षण प्रायः छोटी-छोटी कठिनाइयों और बाधाओं को सहन करता रहता है। उनमे से अधिकांश ऐसी होती हैं, जिन्हे आसानी से सुलझाया जा सकता है, परन्तु कभी-कभी ऐसी बाधाएं या अवरोध उत्पन्न हो जाते हैं जो व्यक्ति की आवश्यकताओं और प्रेरकों की पूर्ति में हस्तक्षेप करते हैं। अर्थात् वह लक्ष्य तक पहुंचने में रूकावट डालते हैं। व्यक्ति इन बाधाओं या अवरोधों को दूर करने का भरसक प्रयत्न करता है। जब बाधाओं को दूर करके अपने लक्ष्य तक पहुंचने में सफल हो जाता है तो उसे एक प्रकार की खुशी और संतोष की अनुभूति होती है। किन्तु जब अनेक प्रयास करने के

बावजूद भी वह बांधओं या अवरोधों को दूर नहीं कर पाता और लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाता तो उसे दुःख होता है, और एक प्रकार की विफलता या निराशा की अनुभूति होती है, जिसे मनोवैज्ञानिक भाषा में भग्नाशा या कुण्ठा कहते हैं। ऐसी स्थिति में छात्र या व्यक्ति कुसमायोजन का शिकार हो जाता है और समाज मे अपने को समायोजन करने में काफी परेशानी हो जाती है।

17.3.4 भग्नाशा के कारण (Reason of Frustration)

भग्नाशा के अनेक कारण एवं स्रोत हो सकते हैं जिनमें से कुछ कारण निम्नलिखित हैं-

i. व्यक्तिगत कारण- कुछ व्यक्ति अथवा बालक अपने मानसिक, संवेगात्मक या शरीरिक दोषों जैसे बुद्धि की कमी, भय हीनता की भावना, अकुशलता, अंधापन, बहरापन, लंगड़ापन आदि के कारण अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में असफल रह जाते हैं। इससे भी असंतोष और कुण्ठा की अनुभूति होती है।
ii. आर्थिक कारण- आर्थिक परिस्थिति अच्छी न होने के कारण व्यक्ति अपनी बहुत से इच्छाओं और आवश्यकताओं को पूरी कर पाने में असमर्थ होता है और अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंच पता है।
iii. भौतिक कारण- वातावरण में पाये जाने वाले अनेक भौतिक या प्राकृतिक तत्व जहां एक ओर व्यक्ति की आवश्यकताओं और प्रेरकों की पूर्ति में सहायक होते हैं वहीं दूसरी ओर अनेक भौतिक तत्व जैसे अकाल, बाढ़ या अनावृष्टि, भूचाल आदि आवश्यकताओं और प्रेरकों की पूर्ति में बाधक सिद्ध होते हैं जिससे व्यक्ति के मन में घोर निराशा और असंतोष उत्पन्न होता है।
iv. सामाजिक कारण- समाज के कठोर नियम, रीति रिवाज, परम्पराएं, जाति-प्रजाति, धर्म और कानून भी व्यक्ति की स्वतंत्रता इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधक होते हैं, जिससे व्यक्ति को निराशा और असंतोष का सामना करना पड़ता है, जिससे उसमें कुसमायोजन के भाव पनप जाते हैं।
v. असंगत परिस्थितियां और दशाएं- सामाजिक महंगाई, निर्धनता, बेकारी, रहने का अनुपयुक्त स्थान, घर का अशांत वातावरण आदि के कारण बालक की बहुत सी आवश्यकताओं में एवं इच्छाएं अपूर्ण रह जाती हैं। इससे उसमें कुण्ठा पैदा हो जाती है और असामाजिक व्यवहार करने लगता है।

अभ्यास प्रश्न

1. कुसमायोजन व्यक्ति अपने को समायोजित नहीं कर पाता है -
   (अ) समाज में (ब) परिवार में (स) विद्यालय में (द) सभी जगह

2. कुण्ठा व्यक्ति में एक निष्चित आयु पर अवष्य होती है। (सत्य / असत्य)
3. कमजोर आर्थिक स्थिति भी कुण्ठा के लिए उत्तरदायी होती है । (सत्य / असत्य)
4. ब्रोकन होम्स वाले प्रत्येक बच्चा कुसमायोजित होता है।(सत्य / असत्य)
5. कुसमयोजन तथा गरीबी में सहसंबंध है -

(अ) घनात्मक (ब) रिणात्मक (स) षून्यात्मक

17.4 मानसिक द्वन्द का अर्थ Meaning of Mental Health

मानव एक जिज्ञासु प्राणी है। उसकी एक इच्छा की पूर्ति के बाद उसकी दूसरी इच्छा जागृत हो जाती है। लेकिन यदि किसी कारणवश उसकी वह इच्छा पूर्ण नहीं हो पाती, तब उसके मन में एक प्रकार का संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। जब व्यक्ति को दो बिल्कुल विरोधी वस्तुओं में से एक का चुनाव करना पड़ता है तो भी उसे संघर्ष का सामना करना पड़ता है। उदाहरण के लिए- एक विद्यार्थी जिसका पी.एच.डी. करने के लिए चयन हो जाता है, दूसरी ओर उसका अध्यापक के लिए भी चयन हो जाता है, तो ऐसी परिस्थिति में वह दोनों से मोह करता है। इससे उसके मन में द्वन्द की स्थिति पैदा हो जाती है। ऐसी परिस्थिति को द्वन्द्व कहते हैं, जिसका परिणाम कुसमायोजन होता है।

17.4.1 मानसिक द्वन्द्व (संघर्ष) के दुष्प्रभाव (Demerits of Mental Conflict)

मानसिक द्वन्द्व के कुछ दुष्प्रभाव निम्नलिखित हैं:-

i. **असामान्य मानसिक क्रियाएं-** मानसिक द्वन्द्व की दशा मं व्यक्ति की समस्त मानसिक प्रतिक्रियायें प्रभावित होती हैं। उसमें विस्मरण की मात्रा अधिक हो जाती है। स्वप्न अधिक देखने लगता है और प्रत्यक्षीकरण में कठिनाई का अनुभव करता है।
ii. **असामान्य संवेग प्रदर्शन** - व्यक्ति में प्रसन्नता, दुःख, हास्य, उत्साहहीनता, उदासी आदि बिल्कुल असाधारण रूप में परिलक्षित होती है।
iii. **आसामाजिक व्यवहार**- एकान्तप्रिय, समाजविमुखता और अन्तर्मुखी (Introversion) व्यवहार दिखलाई पड़ता है।
iv. **मानसिक रूग्णता**- मानसिक द्वन्द्व के दुष्प्रभाव से व्यक्ति को अनेक स्नायुविक रोग हो जाते हैं एवं मानसिक तनाव बना रहता है।
v. **अपराधी प्रवृतियां**- मानसिक द्वन्द्व की दशा में व्यक्ति का मानसिक संतुलन अस्त-व्यस्त हो जाता है। उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं रह जाता है और वह सामाजिक और वैधानिक अपराध की ओर प्रवृत हो जाता है।

17.4.2 द्वन्द्व या संघर्ष की परिभाषाएं (Definition of Conflict)

व्यक्ति को लक्ष्य प्राप्ति के दौरान अनेक बाधाओं का सामना करना पड़ता है। कई बार समय कम होने, अनेक विकल्पों में से एक को चुनने और लक्ष्य प्राप्ति के बाद अगले लक्ष्य के निर्धारण में अनेक बाधाएं आती हैं। ऐसे समय में मानसिक द्वन्द्व सा संघर्ष उत्पन्न होने लगता है। यह स्थिति मानसिक उथल-पुथल की स्थिति होती है। संघर्ष या द्वन्द्व की कुछ परिभाषाएं दृष्टव्य हैं:-

डगलस व हालैन्ड - ''संघर्ष का अर्थ है विरोध और विपरीत इच्छाओं में तनाव के परिणामस्वप उत्पन्न होने वाली कष्टदायक संवेगात्मक दशा।''

"Conflict means a painful emotion state. Which result from a tension between opposed and contradictory wishes" - Douglas and Holland

क्रो व क्रो - ''संघर्ष उस समय उत्पन्न होता है जब व्यक्ति को अपने वातावरण में ऐसी शक्तियों का सामना करना पड़ता है, जो उसके स्वयं के हितों और इच्छाओं के विरूद्ध कार्य करती है।''

"Conflicts arise when an individual is faced with forces in his environment that act an opposition to his own Interest and desires" – Crow and Crow

फ्राइड - ''इदं, अहम्, परम अहम् के मध्य सांमजस्य का अभाव होने से मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न होता है''।

मन - ''निरन्तर रहने वाला संघर्ष कष्टदायक होने के साथ-साथ शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है''। ''

" Continued conflict in addition to being unpleasant is also deleterious to physical health"-Munn

17.4.3 द्वन्द्व या संघर्ष से बचने के सामान्य उपाय (Method of General Avoiding Conflict)

सोरेनसन के अनुसार - संघर्ष से बचने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया गया हैः-

1. बालकों के समक्ष न तो अच्छा आदर्श प्रस्तुत किये जाने चाहिए और न उनसे उनके पालन की आशा की जानी चाहिए।
2. बालकों को असंतोषजनक परिस्थितियों का सामना करने और उनसे उपयुक्त समायोजन करने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

3. बालकों की शक्तियों को किसी लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में निर्देशित करना चाहिए, ताकि उनका मस्तिष्क, संघर्षों का निवास स्थान न बन सके।
4. भय और चिन्ता से उत्पन्न होने वाले मानसिक और संवेगात्मक संघर्षों का निवारण करने के लिए बालकों की मानसिक चिकित्सा की जानी चाहिए।
5. परिवार और विद्यालय का वातावरण, विवेक और समझदारी पर आधारित होना चाहिए।
6. बालकों में किसी प्रकार की समस्या उपस्थित नहीं होने देना चाहिए।
7. बालकों को निराशाओं और असफलताओं का सामना करने के लिए प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
8. बालकों के समक्ष विरोधी बातों और विरोधी प्रश्नों में चुनाव करने की परिस्थिति नहीं आनी चाहिए।
9. बालकों को समूहों के सदस्यों के रूप में विभिन्न परिस्थितियों का सामना करने के अवसर दिए जाने चाहिए।
10. बालकों के समक्ष न तो उच्च आदर्श प्रस्तुत किये जाने चाहिए और न ही उनसे उनके पालन की आशा की जानी चाहिए।

अभ्यास प्रश्न

6. मानसिक द्वन्द्व की स्थिति मं व्यक्ति मं .... बढ़ जाती हैं -

(अ) अपराधी प्रवृतियां (ब) सादगी

(स) कार्य करने की इच्छा (द) सहयोग की प्रवृतियां

7. इच्छाओं एवं आवश्यकताओं की सही ढंग से संतुलन की प्रक्रिया को ....की संज्ञा देते है:-

(अ) कुंठा (ब) समायोजन

(स) कुसमायोजित (द) असामान्यता

8. कुसमायोजित व्यक्ति का प्रमुख लक्षण है:-

(अ) आदर्श चरित्र (ब) संतुष्ट

(स) पर्यावरण का ज्ञान (द) संवेगात्मक रूप से असंतुलित

9. कुसमायोजित व्यक्ति में सुधार सम्भव है:-(हां /नहीं)
10. कुसमायोजित व्यक्ति अधिक अव्यवहारिक बन जाता है:-(सत्य /असत्य)

17.5 कुसमायोजन के लक्षण (Symptoms of Maladjustment)

छात्रों में कुसमायोजन की समस्या की पहचान करने के लिए कुछ प्रांरम्भिक लक्षणां (Early symptoms) का वर्णन किया गया है। इन लक्षणों को निम्नलिखित तीन भागों में बांटा गया है:-

i. शारीरिक लक्षण (Physical Symptoms)
ii. व्यावहारात्मक लक्षण (Behavioural Symptoms)
iii. सांवेगिक लक्षण (Emotional Symptoms)

शारीरिक लक्षण (Physical Symptoms) - बालकों में कुसमायोजन की स्थिति में स्पष्ट शारीरिक लक्षण दिखाई पड़ते हैं। शारीरिक लक्षण से तात्पर्य उन लक्षणों से होता है जिनका सम्बंध शारीरिक क्रियाओं (Bodily Activities) में उत्पन्न गड़बड़ी से होता है। बोलते समय हकला जाना, तुतलाकर बोल देना, उल्टी करना, सिर खुजलाना, सिर का बाल नोंचना, नाखून काटना, चेहरा फड़कना (Facial Twitching) आदि कुसमायोजन के प्रमुख शारीरिक लक्षण हैं।

व्यवहारात्मक लक्षण (Behavioral Symptoms)- कुसमायोजित बालकों के व्यवहारों में भी कुछ विचलन (Devotion) आ जाता है। कुसमायोजन की स्थिति में बालकों में चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है तथा वे आक्रामक व्यवहार (Aggressive Behavior अधिक करने लगते हैं। उनमें झूठ बोलने की प्रवृति बढ़ जाती है। दूसरे बालकों को अकसर डराते-धमकाते रहते हैं। स्कूल की शैक्षिक उपलब्धि (Academic Achievement में कमी आ जाती है तथा किशोरों में कुछ यौन व्यवहार सम्बंधी गड़बड़ी (Sex Disturbance) भी देखने को मिलता है।

सावेंगिक लक्षण (Emotional Symptoms)-कुसमायोजन की स्थिति में बालकों में चिंता, डर, हीनता का भाव, आत्मदोष, मानसिक तनाव, बैचेनी आदि जैसे सांवेगिक लक्षण भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलते हैं।

इनके अलावा कुसमायोजित व्यक्ति को निम्नलिखत लक्षणों द्वारा पहचाना जा सकता है-

i. कुसमायोजित व्यक्ति अपने को पर्यावरण के अनुकूलन बनाने में असमर्थ होता है।
ii. वह अनिश्चित मन वाला, अस्थिर बुद्धि वाला, संवेगात्मक रूप से असंतुलित, अनिर्दिष्ट उद्देश्य वाला, घृणा, द्वेष और बदले की भावना वाला होता है।
iii. वह असामाजिक, स्वार्थी और सर्वथा दुःखी होता है।
iv. वह साधारण सी बाधा एवं समस्या उत्पन्न होने पर मानसिक संतुलन खो देने वाला होता है।
v. स्नायु रोगों से पीड़ित, मानसिक द्वन्द्व एवं कुण्ठा से ग्रस्त तथा तनावयुक्त होता है।

17.5.1 समायोजित व्यक्ति के लक्षण (Characteristic of Well Adjusted Person)

समायोजित व्यक्ति में निम्नलिखित लक्षण दिखाई पड़ते हैं -

i. समायोजित व्यक्ति पर्यावरण और परिस्थितियों का ज्ञान और नियंत्रण रखने वाला तथा उन्हीं के अनुकूल आचरण करने वाला होता है।
ii. साधारण परिस्थितियों में भी संतुष्ट और सुखी रहकर अपनी कार्यकुशलता को बनाए रखता है।
iii. अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए समाज के अन्य लोगों को बाधा नहीं पहुंचता है।
iv. यह अपनी आवश्यकता एवं इच्छा के अनुसार पर्यावरण एवं वस्तुओं का लाभ उठाता है।
v. वह स्पष्ट उद्देश्य वाला तथा साहसपूर्ण व ठीक ढंग से कठिनाइयों तथा समस्याओं का सामना करने वाला होता है।
vi. वह स्वयं तथा पर्यावरण के बीच संतुलन बनाये रखता है।

17.5.2 मानसिक द्वन्द्व को सुलझाने एवं तनावों को कम करने के विशिष्ट उपाय या विधियां (Methods of special Resolving the Conflicts and Tension Reduction)

मानसिक संघर्ष या तनाव की प्रचण्डता एवं तीव्र असन्तोष तथा संवेगात्मक उथल-पुथल के फलस्वरूप व्यक्ति का मानसिक संतुलन बिगड़ने लगता है। ऐसी दशा में इन कष्टदायी अनुभूतियों से बचने के लिए व्यक्ति अचेतन रूप से कुछ सुरक्षा प्रक्रियाओं का सहारा लेता है। मनौवैज्ञानिक कैमरन तथा शेफर एवं शोवेन ने समायोजन की युक्तियों को दो प्रकार का बताया है। रक्षात्मक युक्तियां और पलायन युक्तियां- रक्षात्मक युक्तियों का मुख्य कार्य व्यक्ति के अहम् की रक्षा करना है। पलायन युक्तियों का मुख्य कार्य व्यक्ति को तनावपूर्ण स्थिति से हटाकर उसे व्यक्तिगत समायोजन में सहायता प्रदान करना है।

मनौवैज्ञानिक कैमरन ने निम्नलिखित पांच रक्षात्मक युक्तियों का वर्णन किया है:-

i. अवधान प्राप्ति (Attention Getting)
ii. तादात्मीकरण (Identification)
iii. प्रतिपूर्ति (Companion)
iv. संयुक्तिकरण या औचित्य स्थापन (Rationalization0
v. प्रक्षेपण (Projection)
    क. प्रत्यक्ष उपाय (Direct Method)
    ख. अप्रत्यक्ष उपाय (Indirect Method)
    ग. क्षतिपूरक विधियां (Compensensatory Method)
    घ. आक्रामक उपाय (Aggressive Method)

(क) प्रत्यक्ष उपाय- प्रत्यक्ष उपाय द्वारा व्यक्ति चेतनावस्था में अपने तनाव को कम करने के लिए कुछ प्रयत्न करता है। उन उपायों को करने में वह अपनी तर्क शक्ति का सहारा लेता है। कुछ प्रत्यक्ष उपाय निम्नलिखित हैं-

i. **बाधाओं को नष्ट या दूर करना** - व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति में या लक्ष्य तक पहुंचने में जो अवरोध मार्ग में आते हैं वह उन्हें चेतन रूप से दूर करने या पूर्णरूपेण नष्ट करने का प्रयास करता है। इस प्रकार बाधाओं को दूर करने या नष्ट कर देने से व्यक्ति अपने उद्देश्य पूर्ति में सफल हो जाता है और उसका मानसिक तानव दूर हो जाता है। उदाहरण के लिए बालक अपने लिखने की मंद गति को अभ्यास द्वारा दूर करके मानसिक तनाव को समाप्त कर सकता है।

ii. **अन्य मार्ग खोजना -** जब व्यक्ति अपने उद्देश्य पूर्ति के मार्ग में आई बाधा को नष्ट या दूर नहीं कर पाता है तो वह दूसरा रास्ता ढूंढ निकालता है। दूसरा रास्ता ढूंढ लेने पर जब वह अपने उद्देश्य को पूरा कर लेता है तो उसका मानसिक तनाव अपने आप दूर हो जाता है।

iii. **अवधान प्राप्ति की युक्ति** - जब एक व्यक्ति अपने को उपेक्षित अनुभव करता है तब वह इस युक्ति का प्रयोग दूसरे व्यक्तियों का ध्यान अपनी ओर आर्किर्षत करता है। इस विधि द्वारा वह चाहता है कि दूसरे उसकी ओर ध्यान दें। व्यक्ति की यह मनौवैज्ञानिक आवश्यकता होती है कि दूसरों द्वारा उसे अनुमोदन एवं मान्यता प्राप्त हो। माता-पिता द्वारा यदि किसी बच्चे को प्यार या दुलार न मिले तब वह सामाजिक समायोजन में कठिनाई अनुभव करता है।

iv. **अन्य लक्ष्यों का प्रतिस्थापन** - जब व्यक्ति अपने उपाय और हर संभव प्रयास करने पर भी अपने मूल लक्ष्य तक पहुंचने में असमर्थ रह जाता है तो वह उसी लक्ष्य से मिलता-जुलता दूसरा लक्ष्य अपनाता है, जो आसानी से पूरा हो सके। इस प्रतिस्थापित लक्ष्य की पूर्ति से उसका मानसिक तनाव कुछ कम हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि एक व्यक्ति विश्वविद्यालय में प्रोफेसर बनना चाहता है लेकिन यदि वह किसी कारण से नहीं बनता है तब वह कालेज मे लेक्चरर होकर ही अपनी मानसिक इच्छा की पूर्ति से संतुष्टि प्राप्त करता है।

v. **विश्लेषण एवं निर्णय** - जब व्यक्ति के सामने एक से अधिक विरोधी इच्छाएं या लक्ष्य होते हैं, तो उसके अन्दर मानसिक द्वन्द्व उत्पन्न होता है। और मानसिक तनाव बढ़ता है। ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर व्यक्ति दोनों लक्ष्यों के हर पहलू का भली-भांति विश्लेषण करता है। जो भी उसे अधिक समझ पड़ता है, उसी के पक्ष में निर्णय लेता है। ऐसा करते समय वह अपने पूर्ण अनुभवों की सहायता लेता है।

(ख)अप्रत्यक्ष उपाय- तनाव को कम करने के अप्रत्यक्ष उपाय वे हैं जिन्हें व्यक्ति अचेतन रूप से अपनाता है। तनाव से, अपनी मानसिक पीड़ा अथवा सुखद अनुभूतियों से बचने के लिए इन उपायों को सुरक्षा प्रक्रियाएं (Defence Mechanisms) कहा जाता है। ये सुरक्षा प्रक्रियाएं अचेतन मन के द्वारा स्वयं होती रहती हैं, जिनका व्यक्ति को ज्ञान नहीं होता है। ये रक्षात्मक युक्तियां व्यक्ति द्वारा संतोषजनक सामंजस्य (Adjustment) प्राप्त करने तथा अपने मानसिक द्वन्द्व को दूर करने का प्रयत्न है।

i. **शोधन (Sublimation)**- शोधन अचेतन मन की वह मानसिक प्रक्रिया है जिसके अन्दर व्यक्ति की मूल-प्रवत्यात्मक शक्ति या संवेगात्मक शक्ति, पाशविक आवश्यकताएं या इच्छाएं आदि को ऐसे कृतिम पक्ष की ओर मोड़ दिया जाता है जिसे समाज की स्वीकृति प्राप्त है। इससे मूल प्रवृत्तियों का शोधन हो जाता है। इस विचार के समर्थक फ्राइड महोदय हैं।

ii. **परावर्तन (Withdrawal)** - प्रायः व्यक्ति दुःखद या तनाव उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से अपने आप को अलग कर लेता है या पीछे हट जाता है। ऐसे व्यक्ति को पलायनवादी कहा जाता है। ये व्यक्ति किसी को कष्ट नहीं पहुंचाते, किन्तु जब इसका पलायन व्यवहार (परावर्तन) असाधारण रूप में समाजिक हो जाता है तो ये समायोजित होने में कठिनाई का अनुभव करते हैं। उदाहरण के रूप में कक्षा में जब बालक को चिढ़ाया या अपमानित किया जाता है तो वह अपने आपको सहपाठियों से अलग रखने लगता है।

iii. **तदाम्य स्थापित करना (Identification)**- तादाम्य स्थापित करना समायोजन की एक साधारण अवस्था है। यह प्रवृति लगभग सभी व्यक्तियों में पायी जाती है। जब व्यक्ति किसी क्षेत्र में असफल या गुणहीन होता है तो वह किसी अन्य सफल एवं गुणशील व्यक्ति के साथ तादाम्य स्थापित कर लेता है। अर्थात् उसके गुणों एवं कृत्यों को अपने में देखने लगता है। उदाहरण के लिए जैसे कोई बालक मंदबुद्धि है और उसके पिता कालेज मे प्रोफेसर हैं तो वह अपना परिचय अपने पिता के बारे में बताकर देता है। इस तरह वह अपनी कमजोरी को कम कर लेता है।

iv. **आश्रित होना (Becoming dependent)** - जब व्यक्ति बार-बार प्रयत्न कने के बाद भी लगातार असफल हो जाता है तो वह अपनी समस्या को सुलझाने का उत्तरदायित्व किसी सबल या अधिक बुद्धिमान को सौंप देता है और उसके सुझावों, निर्देशों और आज्ञाओं का पालन करता है। तब आश्रित व्यक्ति का बहुत हित होता है।

v. **प्रक्षेपण (Projection)**- व्यक्ति अपनी असफलता का दोष वातावरण के अन्य पदार्थों या व्यक्तियों के सिर पर डाल देते हैं। उदाहरण के लिए किसी पद पर नियुक्ति के लिए अयोग्य ठहराये जाने पर और न चुने जाने पर व्यक्ति यह कहकर संतोष करता है कि किसी से कम योग्य नहीं था किन्तु चयन समिति (Selection Committee) ने पक्षपात किया है। इसी प्रकार परीक्षा में फेल होने वाला परिक्षार्थी सारा दोष प्रश्नपत्र और परीक्षक पर डाल देता है।

(ग) क्षतिपूर्ति विधियां (Compensatory Method)

क्षतिपूर्ति व्यक्ति प्रत्यक्ष या प्रत्यक्ष दो प्रकार से करता हैः-

i. प्रत्यक्ष ढंग - इस विधि द्वारा व्यक्ति परिश्रम करके उसी क्षेत्र में सफलता प्राप्त करता है, जिसमें कि वह कमी का अनुभव करता है। उदाहरण के लिए पढ़ाई लिखाई में कमजोर बालक अधिक मेहनत करके और रात-दिन पढ़ाई कर अच्छा विद्यार्थी बन जाता है।

ii. अप्रत्यक्ष ढंग - इस विधि द्वारा व्यक्ति एक क्षेत्र में असफलता प्राप्त करने पर किसी दूसरे क्षेत्र में कुशल एवं प्रवीण होकर सफलता प्राप्त करता है। इस प्रकार उसकी हीनता की भावना जो पहले क्षेत्र में असफलता के कारण उत्पन्न हुई थी दूर हो जाती है और उसका मानसिक तनाव कम हो जाता है। उदाहरण के लिए पढ़ाई लिखाई में कमजोर बालक अच्छा खिलाड़ी, वक्ता, कलाकार आदि बनकर उसकी क्षतिपूर्ति करने का प्रयास करता है।

(घ) आक्रामक उपाय (Aggressive Method):

आक्रामक उपाय से तात्पर्य उस उपाय से है जिसमें व्यक्ति आवश्यकताओं की पूर्ति में बाधा पहुंचाने वाले या असंतोष उत्पन्न करने वाले व्यक्ति या वस्तु को चोट या हानि पहुंचाकर अपने मानसिक तनाव को कम करना चाहता है। आक्रामकता भी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार की हो सकती हैः-

प्रत्यक्ष आक्रामकता - इस विधि में व्यक्ति उसी व्यक्ति या वस्तु पर आक्रमण करता जो उसके असंतोष का कारण होता है। उदाहरण के लिए परीक्षा में नकल करते हुए पकड़े जाने पर वह कक्ष निरीक्षक पर ही आक्रमण कर देता है।

अप्रत्यक्ष आक्रामकता - इसमें व्यक्ति असंतोष उत्पन्न करने वाले व्यक्ति या वस्तु पर आक्रमण न करके किसी दूसरे व्यक्ति या दूसरे पर आक्रमण करता है। इसे ही आक्रमकता प्रतिस्थापना (Displacement of Aggression) भी कहते हैं। जैसे उक्त परीक्षार्थी कक्ष निरीक्षक पर आक्रमण न करके बाहर आकर अपने दोस्तों या छोटे भाइयों से लड़ झगड़कर भी अपना तनाव दूर कर लेता है। कभी-कभी व्यक्ति अपने को ही दण्डित करता है। इसे अंतनिर्देशित आक्रमकता कहते हैं।

अभ्यास प्रश्न

11. कुसमायोजन के लक्षणों को कितने भागों में बांटा गया है ?

(अ) दो (ब) तीन (स) चार (द) पांच

12. शारीरिक कुसमायोजन के दो प्रमुख लक्षण के नाम लिखिए।

13. झूठ बोलने की प्रवृति कुसमायोजन के किस लक्षण के अन्तरगत आती है ?

(अ) शारीरिक लक्षण (ब) व्यवहारात्मक लक्षण (स) सांवेगिक लक्षण

14. बालकों में झूठ बोलने की प्रवृत्ति कुसमायोजन किस लक्षण के अन्तर्गत आती है ?

(अ) शारीरिक लक्षण (ब) व्यवहारात्मक लक्षण (स) सांवेगिक लक्षण

15. कैमरन की दो रक्षात्मक युक्तियों के नाम लिखिए।

17.6 सारांश

प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन को सुखी, सम्पन्न व सम्मानजनक स्थिति में चाहता है। यह कुछ व्यक्ति को पैतृक प्राप्त होती है और कुछ व्यक्तियों को इसके लिए कढ़ी मेहनत करनी पड़ती है, जिससे व्यक्ति अपनी सम्मानजनक स्थिति को बनाये रखता है। लेकिन कभी-कभी ऐसी स्थिति आ जाती है कि वह जो उद्देश्य बनाता है, उसको पूरा करने में असफल हो जाता है या उसको कोई व्यक्ति हानि पहुंचाता है, तब वह उसके प्रति आक्रोशित हो जाता है। उसके अन्दर एक मानसिक द्वन्द्व पैदा हो जाता है। यदि वह उससे बदला लेने में असमर्थ रहता है तब उसके अन्दर कुण्ठा की भावना पैदा हो जाती है। वह असामाजिक व्यवहार करने लगता है। उसमें कुसमायोजित के लक्षण पैदा हो जाते हैं। ऐसे व्यक्ति को समय व परिस्थितियों में सुधार करके सुधारा जा सकता है। उसका ध्यान किसी और कार्य में लगाकर समाजोपयोगी सदस्य बनाये रखा जाता है।

दूसरी ओर यदि छात्र ने विज्ञान विषय ले लिया, लेकिन वह उसमें सफल नहीं हो पाया, तब वह कुंठा से ग्रसित हो जाता है। यदि छात्र को खेल, कलाकारी या और विषय का अध्ययन कराकर जिसमें वह अच्छा परिणाम दे सकता है, तो इससे वह अपने पूर्व कुण्ठा को भूल कर नये सिरे से कार्य करने लगता है। अतः हमें छात्र व अन्य सभी व्यक्ति के साथ उचित सम्मानजनक व्यवहार करना चाहिए।

17.7 शब्दावली

1. **कुसमायोजन** -समाज में रहते हुए जब किसी कारण से कुण्ठा, भग्नाशा, मानसिक द्वन्द्व व्यक्ति के मस्तिष्क में पैदा हो जाती है, तब वह सामान्य व्यक्ति से हटकर समाज में असामान्य व्यवहार करता है। ऐसे व्यवहार को हम कुसमायोजन कहते हैं।
2. **ब्रोकेन होम्स** - ब्रोकेन होम्स से हमारा अभिप्रायः ऐसे परिवार से होता है जो किसी कारण माता-पिता से सम्बंध विच्छेद होने पर दोनों अलग-अलग रहते हैं। ऐसे परिवार के बच्चे प्यार व दुलार से वंचित रहते हैं, जिसके कारण ऐसे बच्चों में कुसमायोजन विकसित होने लगता है।
3. **सांवेगिक लक्षण (Emotional Symptoms)** : कुसमायोजन की स्थिति में बालकों में उत्पन्न चिन्ता, डर, हीनता का भाव, आत्मदोष, मानसिक तनाव, बैचेनी आदि जैसे लक्षण सांवेगिक लक्षण कहलाते हैं।

17.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सभी जगह
2. असत्य
3. सत्य
4. असत्य
5. धनात्मक
6. अपराधी प्रवृतियां
7. समायोजन
8. संवेगात्मक रूप से असंतुलित
9. हां
10. सत्य
11. तीन
12. बोलते समय हकलाना , सिर खुजलाना
13. व्यवहारात्मक लक्षण
14. व्यवहारात्मक लक्षण
15. तदात्मीकरण, अवधान प्राप्ति

17.9 सन्दर्भ ग्रंथ

1. सिंह अरूण कुमार (1998), शिक्षा मनोविज्ञान, भारती भवन, कदमकुआं पटना।
2. सारस्वत (डॉ0) मालती (1997) शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, आलोक प्रकाशनः लखनऊ।
3. पाठक पी.डी., शिक्षा मनोविज्ञान, विनोद पुस्तकः आगरा।
4. पाण्डा अनिल कुमार (2011), शिक्षा मनोविज्ञान, साहित्य रत्नालय: कानपुर।

17.10 सहायक/उपयोगी पुस्तकें

1. शिक्षा मनोविज्ञान, सिंह अरूण कुमार (1998), भारती भवन, कदमकुआः पटना।
2. शिक्षा मनोविज्ञान की रूपरेखा, सारस्वत (डां) मालती (1997), आलोक प्रकाशन: लखनऊ।
3. शिक्षा मनोविज्ञान, पाठक पी.डी., विनोद पुस्तक: आगरा।

4. शिक्षा मनोविज्ञान, पाण्डा अनिल कुमार (2011), साहित्य रत्नालय: कानपुर।
5. शिक्षा मनोविज्ञान, मंगल. एस.के.
6. इन्टरनेट, कम्प्यूटर रिसर्च जर्नल आदि।

17.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. कुसमायोजन का अर्थ लिखिए। बालकों में कुसमायोजन होने के प्रमुख कारणों को लिखिए।
2. कुण्ठा से आप क्या समझते हैं? कुण्ठा के प्रमुख कारणों की विस्तार से व्याव्या किजिए।
3. मानसिक द्वन्द्व के दुष्प्रभावों का वर्णन किजिए।
4. द्वन्द्व की परिभाषाएं लिखिए। द्वन्द्व से बचने के सामान्य उपायों की व्याख्या किजिए।
5. कुसमायोजन के प्रमुख लक्षण की विस्तृत व्याख्या किजिए।
6. कुसमायोजन का मानव जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है? विस्तृत व्याख्या किजिए।
7. विद्यालय द्वारा कुसमायोजन को रोकने के उपायों का वर्णन किजिए।
8. कुसमायोजित व्यक्ति के साथ हम कैसे समायोजन करें? इसकी व्याख्या किजिए।